ISSN 2393-980X

शोध संविद

वर्ष 7, अंक 13, जुलाई–दिसम्बर, 2020

SHODH SAMVID

संपादक
डॉ. आनन्द बिहारी

प्रधान संपादक
डॉ. तेलानी मीना होरो

ISSN 2393-980X

Shodh Samvid

Issue 10; Vol. 13; July-Dec., 2020

Patron

Prof. Rambachan Roy
Former Head , Dept. of Hindi, P.U, Patna.

Chief Editor

Dr. Telani Meena Horo,
Associate Professor & Head, Dept. of Political Science, Magadh Mahila College, Patna University, Patna.

Managing Editor

Mr. Anup Kispotta, Ranchi, Jharkhand.

Editor

Anand Bihari.

Co-Editor

- ***Vijeta Minakshi Tiru***
- ***Nikita Karishma Kispotta***

Advisory Board / Reviewers

- **Dr. Klaus Roeber,** Member & Chairperson of Berlin Mission History Society, Berlin, Germany.
- **Prof. Vipin Kumar Tripathi,** Professor, Dept. of Physics, IIT, Delhi.
- **Prof. A.K. Paricha,** Emeritus fellow, Dept. of Political Sceince, Berhampur University, Odisa.
- **Prof. (Dr.) Shashi Sharma,** Principal, Magadh Mahila College, P.U, Patna.
- **Dr. Avinash Kr. Jha,** Asso. Prof., Dept. of History, Patliputra University, Patna.
- **Dr. Beena Tiru (Horo),** Asso. Prof., History, R.W. C, Ranchi; Ranchi University, Ranchi.
- **Dr. Bandana Singh**, Professor., Dept. of Home Science, M.M. College, P.U, Patna.
- **Dr. Parveen Sultana,** Assistant Professor., Eng., Ranchi Women's College, Ranchi
- **Dr. Kumari Aruna,** Asso. Prof. & Head, Dept. of Hindi, Magadh Mahila College, Patna.
- **Dr. Arvind Kumar**, Sr. Asst. Prof. Dept. of Music, M.M.College, Patna.
- **Dr. Suman Paswan**, Dept. of Zoology, U.R. College, Rosra, Samastipur, Bihar.

Managing Committee

- **Amarjeet Kumar**, +2 Teacher, SRK +2 School, Pandooi, Jahanabad.

Contact :

Web Site : www.satraachee.org.in
Mob. : 09955950162, 09470738162
E-mail : shodh.samvid@gmail.com
: meenammc03@gmail.com

❑❑❑

शोध संविद

शिक्षा, साहित्य, कला, संस्कृति, विज्ञान एवं वाणिज्य की अर्द्धवार्षिक शोध–पत्रिका

मूल्य : एक प्रति 250 रुपए मात्र

आर्थिक सहयोग :

पंचवार्षिक	: 2500/- रुपए (व्यक्तिगत)
	: 5000/- रुपए (संस्थागत)
आजीवन	: 8000/- रुपए (व्यक्तिगत)
	: 15000/- रुपए (संस्थागत)
संरक्षण	: 25000/- रुपए

(मनीऑर्डर से राशि भेजते समय संदेश के साथ पूरा पता अवश्य लिखें। चैक से राशि भेजते समय पचास रुपए अतिरिक्त जोड़ें।)

संपादन / प्रकाशन :

पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक :

डॉ. तेलानी मीना होरो

प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादक और लेखक की अनुमति के बिना प्रकाशित सामग्री के किसी भी तरह के उपयोग की अनुमति नहीं होगी।

संपादकीय पत्र-व्यवहार :

डॉ. तेलानी मीना होरो

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग,

मगध महिला कॉलेज, उत्तरी गाँधी मैदान, पटना, बिहार

पिन : 800001

❖❖❖

इस अंक में...

संपादकीय

पाठालोचन

1. आशुतोष पार्थेश्वर 07
‘राजा हरदौल’ कहानी का हिंदी-उर्दू पाठ

आलेख

2. संगीता मौर्या 13
भारतीय किसान आंदोलन और महात्मा गाँधी

3. अविनाश कुमार झा 19
वर्तमान समय में हिंसा, अहिंसा और गाँधी

4. शत्रुघ्न कुमार पांडेय 24
झारखंड का बौद्ध स्थल : बहोरनपुर

आलोचना

5. दिलीप राम 38
रघुवीर सहाय की आरंभिक कविताएँ

6. ब्रजबिहारी पांडेय 42
जन-प्रतिरोध के निकष पर रघुवीर सहाय और धूमिल की काव्य-भाषा

7. सुरेश चंद्र 51
समकालीन भारत की चुनौतियाँ और नुक्कड़ नाटक

8. जगमोहन सिंह 62
कथ्य और अभिव्यक्ति की दृष्टि से ‘देवरानी जेठानी की कहानी’ का महत्व

9. पूजा शर्मा एवं अमिष वर्मा 73
‘भारत छोड़ो आंदोलन’ की औपन्यासिक अभिव्यक्ति

10. कुमारी कोमल 79
विजयदेव नारायण साही का आलोचना-कर्म

व्यक्तित्व

11. कुमारी अरुणा 84
पद्‌मभूषण फादर कामिल बुल्के का हिंदी-प्रेम

पुस्तक समीक्षा

12. महेन्द्र नेह 87
दलित समुदाय की प्रगति की राह बनाता नाटक ‘मंदिर से अस्पताल’

आलेख

13. **विजेता मीनाक्षी तिड़ू** 90

सामाजिक न्याय का दर्शन

14. **अर्चना कुमारी** 94

महिला सशक्तीकरण : दशा और दिशा

Article

15. **Amiya K. Paricha** 99

Relevance of Gandhi

16. **Pushpalata Kumari** 102

New Education Policy, 2020: Role and Challenges of NCC

17. **Husna Ara** 105

Triple Talaq Act : A New Journey of Muslim Women Empowerment

Research Paper

18. **Namrata & Archana Katiyar** 110

Occupational Stress among Male and Female Police Constables of Bihar: A Comparative Study

19. **S.D. Mishra** 115

Suicidal Ideation among Children: An Analytical Study

20. **Suman Paswan & Sunil Sahu** 119

The Epidemicological Investigation of Novel Corona Virus-19

21. **Uday Shankar & Prachi Singh** 123

An Exploratory Study about Psychological Factors Affecting Migration in Bihar

❑❑❑

संपादकीय

पूँजीवाद का ब्लैक होल

74 वर्ष हो गए; भारत की आम जनता आज भी पूँजीवादी शोषण से मुक्त नहीं हो सकी है। जिस लोकतंत्र को हम विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहकर गर्व से भर उठते हैं उसकी असफलता का यह सबसे बड़ा प्रमाण है। सच तो यह है कि भारत का लोकतंत्र कभी वजूद में आया ही नहीं। अंग्रेजी पूँजीवाद ने अपनी संपूर्ण प्रवृत्ति के साथ भारतीय पूँजीपति वर्ग को सत्ता सौंप दी। परिणामतः हिंदुस्तान से केवल अंग्रेज गए; उनकी अंग्रेजियत रह गई, उनकी भाषा रह गई। उनकी भाषा के साथ रह गई– औपनिवेशिक ढाँचे में पगी हुई नौकरशाही, सेना और पुलिस। इनमें परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि अंग्रेजों की दी हुई इस व्यवस्था के नौकरशाह, सेना और पुलिस पूँजीपति वर्ग के हितों की रक्षा हेतु पूर्णतः प्रशिक्षित थे। भारतीय पूँजीवाद को लूट, दमन की सौगात के साथ आगे ले जाने के लिए इनका उसी रूप में होना आवश्यक था। हुआ भी वैसा ही। इसलिए 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935' के 321 धाराओं में से 250 को भारतीय संविधान में ज्यों का त्यों रहने दिया गया। इसके अलावा थोड़े–बहुत संशोधन के साथ आईपीसी की मूल संरचना भी वही रही जो अंग्रेजों के समय प्रचलित थी। इस तरह अंग्रेज तो चले गए परंतु उनकी शासन व्यवस्था वही रही; केवल शासक बदल गए।

आजाद भारत की शासकीय व्यवस्था ने पूँजीपति वर्ग का भरपूर खयाल रखा। सांविधानिक स्तर पर अंग्रेजों दी हुई व्यवस्था को कायम रखते हुए व्यवहार में भी उनकी सुविधा का खास खयाल रखा गया। धर्म, जाति, संस्कृति और संप्रदायवाद की समस्त ताकत पूँजीपति वर्ग की सेवा में समर्पित कर दिया गया। इतना ही नहीं लिखित अलिखित सभी व्यवस्थाओं के बावजूद जब कभी भारतीय पूँजीवाद संकटग्रस्त हुआ तो सत्ता ने फासीवादी रूप अख़्तियार कर उसे संजीवनी प्रदान की। मौजूदा सरकार भी वही कर रही है। 'फूट डालो राज करो' की नीति पर चलते हुए वह भारतीय जनता की एकता को कमजोर कर रही है और इस तरह हक की लड़ाई में जनता के संघर्ष की ताकत प्रत्येक स्तर कमजोर होती चली जा रही है। इस क्रम में देश की मजदूर–मेहनतकश आबादी की कमाई लूटकर पूँजीपति वर्ग की झोली भरने में सत्ता को अभूतपूर्व सफलता मिली है। आजाद भारत के 74 वर्षों में पूँजीवाद को इतना सुनहरा अवसर कभी न मिला था। वर्तमान दौर में पूँजीवाद एक ब्लैक होल की तरह हो गया है जिसमें समूचा देश समाता जा रहा है। पूरा देश अपनी समस्त उपलब्धियों को पूँजीपति वर्ग के हवाले करने के लिए विवश है। देश की सत्ता से लेकर देश की साहित्यिक–सांस्कृतिक और समस्त शैक्षणिक संस्थाएँ पूँजीपति वर्ग को तुष्ट करने में लगी हुई हैं। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का हाल ये है कि एक तरफ देश में

बेरोजगारी की दर 5 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 10 प्रतिशत हो गई तो दूसरी तरफ पूँजीपति वर्ग के धंधों में असीमित मुनाफे के आँकड़े बन रहे हैं। शेयर बाज़ार में अकल्पनीय उछाल, तेज रफ़्तार गाड़ियाँ, प्राइवेट जेट विमान, आलीशान बंगले, विदेश यात्राएँ आदि पूँजीपति वर्ग के जीवन की सामान्य बातें हो गईं हैं। पूँजीपतियों को ये बातें सुलभ हैं इससे कोई ऐतराज नहीं है, बल्कि ऐतराज इस बात से है कि ये तमाम सुविधाएँ व कामयाबियाँ मेहनतकश आम जनता की थाली से छीनी गई रोटियों के दम पर है। देश में लगभग 50 करोड़ लोग ऐसे हैं जो दिहाड़ी पर काम करते हैं। इतनी बड़ी आबादी आज से 15 साल पहले जितना कमाती थी आज भी लगभग उतना ही कमाती है जबकि महंगाई तीन से चार गुणा तक बढ़ गई है। तीस वर्ष पहले शुरू की गई नवउदारवादी नीतियों का परिणाम यही है कि देश में पूँजीवाद निरंतर अपना मुँह बड़ा करते हुए सब कुछ निगल जाने की स्थिति में आ चुका है और दूसरी तरफ आम जनता में भुखमरी, बेरोजगारी, कुपोषण जैसी समस्या का विकराल रूप व्याप्त है।

पूँजीपति वर्ग देश की इस दुरवस्था मात्र से ही संतुष्ट नहीं है सामंती संस्कारों के कारण यह वर्ग अपनी बर्बरता को और अधिक अमानवीय बनाने पर उतारू है। भारत में उसकी स्थिति एक निरंकुश तानाशाह की तरह है जिसने अपने शौक के लिए एक 'पूँजीवादी ब्लैक होल' तैयार कर लिया है और उसमें देश की आम जनता को तेजी से झोंके जाते देखकर अट्टहास कर रहा है। भारतीय पूँजीवाद उन्माद की स्थिति में है परंतु उसकी मक्कार बुद्धि सतर्क और सावधान है। उसने अपनी सुरक्षा के लिए धार्मिक उन्माद, नफ़रत, ख़ौफ़ और महंगाई का मजबूत शिकंजा कस दिया है, देश की सारी रचनात्मक ऊर्जा और ताजगी को श्रीहीन कर दिया है और जन-आक्रोश को सांप्रदायिकता की दिशा में मोड़ दिया है। फासीवाद अघोषित रूप से उसकी सेवा में है और समस्त भारत निराश व हताश है। उसकी उम्मीदें, उसका वजूद 'पूँजीवाद के ब्लैक होल' में समाता चला जा रहा है... !!!

– *तेलानी मीना होरो*

ISSN 2393-980X
शोध संविद
SHODH SAMVID
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ आशुतोष पार्थेश्वर
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
मो. 9934260232

पाठालोचन

'राजा हरदौल' कहानी का हिंदी-उर्दू पाठ

राजा हरदौल प्रेमचंद की एक आरंभिक कहानी है। उर्दू में यह कहानी मुंशी दयानारायण निगम द्वारा संपादित 'ज़माना' मासिक के अप्रैल 1911 के अंक में पहली बार प्रकाशित हुई थी और नवंबर 1914 में प्रकाशित 'प्रेम पचीसी' (भाग-1) कहानी संग्रह में पहली बार संकलित हुई थी। हिंदी में यह कहानी प्रेमचंद के दिसंबर 1917 में प्रकाशित कहानी संग्रह 'नवनिधि' के ज़रिए पाठकों के सामने आई।

उर्दू और हिंदी में इस कहानी का आरंभ बिलकुल भिन्न प्रकार से है। उर्दू पाठ में एक पूरी भूमिका, कहानी में प्रवेश से पहले एक संपन्न पृष्ठाधार तैयार करते हुए प्रेमचंद आगे बढ़ते हैं, जबकि हिंदी में वह विस्तार नहीं है। उर्दू में कहानी इस प्रकार शुरू होती है:

बुंदेलखंड के कारनामों में चंपतराय की ज़िंदाआवेज़ रानी सारंधा जिस क़दर मुमताज़ है, शायद उससे ज़्यादा अक़ीदत लोगों को हरदौल से है। आज बुंदेलखंड का कोई मौज़ा ऐसा नहीं जहाँ हरदौल का चबूतरा न हो। शादी-ब्याह और दीगर तक़रीबों के मौके पर औरतें बनाव-सिंगार करके उस चबूतरे पर आती हैं और हरदौल के नाम पर अक़ीदत के फूलों के साथ परस्तिश के ज्योनार चढ़ाती। जब तक सुहाग के चावल और सुहाग की हल्दी में हरदौल को हिस्सा न मिल जाए, शादी की रस्म पूरी नहीं हो सकती। देवता हरेक ख़ानदान और फ़िरक़ा के जुदा हैं। कोई महादेवजी को भंग चढ़ाता है, कोई महाबीरजी की मलीदे से मदारात करता है, कोई क़ुर्बानी का बकरा चढ़ाकर देवी की प्यास बुझाता है। मगर हरदौल है कि हर कस-व-नाकस से उसकी बिसात के माफ़िक अक़ीदत का ख़राज लेता है। किसी मौज़ा में जाओ और एक बच्चे से भी पूछो, तो वह फ़ौरन हरदौल के चबूतरे का निशान बता देगा। मगर उस फ़र्द बशर ने वह कौन सा काम किया जिससे आज उसके नाम पर अक़ीदत निसार होती है और अज़्मत मोती लुटाती है। उसने कोई मुल्क फ़तह नहीं किया, कोई सल्तनत नहीं क़ायम की, कोई ईजाद नहीं की, कोई तसनीफ़ नहीं लिखी। वह दीवाना था, प्रतापी राजा न था। वह एक वहमी मिज़ाज भाई के शकूक का निशाना बना। एक औरत के नाम पर से बेवफ़ाई का झूटा दाग मिटाने के लिए उसने जहर का प्याला पीना गवारा किया। अपने ख़ून से एक अफ़ीफ़ा के दाग़े-बदगुमानी को धोया और यही वह फ़ाल मरदाना है जिसने तीन सदियाँ गुज़ार जाने पर भी उसके नाम के चारों तरफ़ तक़द्दस और एहतराम का एक

मुनव्वर हाला क़ायम कर दिया है। संगो-ख़िश्त की यादगारें और तारीख़ी फ़तूहात इंसान के सना व सफ़ की दाद लेती हैं। मगर मरदाना जाँबाज़ी दिलों में मज़हबी इरादात पैदा कर देती है। हक़ यह है कि जब तक कोई फ़र्द बशर ऐसा अज़ीमुश्शान काम न करे जो इंसान के हीत-ए-इमकान से बाहर हो, उस वक़्त तक अवामुन्नास का दरबार उसे देवताओं की पदवी नहीं देता। फ़ातह और शायर सख़ी और आला दिमाग़ के लोग मंदिर में जगह पाते हैं। मगर हिम्मत के नाम पर कुर्बान होनेवाला इंसान दिल के मंदिर पर जल्वा-अफ़रोज़ होता है। आज जो एक देवता की इज़्ज़त है वही इज़्ज़त हरदौल की है। इस नाम पर कविश्वरों ने कविता के मोती निसार किए हैं। उसकी दास्तान आज भी ग़ैरतमंद दिलों में दिलावरी और जाँबाज़ी का जोश पैदा करती है और नेक बीवियाँ आज भी उससे इबरत का सबक़ लेती हैं।

उर्दू पाठ का यह पूरा अंश हिंदी में नहीं है। यह कहानी कहने का परंपरित तरीक़ा था जिसमें किस्सागो को श्रोताओं का केवल मनोरंजन करना नहीं होता था, कुछ संदेश देना भी ज़रूरी होता था। यह लंबी भूमिका पाठकों-श्रोताओं के समक्ष पहले ही हरदौल का एक विराट व्यक्तित्व खड़ा कर देती है। अब यहाँ यह भी देखना चाहिए कि परंपरित शैलीवाली इस कहानी में भी प्रेमचंद 'चरित्र' को उभारने के लिए अपनी रचना-यात्रा के आरंभ से किस प्रकार सतर्क हैं। इस कहानी के उर्दू-हिंदी पाठ की तुलना के ज़रिए हम प्रेमचंद की उर्दू और हिंदी की परस्परता यानी समानता और भिन्नता का विश्वसनीय आकलन कर सकते हैं। आरंभिक दौर की एक कहानी से गुज़रते हुए यह ज़रूर ध्यान रखना चाहिए कि यदि प्रेमचंद कहानी को हिंदी में उसी समय प्रस्तुत करते तो उसका स्वरूप क्या हो सकता था? 'क़िस्से' के लिहाज से यह कहानी एक चुनौतीपूर्ण 'पाठ' तो है ही, यहाँ हमारा लक्ष्य कहानी की 'भाषा' के ज़रिए कंटेंट के स्वरूप, उसके गठन और दोनों भाषाओं में उभरी उसकी निजता का आकलन करना है। यानी, उर्दू से हिंदी में रूपांतरित होते हुए कहानी वही है या उसमें कुछ परिवर्तन आ जाता है। एक उल्लेखनीय परिवर्तन का उदाहरण ऊपर प्रस्तुत किया जा चुका है। अब कहानी के शेष अंश से कुछ तुलना प्रस्तुत है।

हिंदी में यह कहानी चार भागों में है और उर्दू में नौ हिस्से में। कहानी के उर्दू पाठ का दूसरा हिस्सा, हिंदी पाठ के पहले हिस्से से तुल्य है। दूसरा हिस्सा इस प्रकार शुरू होता है :

1. हरदौल जुझार सिंह का छोटा भाई था, ओरछा के राजा थे। ओरछा बुंदेलों का गह्वारा है। इन्हीं पहाड़ियों की गोद में बुंदेल क़ौम ने परवरिष्ठा पाई है। ओरछा का राजा आज भी बुंदेली मजलिस का सदरे-नशीं है। जुझार सिंह बड़ा दिलेर और दाना शख़्स था। शाहजहाँ उस ज़माने में देहली का बादशाह था, जब ख़ानजहाँ लोधी ने अल्मे-बग़ावत बुलंद किया अैर इलाक़ा शाही को ख़ाक स्याह करता हुआ ओरछा की तरफ़ आ निकला तो राजा जुझार सिंह ने उससे मर्दानावार मुक़ाबला किया। शाहजहाँ राजा की इस जाँ-बाज़ाना सरफ़रोशी से बहुत ख़ुश हुआ। वह इंसानी जौहर का बा-कमाल जौहरी था, राजा को फ़ौरन सूब-ए-दकन में एक अहम ख़िदमत पर मामूर कर दिया। (उर्दू)

बुंदेलखंड में 'ओरछा' पुराना राज्य है। इसके राजा बुंदेले हैं। इन बुंदेलों ने पहाड़ों की घाटियों में अपना जीवन बिताया है। एक समय ओरछे के राजा जुझार सिंह थे। ये बड़े साहसी और बुद्धिमान थे। शाहजहाँ उस समय दिल्ली के बादशाह थे। जब खानजहाँ लोदी ने बलवा किया और वह शाही मुल्क को लूटता-पाटता ओरछे की ओर आ निकला, तब राजा जुझार सिंह ने उससे मोरचा लिया। राजा के इस काम से शाहजहाँ बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि वे मनुष्य के गुणों की परख करनेवाले थे। उन्होंने तुरंत ही राजा को दक्खिन के काम सौंपे। (हिंदी)

तुलना

(क) 'हरदौल जुझार सिंह का छोटा भाई था, ओरछा के राजा थे।' और 'ओरछा का राजा आज भी बुंदेली मजलिस का सदरे-नष्ठीं है।'-ये अंश हिंदी पाठ में नहीं हैं।

(ख) 'ख़ाक स्याह करता हुआ' को हिंदी में 'लूटता-पाटता हुआ' से बदला गया है।

(ग) 'जाँ-बज़ाना सरफ़रोशी' हिंदी में नहीं है।

(घ) उर्दू अंश में सामासिकता और मुहावरे का

प्रयोग है। इससे वह अंश तुलनात्मक रूप से अधिक प्रवाही और प्रभावी है।

2. राजा ने हरदौल को बुलाकर कहा–हभैया मैं जाता हूँ। अब यह राजपाट तुम्हारे सुपुर्द है। मेरी रिआया मुझे बहुत प्यारी है। तुम भी उनको दिल से प्यार करना। इंसाफ़ राजा का सबसे ज़बरदस्त मददगार है। इंसाफ़ की शहर–पनाह में कोई दुष्ठमन शिगाफ़ नहीं कर सकता, चाहे वह रावण की फ़ौज और इंद्र का ज़ोर लेकर आए। मगर इंसाफ़ वही सच्चा है जिसे रिआया भी इंसाफ़ समझे। (उर्दू)

तब राजा ने अपने छोटे भाई हरदौल सिंह को बुलाकर कहा–हभैया मैं तो जाता हूँ अब यह राजपाट तुम्हारे सुपुर्द है। तुम भी इसे जी से प्यार करना। न्याय ही राजा का सबसे बड़ा सहायक है। न्याय की गढ़ी में कोई शत्रु नहीं घुस सकता, चाहे वह रावण की सेना या इंद्र का बल लेकर आवे पर न्याय वही सच्चा है, जिस प्रजा भी न्याय समझे। (हिंदी)

तुलना

(क) 'मेरी रिआया मुझे बहुत प्यारी है।'–यह अंष्ठा हिंदी में छोड़ दिया गया है।

(ख) अगले वाक्य 'तुम भी उनको दिल से प्यार करना' को हिंदी में 'तुम भी इसे जी से प्यार करना' से बदला गया है। यहाँ 'भी' का प्रयोग ध्यान देने लायक है। उर्दू अंश में इसका सातत्य पहले वाक्य से है। किंतु, हिंदी में पहले वाक्य के न आ पाने से यह स्पज़्ट नहीं हो पाता है।

3. जुझार सिंह ने उसे उठाकर सीने से लगा लिया और बोले–"प्यारी यह रोने का वक़्त नहीं है। बुंदेलों की औरतें ऐसे मौक़े पर रोया नहीं करतीं, ईश्वर ने चाहा तो हम तुम जल्द मिलेंगे। मुझ पर ऐसी ही मुहब्बत की निगाह रखना। मैंने राजपाट हरदौल को सौंपा है, वह अभी लड़का है, उसने ज़माने का अभी नेको–बद नहीं देखा, अपनी सलाहों से उसकी मदद करते रहना।" (उर्दू)

जुझार सिंह ने उठाकर उसे छाती से लगाया और कहा–"प्यारी! यह रोने का समय नहीं है। बुंदेलों की स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर रोया नहीं करतीं। ईश्वर ने चाहा, तो हम तुम जल्द मिलेंगे। मुझ पर, ऐसी ही प्रीति रखना। मैंने राजपाट हरदौल को सौंपा है; वह अभी लड़का है। उसने अभी दुनिया नहीं देखी है। अपनी सलाहों से उसकी मदद करती रहना।" (हिंदी)

तुलना

(क) 'मुहब्बत की निगाह' को हिंदी में 'प्रीति' से बदला गया है।

(ख) शेष अंश में केवल शाब्दिक रूपांतरण है और यह अनुवाद पूरी तरह मूल भाव को सुरक्षित रखता है।

4. फागुन का महीना, अबीर और गुलाब से ज़मीन सुर्ख़ हो रही थी और फाग के पुरजोश नग़मे बेनयाज माशूक़ों के दिलों में तमन्ना और इश्तयाक की आग भड़का रहे थे, रबी ने खेतों में सुनहरा फ़र्श बिछा दिया था और खलिहानों में ख़ोश–ए–ज़रीं के महल खड़े कर दिए थे। (उर्दू)

फागुन का महीना था, अबीर और गुलाल से ज़मीन लाल हो रही थी। कामदेव का प्रभाव लोगों को भड़का रहा था, रबी ने खेतों में सुनहला फ़र्श बिछा रक्खा था और खलिहानों में सुनहले महल उठा दिए थे। (हिंदी)

तुलना

(क) उर्दू पाठ के 'फाग के पुरजोश नग़मे बेनयाज माशूक़ों के दिलों में तमन्ना और इश्तयाक की आग भड़का रहे थे' को हिंदी में 'कामदेव का प्रभाव लोगों को भड़का रहा था' से बदला गया है।

(ख) उर्दू का 'फाग' एक अधिक खुले हुए शब्द–चयन का उदाहरण है। जबकि हिंदी में 'कामदेव' एक धार्मिक परंपरा और मान्यता के अधीन चयनित ष्टाब्द है। व्यंजना भले एक हो, पर यह अंतर लक्ष्य किया जाना चाहिए।

(ग) उर्दू में 'माशूक़ों' का उल्लेख है जबकि हिंदी में उसे 'लोगों' से बदलकर अधिक दायरा विस्तृत कर दिया गया है।

5. मगर साहबे–नज़र के लिए अखाड़े के बाहर मैदान में ज़्यादा क़ाबिले–दीद कशमकश थी। बार–बार कौमी आन के ख़्याल से इनसानी दिल के जज़्बात को रोकना और खुशी–व–रंज की आवाज़ों को ज़बान से बाहर न निकलने देना, तलवारों के वार बचाने से ज़्यादा मुश्किल काम था। यकायक कादिर ख़ाँ ने

अल्लाह-अकबर का नारा मारा, गोया बादल गरज उठा और उसके गरजते ही कालदेव के सिर पर बिजली गिर पड़ी। (उर्दू)

पर देखनेवालों के लिए अखाड़े के बाहर मैदान में इससे भी बढ़कर तमाशा था। बार-बार जातीय प्रतिष्ठा के विचार से मन के भावों को रोकना और प्रसन्नता या दुख का शब्द मुँह से बाहर न निकलने देना तलवारों के वार बचाने से अधिक कठिन काम था। एकाएक कादिर खाँ 'अल्लाहो-अकबर' चिल्लाया, मानों बादल गरज उठा और उसके गरजते ही कालदेव के सिर पर बिजली गिर पड़ी। (हिंदी)

तुलना

(क) 'साहबे-नज़र' एक सामासिक प्रयोग है और यह 'देखनेवालों' से अधिक प्रभावी है। 'साहबे-नज़र' पारखी होते हैं, जबकि 'देखनेवालों' में वह विशिष्टता नहीं है।

(ख) उर्दू पाठ में 'नारा मारा' है और हिंदी में इसे 'चिल्लाया' से बदला गया है।

6. रानी कुलीना ने पूछा-"भैया! आज का क्या रहा?"

हरदौल ने सर झुकाकर जवाब दिया-"आज भी वही जो कल की कैफ़ियत हुई।"

कुलीना-"क्या भालदेव मारा गया?"

हरदौल-"नहीं जान से तो नहीं गया। मगर हार हो गई।" (उर्दू)

कुलीना ने पूछा-लाला! आज दंगल का क्या रंग रहा?

हरदौल ने सिर झुकाकर जवाब दिया-आज भी वही कल का सा हाल रहा।

कुलीना-क्या भालदेव मारा गया?

हरदौल-नहीं, जान से तो नहीं, पर हार हो गई। (हिंदी)

तुलना

(क) हरदौल के लिए उर्दू में 'भैया' और हिंदी में 'लाला' संबोधन है।

(ख) अंतिम वाक्य 'नहीं जान से तो नहीं गया' का 'गया' उर्दू में छोड़ दिया गया है। शेष कोई बदलाव हिंदी पाठ में नहीं है।

7. वह पहले ही से हरदिल अज़ीज़ था और अब वह अपनी क़ौम का हीरो और बुंदेल दिलावरी का माय-ए-नाज़ बन गया। (उर्दू)

वह पहले ही से सर्वप्रिय था और अब वह अपनी जाति का वीरवर और बुंदेला दिलावरी का सिरमौर बन गया। (हिंदी)

तुलना

(क) 'हरदिल अज़ीज़' को 'सर्वप्रिय', 'क़ौम का हीरो' को 'जाति का वीरवर' और 'माय-ए-नाज़' को 'सिरमौर' से हिंदी में बदला गया है। ये अनुवाद मात्र हैं।

8. वह घोड़े पर सवार अकड़ता हुआ जुझार सिंह के सामने आया और पूछना चाहता था कि तुम कौन हो कि भाई से आँख मिल गई। पहचानते ही घोड़े से कूद पड़ा और उनके क़दम चूमे, राजा ने भी उठकर हरदौल को सीने लगाया। मगर उस सीने में अब भाई की मुहब्बत न थी। (उर्दू)

वे घोड़े पर सवार अकड़ते हुए जुझार सिंह के सामने आए और पूछना चाहते थे कि तुम कौन हो कि भाई से आँख मिल गई। पहचानते ही घोड़े से कूद पड़े और उनको प्रणाम किया। राजा ने भी उठकर हरदौल को छाती से लगाया पर उस छाती में अब भाई की मुहब्बत न थी। (हिंदी)

तुलना

(क) 'क़दम चूमे' हिंदी में व्यवहृत नहीं है, इसलिए हिंदी में वह 'प्रणाम' से परिवर्तित है।

9. आज रानी कुलीना ने अपने हाथों से ज्योनार बनाया। (उर्दू)

आज रानी कुलीना ने अपने हाथों से भोजन बनाया। (हिंदी)

तुलना

(क) 'ज्योनार' को हिंदी में 'भोजन' से बदला गया है। इस बदलाव में देखें कि उर्दू में प्रेमचंद कई बार अधिक ठेठ और देष्ठाज प्रयोग करते मिल जाते हैं।

10. जैसे आग से लोहा सुर्ख़ हो जाता है उसी तरह रानी का चेहरा सुर्ख़ हो गया। एक मिनट तक उसे ऐसा मालूम हुआ गोया दिल और दिमाग़ दोनों खौल रहे हैं। मगर उसने ज़ब्त की इन्तहाई कोशिश से अपने आप

को सँभाला। सिर्फ़ इतना बोली–"हरदौल को अपना लड़का और भाई समझती हूँ।" (उर्दू)

जैसे आग की आँच से लोहा लाल हो जाता है, वैसे ही रानी का मुँह लाल हो गया। क्रोध की अग्नि सद्भावों को भस्म कर देती है, प्रेम और प्रतिष्ठा, दया और न्याय सब जल के राख हो जाते हैं। एक पल तक रानी को ऐसा मालूम हुआ, मानों दिल और दिमाग़ दोनों खौल रहे हैं पर उसने आत्मदमन की अंतिम चेष्टा से अपने को सम्हाला, केवल इतना बोली–"हरदौल को मैं अपना लड़का और भाई समझती हूँ।" (हिंदी)

तुलना

(क) 'क्रोध की अग्नि सद्भावों को भस्म कर देती है, प्रेम और प्रतिष्ठा, दया और न्याय सब जल के राख हो जाते हैं।'–यह अंश हिंदी में बढ़ा हुआ है और इससे प्रभाव बढ़ता है।

(ख) 'ज़ब्त की इन्तहाई कोशिश' को हिंदी में 'आत्मदमन की अंतिम चेष्टा' से बदला गया है। शेष अंश समान है।

11. मैं समझता था हिमाचल हिल सकता है। मगर तुम्हारा दिल नहीं टल सकता। (उर्दू)

मैं समझता था चाँद, सूर्य टल सकते हैं, पर तुम्हारा दिल नहीं टल सकता। (हिंदी)

तुलना

(क) उर्दू में 'हिमाचल' है और हिंदी में 'चाँद और सूर्य'। इसके अतिरिक्त दोनों अंशों में कोई अंतर नहीं है।

12. रानी सोचने लगी! अब मैं क्या करूँ। क्या हरदौल की जान लूँ। (उर्दू)

रानी सोचने लगी–क्या हरदौल के प्राण लूँ? (हिंदी)

तुलना

(क) 'अब मैं क्या करूँ'–यह अंश हिंदी में नहीं है। इससे रानी का तनाव, निरूपायता और द्वंद्व व्यक्त होता है।

13. अगर तुम्हारा जी मुझसे आ गया है, अगर मैं वबाले–जान हो गई हूँ तो मुझे काशी या मथुरा भेज दो। मैं शौक़ से चली जाऊँगी। मगर ईश्वर के लिए मुझपर इतना बड़ा इल्ज़ाम न रखो। तुम मेरे मालिक हो शौक से बेवफ़ा समझो। लेकिन मैं ज़िंदा ही क्यों रहूँ? (उर्दू)

यदि मुझसे तुम्हारा जी उकता गया है, यदि मैं तुम्हारी जान की जंजाल हो गई हूँ तो मुझे काशी या मथुरा भेज दो। मैं बेखटके चली जाऊँगी, पर ईश्वर के लिए मेरे सिर इतना बड़ा कलंक न लगने दो। पर मैं जीवित ही क्यों रहूँ? (हिंदी)

तुलना

(क) 'तुम मेरे मालिक हो शौक से बेवफ़ा समझो'–यह अंश हिंदी में नहीं है। शेष हु–ब–हू रूपांतरण है।

14. हरदौल ने सर झुकाकर बीड़ा लिया, उसे माथे पर चढ़ाया, एक बार हसरतनाक निगाहों से दरो–दीवार को देखा और बीड़े को मुँह में रख लिया। एक सच्चे राजपूत ने मर्दाना हमीयत का हक़ अदा कर दिया। मर्दाना जाँबाज़ी ने इससे बेहतर दाद कभी नहीं पाई। (उर्दू)

हरदौल ने सिर झुकाकर बीड़ा लिया उसे माथे पर चढ़ाया, एक बार बड़ी ही करुणा के साथ चारों ओर देखा और फिर बीड़े को मुँह में रख लिया। एक सच्चे राजपूत ने अपना पुरुषत्व दिखा दिया। (हिंदी)

तुलना

(क) 'दरो–दीवार' को हिंदी में 'चारों ओर' से बदला गया है। 'दरो–दीवार' मुहावरा है। ग़ालिब भी कहते हैं, 'उग रहा है दरो–दीवार से सब्ज़ा ग़ालिब/हम बयाबाँ में है और घर में बहार आई है।' 'दरो–दीवार' को 'हसरतनाक निगाहों' से देखने में गहरी पीड़ा समायी है जो 'चारों ओर' से नहीं उभरती।

(ख) 'मर्दाना जाँबाज़ी ने इससे बेहतर दाद कभी नहीं पाई'–यह अंश हिंदी में नहीं है।

15. जुझार सिंह अपनी जगह से ज़रा भी न हिला। उसके चेहरे पर एक बेरहमाना मुसकुराहट नमूदार थी मगर आँखों में आँसू भर आए थे। (उर्दू)

जुझार सिंह अपनी जगह से ज़रा भी न हिला। उसके चेहरे पर वीर–ईर्ज्या से भरी हुई मुस्कराहट छाई हुई थी, पर आँखों में आँसू भर आए थे। (हिंदी)

तुलना

(क) 'बेरहमाना मुसकुराहट' का अनुवाद या रूपांतरण 'वीर-ईर्ष्या' नहीं हो सकता। बल्कि 'वीर-ईर्ष्या' का कोई संगत भाव या अर्थ भी नहीं उभरता। यह असफल रूपांतरण का उदाहरण है।

कुल मिलाकर कहें कि उर्दू से हिंदी में रूपांतरित-अनुवादित करते हुए यह कहानी कुछेक अंशों को छोड़कर मूलपाठ के भाव को सुरक्षित रखती है। और, जहाँ हिंदी में मूल पाठ से अलगाव है, वहाँ प्राय: स्थलों पर उर्दू पाठ अधिक सफल है। हिंदी रूपांतरण की प्रक्रिया में, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, उर्दू पाठ का पहला भाग ही छोड़ दिया गया है। संक्षिप्तता की यह प्रवृत्ति उसके बाद भी दिखाई देती है।

❑❑❑

SHODH SAMVID
शोध संविद
ISSN 2393-980X
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ संगीता मौर्या
सहायक प्राध्यापक, हिंदी
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, गाजीपुर
उत्तर प्रदेश

आलेख

भारतीय किसान आंदोलन और महात्मा गाँधी

भारतीय समाज का समय और काल की दृष्टि से अध्ययन करने पर हम गाँधी को एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में उभरते हुए पाते हैं जिसने साहित्य, समाज, राजनीति आदि सभी को समान रूप से प्रभावित किया। दक्षिण अफ्रीका से वापस भारत आने के बाद गाँधी के सामने अनेक संभावनाओं के द्वार खुले थे तो वहीं दूसरी तरफ अनेक चुनौतियाँ भी थीं। चुनौतियाँ इस मायने में कि स्वतंत्रता आन्दोलन को एक सही नेतृत्व प्रदान करना था, और उस आन्दोलन को भारतीय जनमानस का आन्दोलन बनाना था। बिहार की चंपारण यात्रा उनकी इसी कड़ी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना। यह वही दौर था जब एक तरफ गाँधी को महात्मा बनाने की कवायद बहुत तेजी से चल रही थी, तो दूसरी तरफ साम्राज्यवाद के उसी दौर में किसानों की स्थिति अत्यंत ही दयनीय हो चुकी थी। ऐसे समय में किसान भी अपनी दयनीय दशा को दूर करने के लिए ऐसे ही किसी महान व्यक्ति की राह देख रहे थे, किन्तु यह उनका दुर्भाग्य ही है कि न आजादी के पूर्व और न आजादी के बाद ही उन्हें ऐसा कोई नेतृत्त्व मिला हो।

हम यह बात बहुत फख्र से कहते हैं कि भारत गाँवों का देश है लेकिन इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि जितना अधिक शोषण यहाँ के किसानों, मजदूरों का हुआ है उतना किसी और का नहीं। उनकी दुर्दशा और व्यथा का अनुमान गाँवों में प्रचलित इन पंक्तियों के माध्यम से लगाया जा सकता है–

झुरा अउरी रूरा भईया कय देहन ठेकाने
पानी अउरी पत्थर उपरा से घहराने
भईया कईसे बितीहैं इ दिनवां हमार
गंगा (किसान का नाम) कहैं, किसानों सोईबा
पीछे माथ पकड़ के रोईबा
भईया कवन सुनिहैं हमरी पुकार।

यह सर्वविदित है कि भारत में ही नहीं बल्कि संसार में जहाँ–जहाँ सामाजिक क्रांतियाँ हुई हैं, किसानों की भूमिका को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। उदाहरण के तौर पर फ्रांस की क्रांति को भी देखा जा सकता

है, जहाँ किसानों ने अपना योगदान तो दिया लेकिन समय बीतने पर किसानों को धीरे-धीरे यह समझ में आ गया कि आधुनिकता की पूँजीवादी व्यवस्था के इस दौर में शासकों की नजर में खेती-किसानी बीते जमाने का अवशेष मात्र बनकर रह गयी है। इसी तरह इंग्लैंड और चीन के आंदोलनों में भी किसानों की महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद सत्ताधारी वर्ग ने किसानों को हाशिए पर धकेल दिया और औद्योगिक संस्कृति ने किसानी संस्कृति को पूरी तरह चौपट कर दिया। इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि किसान सबके पोषक रहे हैं चाहे ब्रिटिश सत्ता हो, जमींदार हो या अन्य कोई कुलीन वर्ग; लेकिन इनमें से किसी ने भी इनके शोषण में कोई कसर नहीं छोड़ी। इतना ही नहीं 19 वीं शताब्दी के दौरान भारत स्थित अनेक अधिकारियों ने भारत के भूखे-नंगे किसानों की स्थिति स्वीकार की। गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्य चार्ल्स इलियट ने टिप्पणी की, "मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि आधी कृषि जनसंख्या को एक साल के अंत से दूसरे साल के अंत तक यह पता नहीं होता कि पेट भर खाना कैसा होता है।"[1] सत्ताधारी लोगों ने चमड़ी के साथ दमड़ी भी निचोड़ लिया, बदले में कुछ दिया नहीं। मेरे दिमाग में एक प्रश्न बार-बार कौंधता है कि हम भारतवासी इतने उदारमना कहे जाते हैं और हमारी उदारता की मिसाल यह कि जमींदार ही नहीं अंग्रेजों तक के साथ भी हम वफादारी निभाते रहे हैं, लेकिन अपने ही देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ तोड़ने में लगे रहे, जो हर मौके पर वफादारी निभाता रहा है। वास्तव में देखा जाय तो जग की यही रीति है आप कितना भी काम करते रहिए जब-तक आप कैमरे की जद में है आप यूँ कह लें कि सत्ता के साथ हैं तभी आपकी या आपके काम की गिनती होती है। भोले-भाले निश्छल किसान तो निष्ठापूर्वक काम करना जानते हैं दिखावा करना नहीं। इसका फायदा सत्ताधारी और सत्ता से जुड़े स्वार्थी लोगों ने खूब उठाया किसानों के कार्यों, उनकी मेहनत की मलाई स्वयं खाते रहे और उनको खड्डे में धकेलते रहे।

बात चली है भारत की या गाँधी के भारत की तो गाँधी का यह मानना था कि एक बहुत बड़ी आबादी के रूप में किसानों का साथ ही देश को आजादी दिला सकता है, हालाँकि गाँधी किसान नहीं थे न ही किसान परिवार से उनके कोई ताल्लुकात ही थे। यहाँ तक कि उनकी शिक्षा-दीक्षा भी विदेश में ही हुई थी। लेकिन उनमें एक सजग राजनेता के गुण विद्यमान थे। इसीलिए दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के उपरांत उन्होंने भारत-भ्रमण कर यहाँ की किसानी संस्कृति और उसके जज्बे को पहचान लिया था। यहीं से गाँधी ने किसानों की वकालत करना भी शुरू किया। किसानों का दिल जीतने के लिए उनसे इस तरह से संवाद स्थापित किया कि साफ दिल वाले किसान उनको अपना मसीहा मान बैठे। गाँधी के नेतृत्व में मजदूरों-किसानों को भी अब यह विश्वास हो चला था कि स्वतंत्रता आन्दोलन उन्हें अंग्रेजों के शोषण से जरूर मुक्ति दिलाएगा। स्वतंत्रता की चाह और अपनी मातृभूमि को गोरों से मुक्ति दिलाने के लिए वे अपने प्राण भी निछावर करने से पीछे नहीं हटे। इतिहास गवाह है कि किसान मजदूर के बच्चे ही अपने प्राणों की बाजी लगाकर सेना में शामिल होते रहे हैं। विकिपीडिया पर दी हुई जानकारी के अनुसार प्रथम विश्व युद्ध के दौरान 10 लाख भारतीय लोगों को बिना किसी प्रशिक्षण के सेना में भर्ती किया गया जिसका नाम 'भारतीय ब्रिटिश सेना' रखा गया था। प्रशिक्षित न होने का खामियाजा यह रहा कि लगभग 62 हजार सैनिक मारे गए और 67 हजार घायल हो गए। इस तरह से पूरे युद्ध के दौरान लगभग 74187 किसान सैनिकों की मौत हो गयी।[2] इस संबंध में वीर भारत तलवार ने ठीक ही लिखा है कि "लड़ाई शब्द भारत के किसानों की जिंदगी का हिस्सा बन गया क्योंकि इस लड़ाई के लिए उनसे 'चंदा' लिया गया था; लड़ाई चंदा। वह लड़ाई भारत के किसानों के पैसों से चल रही थी। उसमें लड़ने वाले सिपाही भी भारत के किसान ही थे; किसानों के भाई-बेटों को रंगरूट बनाकर लड़ाई के मैदानों में भेजा गया था। यूरोप के मैदानों में जो खून बह रहा था, उसमें भारत के किसानों का खून बह रहा था। भारत के सभी अखबार चाहे राष्ट्रवादी हों या अंग्रेजों के पिट्ठू - यूरोप की लड़ाई की खबरों और तस्वीरों से भरे रहते थे।"[3] इस आँकड़े से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसानों की जान की कीमत कितनी थी या है। इतना कुछ खोने के बाद हासिल सिर्फ इतना हुआ कि भारत

आने के बाद बदहाल किसानों की स्थिति देखकर करो या मरो का रुख अपना लिया गया और बगावत की शुरुआत यहीं से हो जाती है।

भारत में किसानों ने स्वत्रंता आंदोलन के साथ-साथ अपने हक की बहुत सी लड़ाइयाँ लड़ी हैं कभी इसके अगुआ स्वामी सहजानंद सरस्वती रहे तो कभी बाबा रामचंद्र, कभी आचार्य नरेन्द्र देव। इसके अलावा भी कुछ और जुझारू किसान नेता हैं जिन्हें हम नहीं जानते या जिन्हें जानना आज बेहद जरूरी हो जाता है उनमें छोटा रामचन्द्र उर्फ सूरज प्रसाद, केदारनाथ, नईम, फारुख अहमद, मदारी पासी, सहदेव, गरीब दास पासी, रघुबीर कलवार, रहमत अली आदि रहे हैं। इन सभी ने अपने-अपने नेतृत्व के माध्यम से किसान आन्दोलन को गति प्रदान करते हुए उनकी बेहतरी के लिए हर संभव प्रयास किया। मदारी पासी का किसान आंदोलन में योगदान को इतिहासकारों ने भी जगह नहीं दी, जबकि अंग्रेजी अखबारों में इसका जिक्र मिलता है। इनके योगदान को दबाने की पुरजोर कोशिश भी की गयी। साधारण किसान परिवार में जन्मे मदारी पासी किसानों की समस्याओं को पूरी तरह समझ और झेल रहे थे। इन्हें किसानों की वास्तविक चिंता थी जिसके परिणामस्वरूप इन्होंने किसानों के अधिकारों के लिए 'एका आन्दोलन' चलाया। अपने 'एका आन्दोलन' के माध्यम से किसानों को लगान न देने और उन पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध संगठित करने का काम किया। अपने भाषण में वे कहते हैं, "किसान भाईयो! जमीन हमारी, मेहनत हमारी, पैदावार हमारी लेकिन ले जाता है कोई और। हम सब मिलकर यह शपथ लें कि आगे से यह अत्याचार नहीं सहेंगे। किसी को लगान न देंगे। अगर एक किसान जेल जाता है तो बाकी गाँव उसके घर-परिवार की, खेत की देखभाल करेगा। अगर किसी एक किसान की संपत्ति या जमीन नीलाम हो जाती है तो कोई दूसरा किसान उसे नहीं खरीदेगा।"[4] मदारी पासी की लोकप्रियता जनमानस में इस कदर छा गयी कि लोग उन्हें 'गरीबों के गाँधी' के नाम से पुकारने लगे थे।

भारत में एक सुव्यवस्थित किसान आंदोलन को चलाने का श्रेय स्वामी सहजानंद को जाता है। स्वामी जी ने किसानों के लिए इतना किया कि वे किसानों के भगवान के रूप में ही याद किए जाते हैं। इनका एक ही नारा था-

जो अन्न वस्त्र उपजायेगा, अब सो कानून बनायेगा ।
ये भारत वर्ष उसी का है, अब शासन वही चलायेगा ॥

गाँधी जी के द्वारा चलाया गया असहयोग आन्दोलन जब बिहार में गति पकड़ रहा था तब स्वामी सहजानंद उसके केंद्र में थे। और यहीं से उन्हें गरीब-किसानों को करीब से देखने का मौका मिला। उन्होंने यह महसूस किया कि गरीब किसान दोहरी मार झेल रहे हैं, एक अंग्रेजों की दूसरी जमींदारों की। 1934 के प्रलयकारी भूकंप ने तो उन्हें पूरी तरह बरबाद ही कर दिया इसके बावजूद जमींदार किसानों को टैक्स देने के लिए मजबूर करते रहे। स्वामी जी किसानों की समस्या से गाँधी को अवगत कराते हैं। इस संबंध में गाँधी का कोई सकारात्मक रुझान नहीं दिखता, "1934 के भयानक भूकंप में किसान तबाह और बरबाद हो गए थे। लोटा-थाली बेचने, कर्ज लेने को मजबूर थे। ऊपर से जमींदारों के लठैत कर देने के लिए प्रताड़ित कर रहे थे। उन्हीं दिनों पटना में कैम्प कर रहे गाँधी से सहजानंद सरस्वती मिले और जमींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष में सहयोग देने को कहा, जिससे किसानों पर पड़ रही दोहरी मार से बचाया जा सके। गाँधी जी ने स्वामी जी की बात सुन, साफ मना कर दिया। बोले, "जमींदारों के अधिकांश मैनेजर कांग्रेस के कार्यकर्त्ता हैं। वह कांग्रेस के स्तंभों के विरुद्ध संघर्ष नहीं कर सकते। जमींदार किसानों की तकलीफें और शिकायतें दूर कर देंगे, आन्दोलन की कोई जरूरत नहीं। गाँधी जी ने स्वामी जी को दरभंगा राज से मिलकर किसानों के लिए जरूरी अन्न का बंदोबस्त करने को कहा। गाँधी जी की बात सुन सहजानंद आग बबूला हो गए और तत्काल वहाँ से यह कहकर चल दिए कि किसानों का सबसे बड़ा शोषक तो दरभंगा राज ही है। मैं उससे भीख माँगने कभी नहीं जाऊँगा। इसके बाद स्वामी जी का गाँधी जी से पूरी तरह मोहभंग हो गया।"[5] अंततः स्वामी जी की अगुवाई में किसानों ने अपने हक की लड़ाई के लिए विद्रोह कर दिया।

हमें यह याद रखना चाहिए था, जिन किसानों और मजदूरों ने देश को आजाद कराया, वे अपने हक की

लड़ाई में कहाँ पीछे रहते। भारत के विभिन्न हिस्सों में किसान विद्रोह की खबरें अखबारों में छपने लगीं। तब के संयुक्त प्रांत क्षेत्र के कुछ हिस्सों में यह विद्रोह 'अवध के किसान विद्रोह' के रूप में इतिहास में दर्ज हो गया। जिसमें फैजाबाद, बरेली, प्रतापगढ़ से लेकर बिहार, बंगाल, राजस्थान, महाराष्ट्र, तेलंगाना आदि जगहों पर किसान अपने हक और अधिकार की लडाई लड़ रहे थे। किसानों की पहली माँग अपनी परंपरागत पैतृक जमीनों पर स्वामित्व की ही थी। प्रथम विश्व युद्ध के बाद थोपे गए युद्धकर, अकाल, महामारी, बेदखली और लगान की सख्ती से वसूली के कारण भारत में किसान आन्दोलन और तेज हो गया। इस आन्दोलन की आग से सिर्फ अवध प्रान्त ही नहीं जला, बल्कि इसके ताप को पूरे भारत भर में महसूस किया गया।

किसानों ने जिस नेता पर विश्वास कर उसे अपना सर्वस्व दे दिया उस नेता ने भी उन्हें उनके दुःख से निजात दिलाने में कोई मदद नहीं की। भारतीय जन-मानस में चमत्कारिक व्यक्तित्व के रूप में प्रसिद्धि पाने वाले गाँधी किसानों के जीवन में कोई चमत्कार नहीं दिखा पाए। हालाँकि गाँधी की व्याप्ति जनमानस में इस कदर छाई हुई थी कि किसान आन्दोलन के परिणामस्वरूप किसानों के हित में जितने भी फैसले आए उनमें से अधिकतर का श्रेय गाँधी को ही मिलता रहा, जबकि उसमें उनका उतना योगदान नहीं था। इस सन्दर्भ में सुभाष चंद्र कुशवाहा लिखते हैं, "वह महात्मा, साधु, पंडित, या ब्राह्मण, यहाँ तक कि देवता हैं। उनके नाम से प्रतापगढ़ में बेदखली कम हुई, ऐसा लोगों में विश्वास था। जबकि हकीकत यह थी कि प्रतापगढ़ में बेदखली किसान आन्दोलन के वजह से रुकी थी।"[6]

गाँधी अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में 'नील का दाग' और 'अहिंसा देवी का साक्षात्कार' नामक अध्याय में चंपारण के किसानों से सीधे रूबरू होने की बात करते हैं। लेकिन उनका यहाँ प्रयास 'कठिया प्रथा' को समाप्त करने तक का रहा है। देखा जाय तो गाँधी एक तरफ किसानों से हमदर्दी जताते हैं तो वहीं दूसरी तरफ जमींदारों के पक्ष में खड़े दिखाई पड़ते हैं। यह बहुत कुछ 'गोदान' के राय साहब जैसा है। जिनसे प्रेमचंद और होरी दोनों की सहानुभूति है। हम जानते हैं गाँधी किसानों की समस्याओं को सुनने के लिए चंपारण, बिहार से लेकर अवध के लखनऊ, कानपुर, प्रतापगढ़ आदि जगहों का भ्रमण करते हैं, वे अपना भ्रमण तब करते हैं जब यहाँ किसान आन्दोलन अपने चरम पर था। यहाँ पर किसानों के दो लोकप्रिय नेता बाबा रामचंद्र और केदारनाथ किसान आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान करते समय गिरफ्तार कर लिए जाते हैं और किसान भी भुखमरी और दमन के भारी शिकार हो जाते हैं। जिसमें सैकड़ों किसान मारे जाते हैं। यहाँ भी गाँधी इन दोनों नेताओं को छुड़ाने की बात नहीं करते बल्कि किसानों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे अपने नेता का नहीं, सरकार का साथ दें। सुभाषचंद्र कुशवाहा लिखते हैं, "10 फरवरी, 1921 को फैजाबाद की एक किसान सभा में गाँधी किसानों को यह सलाह देते हैं कि 'यदि जमींदार आपको यातना देते हैं तो उन्हें सहन करें। हम नहीं चाहते कि जमींदारों के विरुद्ध संघर्ष किया जाए। जमींदार भी दास ही हैं और मैं नहीं चाहता कि उन्हें परेशानी हो। अगर आप मर्दाना लोग हैं, कायर नहीं हैं तो आपको केदारनाथ को मुक्त कराने के लिए संघर्ष नहीं करना चाहिए बल्कि जेल जाकर सरकार को बताना चाहिए कि हम सरकार के साथ हैं।"[7] उनका यह मानना था कि जमींदार एक दिन स्वयं बदल जायेंगे और किसानों के साथ अच्छा व्यवहार करने लगेंगे। साथ ही गौरतलब बात यह भी है कि गाँधी जमींदारों के परंपरागत हक छीनने के पक्ष में कभी नहीं दिखाई पड़ते।

गाँधी की यह बात अक्सर खटकती है कि किसानों के हक की बात करते हुए भी गाँधी जमींदारों के पक्ष में क्यों खड़े रहते हैं? इसका कारण यह था कि अधिकांश जमींदार कांग्रेस के कार्यकर्त्ता थे। इनका विरोध कर गाँधी उनको नाराज नहीं करना चाहते थे। देखा जाय तो आज ही नहीं पहले से ही सत्ता पूँजीवादियों के साथ रही है। गाँधी भी इससे भिन्न नहीं थे। इतना ही नहीं, सुभाषचंद्र कुशवाहा लिखते हैं कि, "1922 में बारडोली कांग्रेस कमेटी की बैठक में उन्होंने जमींदारों को आश्वस्त किया कि कांग्रेस की मंशा उनके कानूनी अधिकारों पर चोट करने की कतई नहीं है। किसानों द्वारा लगान न देना देश-हित के लिए घातक होगा। उन्होंने असहयोग आन्दोलन के दौरान

जमींदारों, तालुकेदारों के विरुद्ध चले किसानों के विद्रोह की निंदा की।"[8] यशपाल ने भी गाँधी को एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में देखा जिसमें गाँधी ऐसा संघर्ष नहीं चाहते थे जो सामंती वर्णाश्रम व्यवस्था के खिलाफ हो, जिसके वे पक्षधर थे।

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परीक्षण भारतीय सामाजिक व्यवस्था को समझकर ही किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में उस कालखंड में एक विराट व्यक्तित्व के रूप में गाँधी की छाप से इनकार नहीं किया जा सकता। देश की स्वतंत्रता की धुरी में भी गाँधी हैं। गाँधी के योगदान को देश कभी भुला नहीं पाएगा। लेकिन देश को विदेशियों के चंगुल से तथा किसानों को अपने ही देश के जमींदारों से मुक्त कराना एक गंभीर चुनौती थी। यहाँ गाँधी के अतिरिक्त किसी और विचारधारा को महत्व न मिलने के कारण गाँधी का व्यक्तित्व प्रभावशाली तथा अपरिहार्य हो जाता है। देखा जाय तो एक ओर जहाँ अंग्रेजों के प्रति इनका दृष्टिकोण स्पष्ट है वहीं दूसरी ओर किसान और जमींदार में से जमींदार के पक्ष में खड़े दिखाई पड़ते हैं। कहना यह है कि किसानों ने जिसे अपना मसीहा चुना वह उनकी उम्मीदों पर कितना खरा उतरा। साहिर लुधि यानवी के इस शेर से यह बात और अधिक स्पष्ट हो सकती है..

'हर एक दौर का मजहब नया खुदा लाया,
करें तो हम भी मगर किस खुदा की बात करें।'

किसान विद्रोह कितना सफल हुआ है, इसका अंदाजा किसानों की वर्तमान स्थिति से लगाया जा सकता है कि प्रत्येक आन्दोलन और क्रांति में अपनी पूर्णाहुति देने के बावजूद इसको प्रतिफल प्राप्त नहीं होता। आज भी प्राकृतिक आपदा जैसे ओलावृष्टि, अतिवृष्टि, निम्नवृष्टि का शिकार किसान ही है या तो इनको उचित मुआवजा नहीं मिलता या मुआवजे के नाम पर 2-4 किसानों को चेक देते हुए फोटो खींच कर समाचार पत्रों में छपवा कर खानापूर्ति कर दी जाती है। इतना ही नहीं आज भी सरकार के पास उनके दुःख दूर करने के कोई समुचित प्रबंध नहीं हैं। यहाँ तक कि 2019 में उत्तर प्रदेश में पराली जलाने वाले 586 किसानों को नोटिस जारी की गयी, जबकि कृषि वैज्ञानिक एम. एस. स्वामीनाथन का यह कहना कि, 'हमें किसानों को दोषी ठाहराना बंद करना चाहिए क्योंकि इससे कुछ हासिल नहीं होगा, इसके बजाय हमें ऐसे तरीके अपनाने चाहिए जो आर्थिक और पारिस्थितिकीय रूप से जरूरी हो।' उनका सुझाव यह था कि दिल्ली, हरियाणा और उत्तर-प्रदेश की सरकारें 'धान-बायोपार्क' लगाएं ताकि किसान पराली या पुआल को रोजगार और आय कमाने में परिवर्तित कर सकें।' लेकिन इसके बावजूद 166 किसानों के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गई, 185 किसानों पर चार लाख पचहत्तर हजार रुपये का जुर्माना लगाया गया।[9] 17 नवंबर 2019 के 'द हिन्दू' अखबार की रिपोर्ट के अनुसार 'पंजाब में पराली जलाना किसानों की मजबूरी है क्योंकि उन्हें अपने खेत को अगली फसल के लिए तैयार करना है। उसी रिपोर्ट के अनुसार सरकार के पास ऐसी कोई योजना नहीं है जो किसानों को इससे मुक्ति दिला सके या इसकी वैकल्पिक व्यवस्था कर सके।'[10] इससे यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि अगर किसान अपने खिलाफ हुई साजिशों के प्रति मुखर न हुए होते तो जो थोड़ी-बहुत नजर इनकी तरफ फिरी है वह भी नहीं गयी होती। देखा जाय तो देश की एक बड़ी आबादी आज भी दुःख के उसी कुचक्र में फँसी हुई है बस इसका स्वरूप बदल गया है। मैनेजर पाण्डेय ने अंग्रेजों के जमाने के किसानों और आज के समय में किसानों की बदहाल स्थिति का सही मूल्यांकन करते हुए कहा है कि "अंग्रेजी राज के जमाने की महाजनी सभ्यता से आज की महाजनी सभ्यता अधिक चालाक और अधि क खूँखार है। इसीलिए आज की महाजनी सभ्यता के शिकंजे में फँसे जितने किसानों ने आत्महत्या की है उतने किसानों ने अंग्रेजी राज के समय भी आत्महत्या नहीं की थी।"[11]

इस तरह देखा जाय तो तमाम तरह के विकास के बाद भी जमीन और जंगल पर किसानों के अधिकार की समस्या अब भी प्रासंगिक बनी हुई है, जैसी स्वतंत्रता से पहले बनी हुई थी।

सन्दर्भ :

1. आधुनिक भारत, विपिन चंद्र, अनु. - श्यामविहारी राय, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् : 158
2. प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय सेना,

wikipedia.org

3. किसान, राष्ट्रीय आंदोलन और प्रेमचंद : 1918 वीर भारत तलवार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली : 112
4. प्रमोद कुमार, सरदार भगत सिंह के सहयोगी शिव वर्मा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत,नई दिल्ली, 2015 : 14
5. अवध का किसान विद्रोह 1920 से 1922, सुभाषचंद्र कुशवाहा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली : 280
6. वही : 275
7. वही : 277
8. गाँधी स्पीचेज ऐट बनारस, फैजाबाद एंड लखनऊ, 1921
9. द वायर, 06 नवम्बर 2019
10. द हिन्दू, 17 नवम्बर 2019
11. स्वाधीनता आन्दोलन में किसानों की भूमिका और उनका भविष्य; संपादक – सूर्यभान राय ।

❑❑❑

SHODH SAMVID
ISSN 2393-980X
शोध संविद
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ अविनाश कुमार झा
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास
प्रो. जगतनारायण कॉलेज, खगौल

आलेख

वर्तमान समय में हिंसा, अहिंसा और गाँधी

अहिंसा पर विचार करने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है कि जो समाज विज्ञान में अबतक विचार किए गए हैं उनका लेखा-जोखा कुछ हद तक किया जाय। यह इसलिए भी आवश्यक है कि यह दोनों अवधारणाएँ एक दूसरे से सम्बद्ध हैं- भाषा के स्तर पर और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में। भाषा के स्तर पर 'अहिंसा' का अर्थ साधारणत: वो है जो 'हिंसा' का नहीं है- यह नहीं का संबध ऐसा होता है जिस में हम अगर हिंसा को जान पाते हैं तो 'अहिंसा' या अहिंसक क्रिया के बारे में अनुमान लगाते हैं और अनुमान के आधार पर उसे जानने की कोशिश करते हैं या साथ ही साथ समाज में अपने आस पास हुई घटनाओं को हिंसा या अहिंसा का नाम देते हैं। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में 'हिंसा' मानव सभ्यता के साथ कब से रहा है, कहना कठिन है; प्राय: सभ्यता के आरंभिक जीवन से संबद्ध रहा है और साथ ही मनुष्य अहिंसा के तरफ प्रेरित भी रहा है, समय समय पर इस प्रसंग में विशद विचार भी प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। ज्यादातर ऐसे विचार 'हिंसा' की अवधारणा, सामाजिक या राष्ट्रीय स्तर पर उसका प्रकोप, उससे उत्पन्न क्षोभ, इत्यादि को ध्यान में रखकर ही प्रकट किए गए हैं। इसलिए जब हम गाँधी के अहिंसाजन्य विचार की व्याख्या, उसकी प्रासंगिकता एवं आज के अपने राष्ट्रीय राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन में उसके औचित्य का विश्लेषण करना चाहते हैं तो यह उचित ही है कि 'हिंसा' के प्रसंग में विद्वानों ने अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर क्या विचार किया है, यह जाने और तब उसके साथ अहिंसा संबंधी विचार ऐसे विद्वानों के मार्फत किस प्रकार उभरा है और उन विचारों में गाँधी का स्थान कहाँ है, उनमें कितनी गरिमा है, वह कितना सार्थक है, इसकी विवेचना करें।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि हिंसा या अहिंसा संबंधी जो चिन्तन देश या राष्ट्र के तहत हुई है उनमें ही कुछ को लेकर उसकी विवेचना इस आलेख में करने का प्रयास है। राष्ट्र और राष्ट्र के बीच अन्तरराष्ट्रीय का परिप्रेक्ष्य वैसे बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन प्रस्तुत आलेख में इस पक्ष की चर्चा नहीं कर रहा हूँ। साथ ही इस संदर्भ में आज तक हुए चिन्तनों में सबों का उल्लेख एवं विश्लेषण संभव नहीं हो सका है। कुछ चुने हुए दार्शनिकों और चिन्तकों के विचारों का ही विश्लेषण किया जा सका है। 'हिंसा' एवं 'अहिंसा' से संबंधित विचारधाराओं को मुख्यत: दो भागों में बाँटा जा सकता है: प्रथम वह जिसके अनुसार 'हिंसा' समाज में किसी

न किसी हद तक वांछनीय है। और, दूसरा वह जिसके अनुसार हिंसा समाज में किसी भी तरह वांछनीय नहीं है, उसका होना अभिशाप है- वह अवांछनीय है। इसमें प्रथम विचारधारा को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है। 'अ', इसमें उस तरह के विचार आते हैं जो हिंसा को राज्यसत्ता का अभिन्न अंग मानते हैं। हिंसा और राज्य सत्ता एक दूसरे से सकारात्मक रूप से जुडे हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दूसरा, 'ब', वे विचार हैं जिसके अन्तर्गत राजसत्ता और हिंसा परस्पर विरोधी है। उपर्युक्त 'अ' यानी हिंसा और राजसत्ता को दो भागों में बाँट सकते हैं- 'क' ऐसे विचार जो हिंसा को महज एक सहायक महत्व का मानते हैं, एक साधन के रूप में, साध्य या लक्ष्य के रूप में नहीं। इस विचार से हिंसा का महत्व गौण हो जाता है। दूसरा 'ख' वह विचार श्रृंखला है जिसके अनुसार हिंसा का महत्व प्रध ान है। इस विचार के मानने वालों ने हिंसा की महिमा का बखान किया है, उसके औचित्य को दर्शाने की कोशिश की है।

प्रस्तुत आलेख में हिंसा के समर्थक विचारधारा के विश्लेषण से प्रारम्भ कर इसके विभिन्न विचारध ाराओं के विश्लेषण करने की कोशिश करता हूँ और अन्त में अहिंसा जन्य अर्थात हिंसा को अवांछनीय मानने वाले विचारों को प्रस्तुत करने का प्रयास करूंगा।

हिंसा की समर्थक विचारधारा की श्रेणी के विचारकों में फेनन (Frantz Fanon) और (Sartra) का नाम काफी चर्चित है। फेनन की पुस्तक wretched of the Earth अंग्रेजी में 1961 में प्रकाशित हुई और इसके अन्य संस्करण भी 1965, 1968, एवं 1970 में हुए।[1] फेनन ने और भी कई ग्रंथ और लेख लिखे; परन्तु सबसे ज्यादा चर्चित इसी पुस्तक से हुए। उनकी लोकप्रियता इससे भी समझी जा सकती है कि उनके ऊपर अंग्रेजी और फ्रेंच में कम से कम सात पुस्तक और दर्जनों लेख अबतक लिखे जा चुके हैं।[2] फेनन तीसरी दुनिया की बात करते हैं, इस दुनिया के औपनिवेशक शिकंजों से ग्रस्त व्यक्ति की बात करते हैं जिनके लिए उनके अनुसार हिंसा का मार्ग ही एक मार्ग है जिससे वे अपने आप को फिर से जीवन्त बना सकते हैं; अपने आप को हीनताबोध से मुक्त कर सकते हैं; अपने भीतर के मानव को अपने इतिहास से युक्त कर सकते हैं; अपनी चिन्ता से अपने को उद्धार कर सकते हैं; और इस तरह अपने व्यक्तित्व की पहचान कायम कर सकते हैं।[3] हिंसा की महिमा जतलाते हुए वे उसे उचित ठहराते हैं। हिंसा उचित भी है और आवश्यक भी क्योंकि मनुष्य सृजनशील है स्वभाव से, उसका यह स्वभाव अगर उसमें नहीं रहे तो फिर वह अपनी मनुष्यता खो बैठता है। औपनिवेशिक शिकंजे ने उसकी सृजनशीलता समाप्त कर दी – इसलिए अपनी स्वाभाविक स्थिति बनाए रखने के लिए उसे स्वयं को सृजनशील बनाना होगा जो बिना हिंसा के नहीं हो सकता- मनुष्य का मनुष्य बनना हिंसा से ही सम्भव है। इस बात को सार्त्र ने और जोर देकर कहना चाहा है। फेनन की उपर्युक्त पुस्तक की भूमिका सार्त्र की लिखी हुई है।[4] सार्त्र की यह धारणा कि हिंसा से मनुष्य अपने आप को सृजन में लगाता है, प्राय: हेगेल मार्क्स, नीत्से और सोरेल की परम्परा से कुछ हद तक प्रभावित है। नीत्से के अनुसार हिंसा में जीवन दायिनी शक्ति है और बर्गसन ने इस जीवन दायिनी शक्ति को मनुष्य के लिए सर्वोपरि महत्व का माना है। लगता है सोरेल इन दोनों से प्रभावित थे। उनकी पुस्तक Reflections on Violins, 1906 में प्रकाशित हुई,[5] जिसमें उन्होंने सृजनशीलता के दर्शनात्मक विचार-विमर्श प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार सृजनशील मात्र मजदूर वर्ग है जो कुछ बनाता है, कुछ सृजन करता है; और जो वर्ग समाज में है वे परजीवी हैं और उनके खिलाफ हिंसा उचित एवं आवश्यक है। उपर्युक्त दोनों वर्गो के साथ सोरेल नौकरशाही को भी समेटते हैं। नौकरशाही के कारण हिंसा का समाज में महत्वपूर्ण स्थान बन जाता है।

नौकरशाही के द्वारा जो शासन होता है उसमें जिम्मेदारी न एक के ऊपर, न कुछ लोगों पर न बहुतों पर रहती है- नतीजा यह होता है कि ऐसा शासन बिना व्यक्ति के शासन कहलाता है, अर्थात किसी व्यक्ति विशेष द्वारा शासन नहीं होता है। निरंकुशता का यह एक मान्य सिद्धांत है कि जो सरकार या शासन अपनी जिम्मेवारी और कार्य का स्पष्टीकरण न दे वह निरंकुश माना जाता है। नौकरशाही बिना व्यक्ति का शासन पर आधारित होता है, तो इस प्रकार इसमें निरंकुशता आ ही

जाती है। यह ऐसी निरंकुशता है जिसमें आप निरंकुश को नहीं देख पाते मगर उसकी निरंकुशता को भोगने पर मजबूर होते हैं। सोरेल ऐसी निरंकुशता के खिलाफ हिंसा का होना, बढना जायज मानते हैं और इसमें इनका साथ समाजशास्त्री पेरेटो भी देते हैं। पेरोटे अपनी व्याख्या कुछ और आगे बढाते हुए कहते हैं कि नौकरशाही की वृद्धि से व्यक्ति की स्वतंत्रता घटती जा रही है। इस शताब्दी के आरंभिक दशकों में उन्हें ऐसा आभास हुआ कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों में नौकरशाही पनप रही है और उसके पनपने से व्यक्ति की स्वतंत्रता अर्थात उसके स्वतंत्र रूप से सोचने, समझने या कुछ करने की स्थिति घटती जा रही है, जिससे समाज में सामाजिक जीवन पर आघात हो रहा है। इसलिए जैसे जैसे सामाजिक जीवन का पतन होगा नौकरशाही के खिलाफ समाज में हिंसा का प्रदुर्भाव, उसका बोलबाला तो होगा ही और ऐसा होना आवश्यक है।

आज के विश्व में छात्रों का हिंसक आन्दोलन तथा अन्य हिंसक आन्दोलनों की जड़ में नौकरशाही की निरंकुशता को ही बहुत से चिन्तक जिम्मेवार ठहराते हैं और हिंसा को जायज मानते हैं। इन सभी विचारों के प्रेरणाश्रोत हैं सार्त्र।[6]

अब हम इस वर्ग के अन्तर्गत मार्क्स के विचारों को देख सकते हैं। कार्ल मार्क्स के बारे में विदित है कि उन्होंने हेगेल के सिद्धांतों से प्रेरणा भी ली और साथ ही उनके आदर्शवादी सिद्धांत की जगह अपने भौतिकवादी दृष्टिकोण की इतिहास को समझने जानने और बदलने के संदर्भ में स्थापना की। हेगल ने भी मनुष्य मनुष्य का सृजन करता है की बात की थी। उनके अनुसार मनुष्य अपना सृजन या अपने आप को बनाता है, ऊपर उठाता है अपने मनुष्यत्व को अपने में स्थापित करने की कोशिश करता है। अपने विचारों द्वारा हिंसा से नहीं जैसा सार्त्र कहते हैं। मार्क्स भी इस बात से सहमत है कि मनुष्य अपने अन्दर मनुष्यत्व का सृजन करता है लेकिन वह ऐसा सृजन करता है श्रम द्वारा, हिंसा से नहीं। 1945-46 की लिखी हुई पुस्तक जर्मन आइडियोलोजी में मार्क्स एवं ऐंजेल्स स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य का सामुहिक रूप से बदलाव व्यावहारिक आंदोलन द्वारा ही हो सकता है।[7] ऐसे आंदोलन के लिए एक बात उठती है कि जिससे न कि इतिहास बदल सकता है बल्कि इतिहास बदलने वाले श्रमिकों का समुदाय भी अपने आप को इतिहास बदलने के लिए तैयार करता है, अपने में परिवर्तन करता है और ऐसा परिवर्तन सर्जनात्मक होता है। हिंसा से किसी व्यक्ति की मुक्ति की बात मार्क्स और ऐंजेल्स कभी नहीं करते हन्नाह आरेन्ट का ऐसा विश्वास है।

इतिहास में हिंसा के महत्व और भूमिका की विवेचना मार्क्स ने किया है; लेकिन उनके अनुसार हिंसा का स्थान गौण है। एक तरह की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था का अन्त उसके अन्दर की परस्पर विरोधी ताकतों के द्वारा होती है। नयी व्यवस्था की उत्पति हिंसा से नहीं होती- वैसे उसकी उत्पति हिंसा से नहीं होती है वैसे उसकी उत्पति से पहले हिंसा होती है। लेकिन हिंसा का पहले होने का मतलब यह नहीं है कि वह कारण बन जाय। किसी राज्य के द्वारा हिंसा होती है क्योंकि वह राजा समाज के शासक वर्ग के द्वारा शासित होता है और इस वर्ग के पास जो सत्ता रहती है वह इसलिए कि यह वर्ग मालिक है। यही प्रध ान स्त्रोत है उसके सत्ता का; वह हिंसा का भी उपयोग करता है साधन के रूप में और ऐसा उपयोग कभी भी प्राथमिक महत्व का नहीं, बल्कि द्वितीयक महत्व का होता है।

इससे हिंसा के समर्थक वर्ग के विचार स्पष्ट होते हैं। मार्क्स हिंसा को प्रधान नहीं मानकर गौण मानते हैं, उसमें किसी तरह की महिमा की बात नहीं हैं। यह एक साधन है और खासकर गौण साधन है; प्रधान साधन नहीं। लेकिन मार्क्स इस वर्ग के विचारकों के साथ एक बात में सहमत हैं कि हिंसा और राजसत्ता एक दूसरे से सकारात्मक रूप से जुडी हुई है। हिंसा और राजसत्ता के इस संबंध को हिंसा समर्थित वर्ग के विचार में रखा गया है। इस विचार के अनुसार हिंसा राजसत्ता का सबसे प्रखर अभिव्यक्ति है। समाज वैज्ञानिकों ने भी इस मत का प्रतिपादन किया है। सी.राइट मिल्स मानते हैं कि राजनीति राजसत्ता प्राप्त करने का संघर्ष है और राजसत्ता की चरम स्थिति हिंसा है। मैक्स वेवर ने इनसे बहुत पहले राज्य के बारे में कहा था कि यह मनुष्यों द्वारा मनुष्यों पर किया जाने वाला शासन है जिसका हिंसा एक उचित साधन है। हिंसा का औचित्य यहाँ कथित औचित्य है। माओं का वक्तव्य इस संदर्भ

में प्रय: सबसे सशक्त है जब वे कहते हैं कि राजसत्ता का जन्म बन्दूक की नली से होता है।

राजसत्ता और हिंसा का यह संबंध कुछ लोगों को मान्य नहीं है। ऐसे लोग मानते हैं कि 'हिंसा' और राजसत्ता एक दूसरे के विरोधी हैं। ऐसे विचारकों के अन्तर्गत कई विद्वान आते हैं। हन्नाह आरेण्ट इसके मुख्य चिन्तक हैं। इनके प्रेरणाश्रोत मोन्टेस्क्यू रहे हैं। इनका कहना है कि राजसत्ता जब कमजोर होती है तभी हिंसा जोर पकड़ती है। यदि कोई राजसत्ता शासन में कामयाब है तो फिर उस शासन में हिंसा का स्थान कहाँ है? आरेंट भी अन्य समाज वैज्ञानिकों की तरह, जिनका पूर्व में चर्चा किया गया है, हिंसा को महज साधन मानती हैं; मगर यह ऐसा साधन है जिसे कभी भी किसी भी परिस्थिति में औचित्य नहीं प्राप्त हो सकता। अर्थात यह कभी भी विधिक तौर पर स्वीकृत नहीं हो सकता। यह ज्यादा से ज्यादा कुछ हद तक मान्य हो सकता है। इसकी स्वीकृति इस बात पर निर्भर करता है कि वह साध्य कौन सा है, कितना, किसलिए आवश्यक है, जिसको प्राप्त करने के लिए हिंसा को साधन बनाया जा रहा है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि हिंसा को न्यायसंगत होने के लिए उसे साध्य या लक्ष्य पर निर्भर करना पडता है। उसका अपने पर निर्भर रहने से काम नहीं चल सकता। अर्थात् जिस साधन या साध्य को न्याय संगत होने के लिए अपने से अतिरिक्त पर निर्भर रहना पड़े वह सारहीन है, औचित्य की परिकल्पना से दूर है।[9] हन्नाह आरेंट हिंसा का विरोधी अहिंसा को नहीं मानती; हिंसा की विरोधी वे राजसत्ता को मानती हैं– हिंसा से राजसत्ता का सृजन नहीं हो सकता, राजसत्ता में हिंसा का सृजन हो सकता है जो उसे अर्थात् राजसत्ता को संहार कर सकता है।

आरेंट फिर भी मानती हैं कि हिंसा खास खास परिस्थितियों में वांछनीय है। जब नौकरशाही कुछ सुनती नहीं तो हिंसा का साधन उपयोग करना न्याय संगत हो जाता है या हो सकता है। अपने बचाव में हिंसा का उपयोग वांछनीय हो जाता है। अहिंसा को आरेंट प्राय: एक स्वतंत्र इकाई मानती हैं। हिंसा की क्रिया और अहिंसा की क्रिया एक दूसरे से एक दम भिन्न है, दोनों के अलग अलग आयाम हैं, एक दूसरे का विरोधी नहीं है। हिंसा की क्रिया से विरोध होता है तो सिर्फ राजकीय शासन का। अभी तक किए गए विचार[1] पहले वर्ग के विचार हैं जो हिंसा को वांछनीय मानते हैं।

दूसरे वर्ग के विचार जैसा पहले कहा गया हिंसा को सर्वथा अवांछनीय मानते हैं। इस वर्ग के विचारकों में गाँधी का स्थान सर्वोपरि है। इनके साथ कुछ अन्य भी है जैसे साहित्य के सर्वोच्च नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अलेक्जेंडर सोल्झेनित्सिन। गाँधी प्रजातांत्रिक शासन के निर्वहन के लिए अहिंसा को आवश्यक मानते हैं। गाँधी के लिए अहिंसा एक साधन है मगर यह एक ऐसा साधन है जिसे वैधानिकता एवं न्यायसंगत स्वरूप दोनों प्राप्त है। औचित्य इसलिए कि अहिंसा हिंसा के जैसा सार विहीन नहीं है। इसका अपना सार है इसका सत्य पर आधारितहोना। यह प्रमाणित भी है क्योंकि सत्य पर आधारित होने के चलते यह साधन अपने साध्य को भी न्याय संगत बनाता है। साध्य का न्यायसंगत होना गाँधी के अनुसार साधन के न्याय संगत होने पर निर्भर करता है। साधन और साध्य दोनों को गाँधी एक साथ तौलते हैं। इस मामले में गाँधी उन लोगों से आगे हैं जो इस बात में विश्वास करते हैं कि साध्य संगत होना चाहिए, साधन कुछ भी हो। असंगत साधन साध्य की ओर वास्तविक रूप से गाँधी के अनुसार नहीं ले जा सकता। गाँधी आरेंट के विचारों से प्राय: बहुत दूर नहीं है। आरेंट हिंसा को राजकीय शासन का विरोधी मानती हैं। गाँधी ऐसे शासन जो आजकल के समय में ज्यादातर प्रजातांत्रिक शासन है उसकी सफलता को अहिंसा से जोड़ते हैं– इस तरह आरेंट भी अप्रत्यक्ष रूप से गाँधी की बात, कि अहिंसा हिंसा का विरोधी है, मानती हैं। गाँधी हिंसा और अहिंसा में विरोध इसलिए मानते हैं कि उनके अनुसार अहिंसा सत्य पर आधारित रहता है तो हिंसा असत्य पर। हिंसा की प्रक्रिया में असत्य कहीं न कहीं अवश्य जुड़ा रहता है। इस बात की पुष्टि सोल्झेनित्सिन ने भी अपने नोबेल लेक्चर में 1974 में किया।

आरेंट की तरह इन्होंने भी हिंसा को सारविहीन माना है। इनके अनुसार हिंसा की कोई अपनी शक्ति नहीं, यह तो असत्य या झूठ के सहारे पनपता है, फैलता है; असत्य भी हिंसा के सहारे ही समाज में फैलता है। असत्य और हिंसा का यह स्वाभाविक

अन्योन्याश्रय संबंध है। यदि कोई हिंसा की घोषणा करता है तो समझ लेना चाहिए कि वह असत्य को ही अपना सिद्धांत मानता है। सोल्झेनित्सिन आगे अपील करते हैं कि साहित्यसेवियों के द्वारा ही असत्य समाप्त हो सकता है क्योंकि झूठ संसार में किसी के सामने अगर नहीं टिक सकता है तो वह है कला और साहित्य। गाँधी के विचार इस मामले में शायद और व्यावहारिक है। अहिंसा को जीवन में अपनाने के लिए उनका एक अनुशासन है। उनका कहना है कि अगर भय से कोई मुक्त हो जाता है तो वह सत्य का मार्ग आसानी से ले सकता है। सत्य के मार्ग पर चलकर उससे हिंसा नहीं हो सकती। उससे मात्र अहिंसा ही होगी। भय मनुष्य में इसलिए होता है कि वह विभिन्न प्रकार के मोह से ग्रसित हो जाता है। राष्ट्रीय अर्थात मोह के विनाश से भय का विनाश सम्भव है। प्रश्न है कि मोह का विनाश कैसे हो? गाँधी इसके लिए मानते हैं कि अनासक्ति का अनुशासन हो। वैसे तो ये सारे क्रम अव्यावहारिक लगे, लेकिन मै समझता हूँ कि यह कुछ कुछ व्यावहारिक अवश्य है। समाज में बड़े बड़े संस्थानों में जहाँ नौकरशाही या औपचारिक ढंग से काम होता है वहाँ आधुनिक प्रणाली के अनुसार एक व्यक्ति का दूसरे से औपचारिक या अवैयक्तिक संबंध होता है, वहाँ आधुनिक प्रणाली के अनुसार एक व्यक्ति का दूसरे से औपचारिक या अवैयक्तिक संबंध होता है या कम से कम आशा की जाती है कि होगा। अवैयक्तिक संबंध व्यक्तिगत मोह से परे होता है इसमें अनासक्त भाव कुछ न कुछ अवश्य रहता है। इसलिए अनासक्त भाव को अनुशासन द्वारा लाया जाना कोई बहुत अव्यावहारिक नहीं हैं।[10]

गाँधी के अहिंसामूलक विचारों को प्राय: टाल्सटाय और क्रिश्चयन धर्म ग्रन्थों से भी प्रेरणा मिली। मुख्य प्रेरणा के स्त्रोत वैष्णव मत था तथा गीता का भी योगदान रहा।[11] आज की परिस्थिति में जब हिंसा राजनीति को आक्रांत किए हुए है, समाज इससे आतंकित हो रहा है, मैं समझता हूँ कि गाँधी के अहिंसा जन्य अनुशासन पर अगर हम जोर दे, हम कम से कम कोशिश तो करें कि अनासक्ति भाव आए- कोशिश से कुछ न कुछ तो अवश्य आएगा और कुछ हद तक भी इसमें सफलता मिलने से समाज और राजनीति दानो का स्वास्थ्य सुधार सकता है।

संदर्भ :

1. Fanon, Frantz, 1925-1961, (1968) The wretched of the earth,New York, Grove Press, pp32-38
2. Ibid
3. Zohar, Renale, (1974) Frantz Fanon; Colonialism and Atienation, Renole Zahar, Monthly Review Press, London, pp. 118-20
4. Ibid. pp-80-83
5. Sorel G, (1906) Reflections on Violins, Ed. By Jeremy Jennings, Cambridge University Press, pp-37-72
6. Ibid
7. Marx, K, & Engels, F, (1947) German Ideology, New York: International Publication, pp.87-89
8. Ibid
9. Gandhi, Mohadev K. (1983) Autobiography: The Story of My Experiments with Truth. Translated by Mohadev Desai. Washington, D.C: Public Affairs Press, 1948; reprinted New York: Doves Publications, Inc,
10. Borman, William. (1986).Gandhi and Non-Violence. Albay: State University of New York Press
11. Basanta Kumar Lal, (1973).Contemporary Indian Philosophy, By. Jainendra Prakash Jain At Shri Jainendra Press,

❑❑❑

ISSN 2393-980X

शोध संविद

Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.

An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal

https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

आलेख

❑ शत्रुघ्न कुमार पांडेय

सहायक प्राध्यापक, इतिहास

संत कोलंबा कॉलेज, हजारीबाग

झारखंड का बौद्ध स्थल : बहोरनपुर

झारखंड ही वह धरती है, जहाँ वाराणसी के पाण्डित्यपूर्ण वातावरण से समाधि और ब्रह्मज्ञान की बोझिल शिक्षा 'नैक्संज्ञा-नासंज्ञायतन'[1] से थके-हारे सिद्धार्थ को पहली बार यह आभास हुआ था कि जिस ज्ञान-क्षुधा की शांति के लिए उन्होंने अपने संगे-संबंधियों एवं ऐश्वर्य-वैभव का त्याग कर अभिनिष्क्रमण किया है और संन्यास जीवन के कई वर्ष न्योछावर कर दिये हैं[2], उसकी पूर्ति यहाँ के वन-प्रांतर में ही हो सकती है। इसी आभास के वशीभूत होकर उन्होंने चतरा के सुरम्य इटखोरी क्षेत्र में मोहनानदी तट पर तपस्या की थी।[3] बौद्ध धर्म की मान्यता भी यही है कि इटखोरी पाली भाषा के इतखोई का अपभ्रंश है और यह नाम सिद्धार्थ गौतम की विमाता प्रजापति गौतमी के मुख से उद्भूत हुआ है। इस मान्यता के अनुसार प्रजापति सिद्धार्थ को वापस कपिलवस्तु ले जाने आयी थीं, किन्तु वह असफल रहीं। उनके मुंह से अचानक 'इतखोई' निकला, जिसका अर्थ होता है 'मैंने यहाँ खो दिया'। कहा जाता है कि तब से इस क्षेत्र का नाम इटखोरी पड़ गया।[4] इस नामकरण के पीछे जो भी मान्यता रही है, परन्तु प्राचीन काल में इटखोरी क्षेत्र गया तीर्थ का एक भाग था और पवित्र भूमि के नाम से प्रसिद्ध था।[5] गौतम बुद्ध के पितामह अयोधन इस क्षेत्र से परिचित थे।[6] यहाँ से गुजरते वक्त एक यक्षिणी ने उनसे कहा था कि उनके कुल में स्वर्गदेवता जन्म लेगा और इस क्षेत्र में आकर तपस्या करेगा।[7] इस कथन का प्रमाण बौद्ध ग्रंथ 'मज्झिमनिकाय' में मिलता है। बोधगया के वेष्टन-वेदिका पर किन्नरी के साथ अयोधन का उत्कीर्ण चित्र इस बात की पुष्टि करता है।[8]

झारखंड : बौद्ध धर्म का प्रवेश

झारखंड के जिस क्षेत्र पर बौद्ध धर्म का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा, उसमें चतरा-हजारीबाग-पलामू-संथाल परगना क्षेत्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। पुराने बनारस मार्ग पर या इससे निकट रहने के कारण यह क्षेत्र आवागमन के मार्ग में पड़ता था। इस आवाजाही ने निश्चय ही बौद्ध धर्म के विकास का मार्ग प्रशस्त किया होगा। यह महत्वपूर्ण इसलिए भी है कि यहाँ के कई स्थल भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की नजर में हैं। इटखोरी में कई दौर का उत्खनन पूर्ण हो चुका है और यहाँ से बौद्ध कालीन पुरातत्व के विशद् प्रमाण भी मिल रहे हैं।[9] यहाँ के अन्य क्षेत्रों का उत्खनन होना अब भी बाकी है।

आजादी के बाद इटखोरी प्रक्षेत्र के उत्खनन के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि झारखंड में बौद्ध धर्म का पालना स्थल सर्वप्रथम इटखोरी प्रक्षेत्र ही रहा है। इटखोरी प्रक्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रवेश तो बुद्ध के जीवनकाल में ही हो चुका था। इसके बाद मौर्यवंशी तृतीय शासक सम्राट् अशोक और उसके बाद गुप्त शासकों, मागध-गुप्त शासकों और पाल वंशी शासकों ने बौद्ध धर्म का वृहद् प्रचार-प्रसार किया और स्थापत्य, शिल्प और मूर्तियों के निर्माण करवाए। ऐसा कहा जा सकता है कि इटखोरी प्रक्षेत्र के बाद ही इस राज्य के अन्य क्षेत्रों में बौद्ध धर्म का प्रवेश और प्रचार-प्रसार हुआ।[10] झारखंड के जिस क्षेत्र में इटखोरी प्रक्षेत्र के बाद बौद्ध धर्म फैला, उसमें प्रथम नाम कंजंगल प्रदेश का आता है। पाली ग्रंथ बुद्धचर्या के अनुसार कंजंगल प्रदेश आज का संथाल परगना का क्षेत्र है।[11] अंग प्रदेश के चालिय पर्वत पर अपना 13वां, 18वां एवं 19वां वर्षावास किया था। बौद्धग्रंथ मिलिंदपह्नों के अनुसार मिलिंद के गुरु और इस पुस्तक के लेखक नागानंद भी कंजंगल प्रदेश के ही वासी थे। 18वां एवं 19वां वर्षावास काल में ही बुद्ध अश्वपुर आए थे और वहाँ से वह कंजंगल प्रदेश पहुँचे थे।[12] बौद्ध ग्रंथ दीघ्घनिकाय के संगीतिपरियायसुत्त (पृ.सं 0 3, 10) खंड के अनुसार कंजंगल प्रदेश की बौद्ध पण्डिता कंजंगला बौद्ध विद्यार्थियों को धर्म का उपदेश दिया करती थी। एक बार उन्होंने बुद्ध के उपदेश के एकधर्म से लेकर दस धर्मों तक की विशद व्याख्या की एवं उसके और अधिक व्याख्या के लिए अपने इन भिक्षु शिष्यों को बुद्ध के पास भेजा था। अंगुत्तरनिकाय के अनुसार उस समय बुद्ध कंजंगल में विहार कर रहे थे। उन भिक्षुओं ने कंजंगला द्वारा किए गए व्याख्या को बुद्ध को सुनाया। तब भगवान बुद्ध ने कहा था कि भिक्षुणी ने ठीक और समुचित व्याख्या बतलायी है। वह पंडिता और महाप्रज्ञा है। उन्होंने उस पण्डिता के ज्ञान की सराहना की।[13]

सेतकण्णिक: हजारीबाग-चतरा प्रक्षेत्र

बौद्ध ग्रंथों में इस बात का उल्लेख है कि अपने 19वें वर्षावास काल में बुद्ध ने सुह्य प्रदेश से सेतकण्णिक अर्थात् अबरख वाली भूमि पर चारिका किया था।[14] 'बौद्ध धर्म और बिहार' नामक महत्वपूर्ण पुस्तक के लेखक पंडित हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' ने अपनी पुस्तक 'छोटानागपुर की नदियां' में लिखा है कि भगवान बुद्ध के समय सेतकण्णिक क्षेत्र शुक्तिमान् पर्वतमाला का क्षेत्र था जो 48 डिग्री 45 मिनट से शुरू होता है।[15] इस पर्वतमाला की अधिपत्यका का क्षेत्र हजारीबाग से 28 मील पश्चिम दिशा में बालूमाथ के पूर्वी भाग से आरंभ होता है। इसका आरंभिक क्षेत्र कर्णपुरा का क्षेत्र है, जो भगवान बुद्ध के समय में मध्य देश का दक्षिणी सीमा था। इसी क्षेत्र में 'सेवतागढ़' है, जिसे आजकल 'सीतागढ़' कहा जाता है। सेवता 2817 फीट ऊँचे चन्दवार पहाड़ के पाद दल में बसा है और हजारीबाग से करीब आठ मील दूर अग्निकोण में है। इस सेवता के उत्तर में सिलवार पहाड़ी का शिखर है और यह हजारीबाग से करीब पांच मील पूरब में है। सेवता, सिलवार और कर्णपुरा की भूमि ही बुद्ध काल में संयुक्त रूप से 'सेतकण्णिक' नाम से ख्यात था। इस भूमि का नाम जैन ग्रंथ आचरांगसूत्र में 'वज्रभूमि' या 'शुभ्र भूमि' मिलता है। शुक्तिमान् पर्वतश्रेणी का अधि कांश भाग खनिज संसाधनों से परिपूर्ण है, जिसमें अबरख और कोयला की प्रधानता है।[16]

वास्तव में देखा जाए तो शुक्तिमान् पर्वतमाला चतरा के सिमरिया और टंडवा से शुरू होती है और इसमें चार अधिपत्यिकाएं हैं। इनमें दो प्रायः पूर्व में चलती हैं। तीसरी पूर्वोत्तर की ओर जाने वाली अधि पत्यिका सिमरिया से शुरू होकर कटकमसांडी, इचाक और बगोदर की भूमि को पार करते हुए पूरब में बढ़ कर डुमरी होते हुए पार्श्वनाथ पहाड़ के आगे ढुण्डी होते हुए मैथन तक चली जाती है। झारखंड-बिहार की सबसे ऊँची चोटी पार्श्वनाथ इसी का भाग है। इसी पट्टी में रजडेरवा, तिलैया डैम और बराकर नदी का क्षेत्र है। अंतिम दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ती है।

सेवतागढ़ शुक्तिमान् पर्वतमाला का दक्षिण-पूर्व भाग है। सिमरिया से बादम पहुंच कर इसकी दो भुजा बन जाती है। एक भुजा दक्षिण की ओर चली जाती है और दूसरी भुजा पूर्व की ओर मुड़ती है। पूर्व वाली भुजा जिलिंगा पहाड़ी के नाम से मांडू होते हुए बोकारो नदी की नीचली घाटी तक चली जाती है। यह उसके बाद चरही होते हुए आगे बढ़ जाती है। इस पर्वतमाला में गरही, हरहो, बदमाही, कुनार और बोकारो नदिया उऊमित होती हैं। इस श्रेणी का एक खंडित भाग

चंदवार शिखर है, जिसकी ऊँचाई 2817 फीट है। इसी चंदवार पहाड़ी की पाद भूमि में सेवतागढ़ नामक स्थान है, जो इस समय सीतागढ़ के नाम से प्रसिद्ध है।[17] दरअसल सीतागढ़ सेवतागढ़ का अपभ्रंश है, जो उच्चारण दोष के कारण है। सेवता से सेता और फिर सीता का होना यह बताता है कि लम्बे समय से यह शब्द लोगों की जुबान पर था। वैसे संथाली में सेता का मतलब कुत्ता होता है।

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि बुद्ध आज के हजारीबाग प्रक्षेत्र का चारिका कर चुके थे। संयुक्तनिकाय के उदयीसुत्त (4.3.10) के अनुसार सेतकण्णिक भूभाग पर ही बौद्ध भिक्षु उदायी ब्रह्मचर्य तपस्या पूरा करने और धर्म का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के बाद बुद्ध से मिले थे। दोनों में ज्ञान को लेकर बहुत कुछ बातें हुई थीं। उदायी ने बुद्ध से कहा था, 'भगवन, अब मैंने धर्म को जान लिया है, मुझे अब सच्चा मार्ग मिल गया है।' इस पर बुद्ध ने कहा था, 'ठीक है, तुम्हें जो करना चाहिए था, तुमने किया। अब तुम्हें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।[18]

उदायी सेतकण्णिक के किस क्षेत्र का रहने वाला था यह अज्ञात है और इस पर और अधिक शोध की जरूरत है। परन्तु बुद्ध-उदायी संवाद बताता है कि सेतकण्णिक क्षेत्र में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव बुद्ध के समय में ही स्थापित हो गया था या हो रहा था और यहाँ के जनमानस में यह धर्म लोकप्रिय हो रहा था। बौद्ध ग्रंथ विनयपिटक में सेतकण्णिक का उल्लेख मध्य देश की दक्षिणी सीमा के निर्धारण किया गया है[19] अर्थात् बुद्ध और उनके अनुयायी इस क्षेत्र से परिचित थे। बौद्ध ग्रंथों से ज्ञात होता है कि बुद्ध के समय हजारीबाग का पूर्वी क्षेत्र अर्थात् आज का धनबाद क्षेत्र सुह्य प्रदेश का भाग था, जबकि हजारीबाग का दक्षिणी भाग यानी रांची का जंगली क्षेत्र सीमांत देश कहलाता था और इन दोनों प्रदेशों पर बौद्ध धर्म का प्रभाव था।[20] पलामू अवंती का भाग था। इन क्षेत्रों पर मगध अर्थात् बिम्बिसार एवं आजातशत्रु का प्रभाव था।

बौद्ध ग्रंथों में किसी विलुप्त नगर की चर्चा आती है। इस पर शोध जारी है कि वह विलुप्त नगर कौन सा क्षेत्र हो सकता है। बौद्ध विद्वान और साहित्यकार राहुल सांकृत्यायन, जिन्होंने कई बार झारखंड की यात्रा की थी और भारत की आजादी के संघर्ष के दौरान हजारीबाग केन्द्रीय कारागार में राजनीतिक बंदी भी रहे और यहीं उन्होंने अपनी कालजयी कृति 'गंगा से वोल्गा तक' को अंतिक रूप दिया था, ने अपनी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बुद्धचर्या' (पृ.सं. 371) में लिखा है कि यह विलुप्त नगर हजारीबाग में स्थित हो सकता है।[21] बहुत संभव है कि वह नगर सेवतागढ़ पहाड़ी की तलहटी में स्थित ही बहोरनपुर ही हो। विनयपिटक के हिन्दी अनुवाद (पृ. सं. 213), पद संकेत 3 में भी उन्होंने दर्ज किया है कि बौद्ध ग्रंथ का विलुप्त नगर हजारीबाग जिले का कोई स्थान रहा होगा। बौद्ध ग्रंथों में चर्चा आती है कि यह विलुप्त नगर मज्झिम देश की दक्षिणी सीमा पर स्थित था और यह सीमा हजारीबाग क्षेत्र हो सकता है।

सेतक प्रदेश की चर्चा भरत सिंह उपाध्याय ने भी अपनी पुस्तक 'बुद्धकालीन भारतीय भूगोल' में की है और उनके अनुसार भी हजारीबाग सेतक प्रदेश का ही भाग था।[22]

भगवान बुद्ध का 19वां वर्षावास कृमिमाला अर्थात् किउल नदी के आसपास ही था, जिससे सेतकण्णिक क्षेत्र सटा हुआ था। समय के साथ बौद्ध धर्म का सम्प्रदाय में विभाजन महायान और हीनयान में और उनकी शाखा-उपशाखा का विकास का मूक गवाह निश्चय ही यह क्षेत्र रहा है। साथ ही इस क्षेत्र में जिनकी भी सत्ता रही उसका व्यापक प्रभाव इस सम्प्रदायों के विकास, स्थापना और मानदंडों पर पड़ा। उस काल में पहाड़ियाँ बौद्ध भिक्षुओं की साधना के केन्द्र हुआ करते थे, जहाँ एकांत और प्रकृति की गोद में भिक्षु बौद्ध धर्म के सम्यक् ज्ञान और उपासना की साधना किया करते थे। सीतागढ़ी पहाड़ी में भी इस प्रकार के गुफा हैं और यह पहाड़ी सेतकण्णिक क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण बौद्ध उपासना केन्द्र हो सकता है। आम धारणा यह है कि पूरे हजारीबाग जिले में बौद्ध धर्म के बिखरे अवशेष इस बात के संकेत हैं कि बुद्ध का हजारीबाग प्रक्षेत्र से संबंध रहा है। दावा यह भी किया जा रहा है कि सीतागढ़ी पहाड़ी प्रक्षेत्र के अलावे बुढ़वा महादेव, कन्हेरी पहाड़ी और दीपूगढ़ा क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म के महत्वपूर्ण केन्द्र रहे हैं और यदि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग पहल करे तो यहाँ से भी बौद्ध

धर्म के अवशेष मिल सकते हैं।[23]

सीतागढ़ा पहाड़ी परिक्षेत्र : बौद्ध संस्कृति का केन्द्र

बौद्ध पुरातत्व और संस्कृति को लेकर जो इस समय का सर्वाधिक चर्चित स्थल बहोरनपुर पुराने समय के सेवतागढ़ का ही भाग है, जो इस पहाड़ी के पाद में अग्निकोण में स्थित है। यह हजारीबाग जिला मुख्यालय से करीब 10 किलोमीटर दूर गुरहेत पंचायत का एक गाँव है। इस स्थान से प्राप्त बौद्ध अवशेष ने अचानक ही हजारीबाग को अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर ला दिया है। विद्वानों का दावा है कि सीतागढ़ा पहाड़ी परिक्षेत्र के पाँच किलोमीटर की परिधि में पुरातात्विक बौद्ध स्थल विद्यमान हैं और यदि इन स्थलों की खुदाई की जाए तो गया और इटखोरी के बाद सीतागढ़ा परिक्षेत्र भी बौद्ध सर्किट के रूप में ख्यायित होगा। साथ ही नालंदा–बोधगया–इटखोरी–सीतागढ़ाका एक विकसित बौद्ध मार्ग लोगों के समक्ष आयेगा, जिससे तत्ससमय की बौद्ध संस्कृति पर नया प्रकाश पड़ेगा।

सीतागढ़ा परिक्षेत्र में यदा–कदा ग्रामीणों को वहाँ से मूर्तियां मिलती रही हैं। इन मूर्तियों को वे हिन्दू देवी–देवता मानकर पूजा–आराधना किया करते रहे हैं। जब मूर्तियों के मिलने का सिलसिला लगातार जारी रहा तो ग्रामीणों को आभास हुआ कि पुराने समय में यह कोई धार्मिक–सांस्कृतिक स्थल रहा होगा। इसके बाद स्थानीय समाचार पत्रों में यह क्षेत्र सुर्खियां बटोरने लगा। इसी कड़ी में इतिहास के सुधि विद्वान एवं पुरातत्ववेत्ताओं ने इस क्षेत्र का जायजा लिया, जिनका संबंध झारखंड के साथ–साथ बंगाल, बिहार और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग से भी था। सर्वेक्षण और ग्रामीणों से बातचीत के बाद पता चला कि यहाँ कई किलोमीटर की परिधि में पुरातात्विक अवशेष कई टीलों के अंदर विद्यमान हैं। इस स्थान की सत्यता की पड़ताल बौद्ध ग्रंथों से भी की गयी। सातवीं सदी अर्थात् हर्षवर्द्धन के काल में भारत आने वाले प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेंसांग, जिसने नालंदा विद्यापीठ में अध्ययन और अध्यापन भी किया था, ने लिखा है कि बोधगया से 20 ली की दूरी अर्थात् करीब 70 किलोमीटर (एक ली करीब चार मील के बराबर होता है) दक्षिण–पूर्व में चिड़ियों के पंजे जैसी आकृति की एक पहाड़ी है। यहाँ भगवान बुद्ध ने अपना उपवास तोड़ा था। यहाँ एक बड़ी गुफा है, जिसमें शाक्य मुनि ने वास किया था।[24]

ऐसा माना जा सकता है कि चीनी यात्री जिस पहाड़ी और गुफा की बात कर रहा है, वह सीतागढ़ा पहाड़ी और उसकी गुफा हो सकती है। इसकी आकृति चिड़ियां के पंजे के समान है और यह बोधगया से करीब 70 किलोमीटर दक्षिण–पूर्व में स्थित है। ह्वेंगसांग अपने भारत प्रवास के दौरान सर्वाधिक समय नालंदा परिक्षेत्र में रहा और उसने सबसे अधिक बौद्ध ध र्म–संस्कृति के बारे में लिखा। उसने भारत के 36 हजार से अधिक बौद्ध विहारों का उल्लेख किया है। उसे हजारीबाग प्रक्षेत्र के विहार, भिक्षु एवं सम्प्रदाय की निश्चय ही जानकारी होगी। वह लिखता भी है कि उसके आने तक बिहार–बंगाल प्रदेश में महायान शाखा पूरी तरह से स्थापित हो चुका था। गया प्रक्षेत्र के निकट होने के कारण और पुराने बनारस मार्ग में पड़ने के कारण हजारीबाग का क्षेत्र बौद्ध केन्द्र के रूप में विकसित हो चुका होगा और यहां विहार एवं पूजा स्थल दोनों स्थापित हो चुके होंगे, ऐसा हजारीबाग जिले के कई क्षेत्रों से प्राप्त बौद्ध अवशेष को देखने पर लगता है।

सीतागढ़ा परिक्षेत्र के सर्वेक्षण के बाद ऐसा लगता है कि भगवान बुद्ध के समय से ही हजारीबाग के लोग बौद्ध धर्म से परिचित रहे होंगे। बहुत संभव है कि बुद्ध ने भ्रमण किया हो और वास किया होगा। मौर्यकाल में भी यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ होगा। गुप्तकाल और परवर्ती गुप्तकाल में अर्थात् छठी शताब्दी ई. के समय यहां बौद्ध धर्म कई केन्द्र होंगे। खास कर महायान शाखा का तंत्रवादी रूप। सीतागढ़ा पहाड़ी परिक्षेत्र के बहोरनपुर, सेखा, अमनारी जैसे गाँव बौद्ध भिक्षुओं के तंत्र साधना का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहे हैं, यहाँ महायानी बौद्ध भिक्षुओं न केवल अपने सिद्धांतों के बारे में अपने शिष्यों को बताते होंगे, बल्कि तंत्र विज्ञान के बारे में भी बताते होंगे। इसकी पुष्टि यहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ, जो बलुआ पत्थर से बने हैं, करती हैं। अन्य साक्ष्य के तौर पर ह्वेंसांग का विवरण एवं पाली में लिखे गए बौद्ध ग्रंथ भी करते हैं। यहाँ से प्राप्त यक्षिणी की मूर्तियां भी इसे छठी–सातवीं शताब्दी या उसके बाद के काल से जोड़ कर देखने का प्रमाण देती हैं। यहाँ के टीलों से प्राप्त ईंट उसी आकार के हैं, जैसे

नालंदा विद्यापीठ के भवन में लगे हैं। यह प्रमाण भी इसे गुप्तकालीन या उत्तर गुप्तकालीन होने की पुष्टि करता है।

सीतागढ़ी पहाड़ी : पुरातत्वीय सर्वेक्षण

सीतागढ़ी पहाड़ी का पहला गैर-सरकारी सर्वेक्षण पद्मश्री बुलु इमाम और उनकी टीम ने 1991-92 में किया था। इस टीम को पहाड़ी शीर्ष के दक्षिण भाग में इस टीम को पत्थर पर एक खड़े आदमी की तस्वीर मिली थी। तब इसे बुद्ध की तस्वीर कहा था। इस टीम ने इस पहाड़ी को बौद्ध केन्द्र होने का दावा किया था। तब बुलु इमाम ने कहा था कि यह पुरा प्रक्षेत्र बौद्ध ध र्म का केन्द्र है। राजगीर और इटखोरी के समान ही सीतागढ़ी पहाड़ी प्रक्षेत्र एक महत्वपूर्ण बौद्ध केन्द्र है। इस बात का उल्लेख बुल्लु इमाम ने अपनी पुस्तक दामोदर वैली सिविलाइजेशन (2001) और एंटीक्येरियम रिमेंस इन झारखंड (2015) में किया है। इन पुस्तकों के अनुसार इंटाच हजारीबाग शाखा की टीम ने 1992 में इस स्लथ को प्रकाश में लाया था और यहाँ बौद्ध मठ के अवशेष होने का दावा किया था।[25]

सीतागढ़ी पहाड़ी प्रक्षेत्र का पहला आधिकारिक या सरकारी निरीक्षण एवं सर्वेक्षण 21 जनवरी, 1994 को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, पूर्वी क्षेत्र के निदेशक लालचंद्र सिंह के नेतृत्व में एक पुरातत्ववेत्ता दल ने किया था। उस दल ने पाया कि यहाँ बौद्ध ध र्म के अवशेष बिखरे पड़े हैं। तब दल को इस पहाड़ी परिक्षेत्र के पूर्वी भाग में एक बौद्ध मठ का अवशेष प्राप्त दिखा था। साथ ही यहाँ बुद्ध का केन्द्रीय कुटीर, स्तूप, वेदिका उद्यान, पोखरणी, कुंड आदि के अवशेष भी दिखे थे। उस दल की टिप्पणी थी कि यह बौद्ध विहार सातवीं शताब्दी तक पूर्णत: विकसित अवस्था में होगा। दल को प्रथम द्रष्टया जो साक्ष्य यहाँ से प्राप्त हुआ था, उनमें बुद्ध की चार आकृतियों से युक्त लगभग 16 इंच व्यास और करीब 20 इंच ऊँचा एक स्तूप, करीब तीन फुट ऊँचे पत्थर की चौखटों पर दो पंक्तियों में उत्कीर्ण यक्षणियाँ, काले-भूरे पत्थर की एक अप्सरा की खंडित प्रतिमा, गुलाबी-बलुआ पत्थर पर उत्कीर्ण अष्टदल, अलंकृत स्तम्भ शीर्ष, ध्यान मुद्रा में बुद्ध की मूर्तियां आदि। गुलाबी-बलुआ पत्थर पर उत्कीर्ण अष्टदल को विनोबा भावे विश्वविद्यालय ने अपने प्रतीक चिह्न के तौर पर स्वीकार किया है। इसके आलावा यहाँ विभिन्न भाव-भंगिमाओं की मूर्तियां, मठ, कलाकृतियां, सिक्के और मृद्भांड मिले थे। पहाड़ी की चोटी पर तालाब, कूप, चबूतरा और पत्थर की उत्कीर्ण कई कलाकृतियां विद्यमान भी मिली थी, जिन्हें आज भी ग्रामीण वरुण देवता के रूप में पूजा करते हैं। पहाड़ी की तलहटी में दो बड़े तालाब एवं इनके अंदर कई कूप दिखे थे।[26]

झारखंड बनने के बाद 2003-04 में बहोरनपुर क्षेत्र का सर्वेक्षण राजेन्द्र देउरी ने किया। देउरी को भी प्रथम सर्वेक्षण दल के समान ही कई बौद्ध अवशेष इस स्थान पर बिखरे दिखे थे। उन्होंने पाया था कि यहाँ कई टीले हैं, जहाँ प्राचीन संस्कृति के राज दफन हैं और उनके उत्खनन से संस्कृति के नये आयाम सामने आयेंगे।[27] 2003-04 के बाद भी कई टीमें यहाँ आती रही हैं और इस स्थान के बारे में उनकी टिप्पणी होती रही है। 2012 में बौद्ध संन्यासी भंते तिसरानो ने इस क्षेत्र का भ्रमण किया था। सभी के सर्वेक्षण और अवलोकन से यह स्पष्ट हो गया कि पूरा सीतागढ़ पहाड़ी प्रक्षेत्र में पुरातात्विक अवशेष कई टीलों में दफन हैं और इसे प्रकाश में लाने के लिए उत्खनन की आवश्यकता है। इस जरूरत को अचानक पंख तब लगा तब राजेन्द्र देउरी भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग पटना के शाखा तीन के निदेशक नियुक्त किए गए। देउरी ने अपने प्रयास से यहाँ के उत्खनन को न केवल मूर्त रूप देने के लिए अथक कार्य किया, बल्कि तमाम बाधाओं और प्रक्रिया को पूरा करते हुए स्वयं के नेतृत्व में 2019 में उत्खनन-कार्य को अमली जामा पहनाया, जो अब भी जारी है।[28]

बहोरनपुर : प्रारंभिक उत्खनन और प्राप्त अवशेष

सीतागढ़ा पहाड़ी परिक्षेत्र में बौद्ध धर्म के व्यापक विखरे अवशेष के अवलोकन और वृहत् सर्वेक्षण के बाद भारतीय पुरात्व सर्वेक्षण विभाग ने बहोरनपुर के पहाड़ी के पाद में स्थित टीलों के उत्खनन का निर्णय लिया। इसके लिए सीमा सुरक्षा बल की अनुमति ली गयी। ऐसा इस कारण क्योंकि सीतागढ़ा पहाड़ी क्षेत्र का उत्तरी भाग सीमा सुरक्षा बल के फायरिंग रेंज के लिए प्रयुक्त होता है और सरकार ने इस क्षेत्र को अभ्यास के लिए उसे दे रखा है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग,

पटना की शाखा तीन की इस टीम का नेतृत्व शाखा निदेशक राजेन्द्र देउरी कर रहे हैं। उनके सहयोगी तौर पर पुरातत्व विशेषज्ञों का जो दल है, उसमें आशीष कुमार, नीरज कुमार मिश्रा, वीरेन्द्र कुमार, दिनेश कुमार आदि हैं। इस टीम ने उत्खनन के लिए तीन टीलों की मापी की। इसमें टीला एक और दो पास-पास हैं, जबकि तीसरा टीला इसने करीब 200 मीटर दूर पश्चिम-उत्तर की ओर स्थित पहाड़ी से सटा हुआ है।[29]

वैसे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने उत्खनन के लिए चार प्वाइंट का निर्धारण किया है, परन्तु अभी दो में ही उत्खनन का कार्य चल रहा है। जिन दो स्थानों पर उत्खनन अभी शुरू नहीं हुआ है, वे उत्खनन किए जा रहे वर्तमान स्थलों से लगभग 200 मीटर दूर उत्तर में पहाड़ी की पाद में स्थित हैं और यह क्षेत्र वर्तमान चेकडेम के ऊपर स्थित है। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि चेकडेम का अस्तित्व पूर्व में वैसा नहीं था, जैसा आज है। तब इसमें यह केवल छोटा तालाब था और इसमें पहाड़ी से गिरते जल का संचय होता था। करीब आठ-दस वर्ष पहले सरकारी प्रयास से इसे गहरा और विस्तृत किया गया। इस क्रम में बहुत सारे पुरातात्विक अवशेष नष्ट हो गए और कई मूर्तियां गांव वाले उठा कर ले गए। इस समय भी चेकडेम के अंदर कई कुओं के अवशेष विद्यमान हैं। इन कूपों का निर्माण में ईंटों का प्रयोग किया गया है। सम्भवत: अधिवास के लिए इन कूपों से जलापूर्ति होती होगी। इस स्थल के उत्खनन से ही इस पर और अधिक प्रकाश पड़ सकता है। अवशेषों को देखने पर प्रथम दृष्टया प्रतीत होता है कि इसका काल छठी से 12वीं शताब्दी रहा होगा और यह पूर्व पालकाल से लेकर उत्तर पालकाल की संस्कृति को समेटे हुए है।[30]

इन चार टीलों के अलावे कई अन्य स्थल इस पहाड़ी प्रक्षेत्र में जिनके उत्खनन की आवश्यकता है। पाहउडी के पश्चिम-दक्षिण भाग में भी कई टीले हैं, जहाँ भौतिक अवशेष विद्यमान हो सकते हैं। इनके उत्खनन एवं प्राप्त अवशेष के आधार पर ही विस्तृत विवरण दिया सकेगा। तभी इस सीतागढ़ा पहाड़ी परिक्षेत्र के साथ न्याय होगा और और यहां की पुरातन संस्कृति को प्रकाश में लाया जा सकेगा।

टीला संख्या एक (इटवा टीला)[31]

ईंटों का ढेर लगे होने के कारण स्थानीय लोग इस टीले को इटवा टीला कहा करते हैं। 22 नवम्बर 2019 को टीम ने इटवा टीले का उत्खनन प्रारंभ किया। उत्खनन का प्रथम चरण करीब एक वर्ष तक चला। टीम ने उत्खनन के लिए 20 गुणा 20 वर्ग मीटर के क्षेत्र चिह्नित किया। टीले की संरचना 15 गुणा 12 वर्ग मीटर का आयताकार है। इस संरचना के निर्माण में कई प्रकार के ईंटों का प्रयोग किया गया है। ईंट चौकोर और चौड़े हैं। इनका आकार 6 गुणा 15 गुणा 20 घन सेंटीमीटर, 6 गुणा 25 गुणा 36 घन सेंटीमीटर है। ध रातल के स्तर तक उत्खनन और उससे प्राप्त साक्ष्य इटवा टीले को महायान सम्प्रदाय का पूजन स्थल (श्राइन) होने का संकेत देते हैं। यह संरचना धरातल से ऊपर है और इंटों से बनी पाँच सीढ़ियां यहाँ जाने के लिए बनी हुई हैं। श्राइन का द्वार पश्चिम की ओर है और सीढ़ियां भी इसी ओर बनी हुई हैं। सीढ़ियों को देखने से प्रतीत होता है कि श्राइन की आधार भूमि धरातल से तीन फीट ऊपर थी।

संरचना के केन्द्रीय कक्ष से एक देवी की वरद मुद्रा में खंडित मूर्ति मिली है। माना जा रहा है कि यह

मूर्ति बौद्ध देवी तारा की है। मूर्ति लाल बलुआ पत्थर की है। देवी के दायां हाथ की हथेली धरती की ओर झुकी हुई है। वह वर्गाकार अष्टकमल के आसन पर विराजमान हैं। उनका दायां पैर भूमि पर स्थित एक छोटे वर्गाकार अष्टकमल पर है और बायां मुड़ा हुआ कमल के आसन पर है। देवी के हृदय के नीचे का भाग स्पष्ट, कलात्मक एवं सुन्दर है। वह कमर में आभूषण धारण किए हुए है। उनके वस्त्र स्पष्ट दिख रहे हैं। दुर्भाग्यवश सिर, मुखमंडल, चेहरा और पेट के ऊपर का भाग इस मूर्ति में नहीं है, बल्कि टूट चुका है। प्रतिमा के सामने से मिट्टी का एक दीप मिला है। इससे प्रमाणित होता है कि देवी की पूजा और अर्चना की जाती थी। इसी कक्ष को पकी हुई मिट्टी फलक प्राप्त हुए हैं, जिन पर बुद्ध का ध्यानमुद्रा में चित्रांकन किया गया है। इतनी कलात्मकता के साथ चित्रांकन सहज

की मन को मोह लेता है। दीगर बात यह है कि बौद्ध धर्म में सातवीं शताब्दी में शक्ति या आदिशक्ति की कल्पना सामने आयी, जिसे बौद्ध मूर्तिकारों ने तारा के रूप में साकार रूप दिया। बौद्ध कला में तारा के दो रूप मिलते हैं- रौद्र तारा और सौम्य, शांत और गाम्भीर्य तारा। मान्यता यह है कि तारा के मंत्रपा से मानव सभी कष्ट और असह्य दुःखों से मुक्ति पा लेता है। उसकी कठोरता, कोमलता और मृदुलता में बदल जाती है। बौद्ध धर्म में तारा के 21 स्वरूपों का वर्णन मिलता है। उनका एक रूप अर्द्धपर्यंक मुद्रा में कमल के आसन पर बैठे नारी आकृति का है, जिसका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में और बायां हाथ नाग पुष्प धारित रहता है।

केन्द्रीय कक्ष के दोनों और दो कमरे हैं। इन कमरों से बुद्ध की खंडित मूर्तियां मिली है। इसके अलावाा यहाँ से पत्थर के घंट-कूट भी मिले हैं। इन कमरों का आकार आयताकार है, जबकि मुख्य कक्ष वर्गाकार है।। बौद्ध देवी की परिक्रमा के लिए प्रदक्षिणा पथ भी है, जिसकी चौड़ाई करीब डेढ़ मीटर है। प्रदक्षिणा स्थल से भी तीन पत्थर घंटकूट मिले हैं। प्रदक्षिणा पथ को भी फलकीकृत किया गया है और इन फलकों पर बुद्ध का चित्रांकन है। श्राइन से लोहे का कील भी मिला है। संभवतः लकड़ी को जोड़ने के लिए इस कील का प्रयोग किया गया होगा। इस श्राइन से लाल रंग के मृद्भांड के टुकड़े भी मिले हैं, जिनका भीतरी तल बिना लेप का है। ऊपरी तल चिकना और लेपित है। श्राइन से एक अभिलेख भी मिला है। माना जा रहा है कि यह अभिलेख आद्य नागरी लिपि में है। इसके अलावा यहां से मन्नत स्तूप भी प्राप्त हुए हैं।

अभी तक प्रथम टीले के उत्खनन का प्रथम चरण ही पूरा हुआ है। इस खुदाई से यह जानकारी नहीं मिल पायी है कि पाल काल से पहले की संस्कृति के तत्व यहाँ विद्यमान रहे हैं या नहीं। इस टीले के ऊर्ध्वाधर उत्खनन के बाद ही यह पता चल पायेगा कि इसके नीचे किस काल की संस्कृति के अवशेष विद्यमान हैं। यह भी स्पष्ट हो पायेगा कि यह इसका विकास किस काल में हुआ था और यह एक संस्कृति का केन्द्र रहा है या बहुसंस्कृति का। आगे का उत्खनन भविष्य की संभावना एवं कोष पर निर्भर है।

टीला संख्या दो [32]

इटवा टीले के करीब 30 मीटर पश्चिम में टीला संख्या दो स्थित है। यह इटवा टीले से बड़ा है और इसकी संरचना 40 गुणा 40 वर्गमीटर है। पुरातत्व विभाग ने इस वर्ष अर्थात् 2021 में यहाँ उत्खनन का कार्य आरंभ किया और यहाँ नित्य नए पुरावशेष मिल रहे हैं जिनसे बौद्ध संस्कृति पर विशद प्रकाश पड़ रहा है। प्रथम दृष्टया यह टीला बौद्ध मठ लगता है। इस टीले के मध्य भाग का उत्खनन हो चुका है, जो खुला आंगन है। आंगन को फलकीकृत करने के लिए ईंटों का प्रयोग किया गया है। यह आंगन पूरी संरचना के बिल्कुल मध्य भाग में है। इस संरचना की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ जल निकास के लिए नाली बनी दिखती है, जिसका अंतिम छोर दक्षिण-पश्चिम की ओर है। इस क्षेत्र में कई कूपों के अवशेष विद्यमान हैं, जिनसे इस पूरे क्षेत्र में जलापूर्ति होती होगी।

टीले के पश्चिम-उत्तर भाग की खुदाई जारी है। यहाँ से अब तक तीन कमरे के प्रमाण मिल चुके हैं, जो आकार में छोटे हैं। सम्भवत: ध्यान और साधना के लिए इनका उपयोग किया जाता होगा। कमरे के सामने वाले बरामदे से बुद्ध और तारा की मूर्तियां भी मिली हैं। इनमें से कुछ बड़ी और कुछ छोटी हैं। बुद्ध की सारी मूर्तियां भूमि स्पर्श मुद्रा की ध्यानस्थ मिली हैं, जिसमें बुद्ध का दायां हाथ भूमि को स्पर्श कर रहा है।

उनके बायां हाथ की हथेली दोनों पैरों के आसन के बीच आकाश की ओर खुला है। इस प्रकार की मूर्तियां आम तौर पर बोध गया में मिलती हैं, जिनका निर्माण भगवान बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति के बाद हुआ था।

सभी मूर्तियां लाल-बलुआ पत्थर से निर्मित हैं और ईंट से बनी देव कोष्ठ से लगी हुई हैं, जिनकी ऊँचाई 2.5 से 3.0 फीट के बीच है। एक कोष्ठ में भूमि स्पर्श की मुद्रा में ध्यानस्थ बुद्ध की दो मूर्तियां हैं, जो ऊपर और नीचे हैं। ऊपर की बुद्ध मूर्ति के दोनों ओर घंटियां हैं और उनके सिर के ऊपर चार दिशाओं को इंगित करता हुआ एक छत्र है, जिसके चारों भाग निकले हुए हैं। बुद्ध गले में संघाटी धारण किये हुए हैं, जो पाल मूर्तिशिल्प पर वैष्णव और ब्राह्मण संस्कृति के प्रभाव को दर्शाता है। नीचे की वाली मूर्ति के बीच में कई चिह्न और मूर्तियां अंकित हैं। दूसरे कोष्ठ में भूमि स्पर्श ध्यानस्थ बुद्ध की मूर्ति के चारो ओर छह लघु मूर्तियां विविध भंगिमाओं में उत्कीर्ण हैं, जो बुद्ध के जीवन से जुड़ी महान घटनाओं का चित्रांकन करती हैं। इस मूर्ति के पाद में भी 1.5 से 2.0 फीट की बुद्ध की मूर्तियां मिली हैं, जो बुद्ध के जन्म, महापरिनिर्वाण मुद्रा, ध्यान मुद्रा, धर्मचक्र मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा आदि में हैं। बुद्ध द्वारा हस्ति दमन और वानरेन्द्र द्वारा मधु दिए जाने का दृश्य उत्कीर्ण है। भगवान बुद्ध के देव कोष्ठ की बायीं ओर अर्थात् तीसरे कोष्ठ में तारा देवी की खड़ी मूर्ति है, जो वरद एवं स्थातक मुद्रा में है। इस प्रतिमा का दायां हाथ का कुछ भाग खंडित है। यह काफी आकर्षक एवं अत्यंत सुन्दर है। इस प्रतिमा के नीचे अन्य देवताओं की प्रतिमा है। तारा देवी की एक अन्य खंडित वरद मुद्रा की मूर्ति मिली है, जिसमें उनका सिर नहीं है। देवी गले में माला धारण की हुई हैं आसन पर बैठी हुई हैं। तारा की ऐसी ही मूर्ति इटवा टीले में भी मिली है।

ऐसा लगता है टीले का पश्चिमोत्तर भाग मूर्ति पैनल है, जिसमें विविध आकार एवं घटनाओं को रेखांकित करने वाली मूर्तियां हैं। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद के दारुण दृश्य को भी मूर्तियों पर उकेरा गया गया है। इस पैनल से बुद्ध और तारा की मूर्तियों के अलावे तलवार लिए मंजुश्री एवं मारिची की भी मूर्तियां मिली हैं। सभी मूर्तियां संभवतः आठवीं से 11वीं शताब्दी की है। इन मूर्ति पैनल की कुछ मूर्तियों में

बहोरनपुर की मूर्ति पर अंकित लेख

अभिलेख भी उत्कीर्ण हैं, जिनकी भाषा आद्य-नागरी बतायी जा रही है। कुछ अभिलेख लम्बे एवं बड़े हैं और कुछ छोटे। इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है कि जिन मूर्तियों पर ये लेख उत्कीर्ण हैं, उन्हें किसी श्रद्धालु ने इस मठ को दिया होगा और बहुत संभव है कि उस पर उसका विवरण अंकित हो और उससे इस मठ के काल निर्धारण में मदद मिले। मूर्ति पैनल के सटा पूर्व की ओर एक कमरा है, जो संभवतः विश्राम कक्ष था। अन्य कक्ष से इसका आकार बड़ा है और यहाँ से कोई मूर्ति नहीं मिली है। मूर्ति पैनल वाले बरामदे में कुछ पत्थर के दो खाली मूर्ति पैडल मिले हैं, जो इस बात का संकेत देते हैं, कि यहाँ मूर्तियां रखी हुई थी। यहाँ से मूर्तियों का न मिलना इस बात का संकेत देता है कि इन्हें कोई उठा कर ले गया होगा।

बहोरनपुर में उत्खनन के दौरान पुरातत्व विभाग की टीम को अवलोकितेश्वर की आदमकद प्रतिमा मिली। इस प्रतिमा की ऊँचाई छह फीट आठ इंच है।

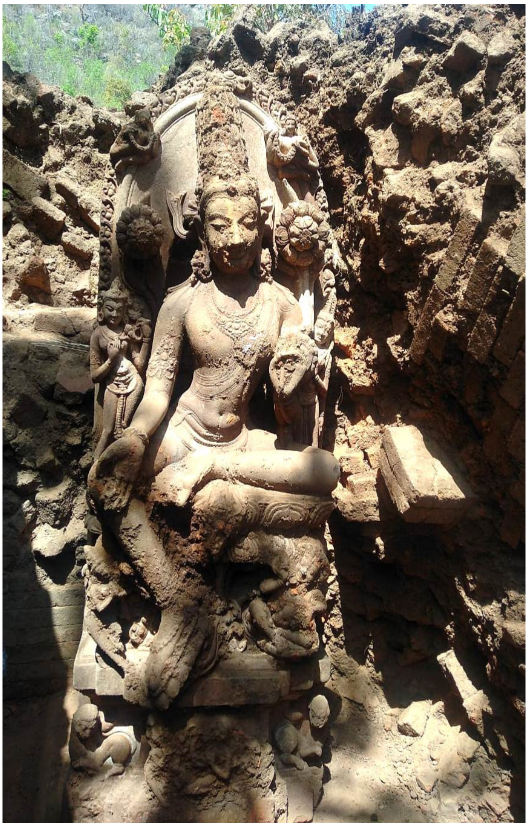

महायान संप्रदाय के सबसे लोकप्रिय भगवान अवलोकितेश्वर की यह प्रतिमा अपने आप में अद्‌भुत है और बहोरनपुर की बौद्ध संस्कृति पर पर्याप्त प्रभाव डालता है। यह बुद्ध के करुणा रूप को दर्शाता है। यह प्रतिमा वरद् मुद्रा में है और अन्य प्रतिमाओं के समान ही स्लेटी पत्थर से बना हुआ है। किसी एक पत्थर को तराश कर बुद्ध के इस रूप को आकार दिया गया है। पांचवी सदी में भारत आए चीनी यात्री फाहियान ने कहा था कि भारत में अवलोकितेश्वर बुद्ध काफी प्रचलित है और उनकी पूजा कई स्थानों पर होती है। भगवान अवलोकितेश्वर की यह प्रतिमा कितनी पुरानी है, यह तो गणना के बाद ही पता चलेगा, परन्तु इस प्रतिमा की बनावट में प्रयुक्त पत्थर और नक्कासी को देखकर यही लगता है कि यह पालकालीन है।

इस पूरे मठ में उत्तर दिशा स्थित तालाब से जल की आपूर्ति की जाती थी। तालाब के अवशेष विद्यमान है, परन्तु वह सूख हुआ है। प्रथम टीले के उत्तर और तालाब के पूर्व-दक्षिण में एक कूप का अवशेष विद्यमान है, जिससे पेयजल की आपूर्ति होती होगी।

अभी तक दूसरे टीले के 30 प्रतिशत भाग की ही खुदाई हुई है। पूर्ण खुदाई के बाद ही और अधिक प्रकाश यहाँ की संस्कृति पर पड़ेगा। परन्तु यह सत्य है कि यहाँ से मिली मूर्तियों पर सारनाथ परम्परा के साथ-साथ पाल कालीन मूर्ति परम्परा और स्थानीय परम्परा का प्रभाव था।

पालकालीन विहारों की विशेषताएं

पाल शासक बौद्ध धर्म की महायान शाखा के प्रबल समर्थक और संरक्षक रहे हैं। उनके काल में मगध एवं बंगाल क्षेत्र वज्रयान का केन्द्र बन चुका था। वज्रयान से मंत्रयान एवं तंत्रयान से सहजयान का विकास हुआ। पालकालीन चैत्य और विहार 11वीं शताब्दी के मध्य तक तांत्रिक विद्या के केन्द्र बन चुके थे। पालवंशी शासकों ने बिहार और बंगाल में आठवीं से 12वीं शताब्दी के बीच सैकड़ों विहार एचं चैत्य गृह या बौद्ध पूजन स्थल के निर्माण करवाए। इस निर्माण का केन्द्रीय स्थल मगध क्षेत्र था, क्योंकि यहीं से पाल शासकों के सबसे अधिक अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ध र्मपाल के समय 'प्रज्ञापारमिता' के अध्ययन के लिए विहार एवं चैत्य गृह का निर्माण शुरू हुआ था। प्रज्ञापारमिता का संबंध बौद्ध धर्म की महायान शाखा से है, जिसमें प्रज्ञा की अलौकिक शक्तियों का महात्म्य बताया जाता है। बुद्ध ने यह ज्ञान अपने शिष्यों को दिया था। बाद में 'प्रज्ञापारमिता बोधिसत्व' के रूप में तारा देवी को स्थापित किया गया। पालकालीन प्रज्ञापारमिता चैत्य गृह या पूजा गृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ होता है और केन्द्रीय कक्ष में देवी तारा की मूर्ति का प्रतिस्थापना चबूतरे या अष्टदल कमल पर की गयी होती है। बहोरनपुर का इटवा टीले की संरचना 'प्रज्ञापारमिता चैत्य' हो सकता है। यहाँ से प्राप्त लोहे के कील मुख्य द्वार पर लकड़ी के उपयोग को दर्शाते हैं। पालकालीन चैत्यगृह के फर्श को अलंकृत करने एवं चित्रांकित फलक से सजाने की परम्परा मिलती है। छोटे विहार प्रायः एक मंजिला होते थे और बड़े विहार दो मंजिला। संरचना पकी ईंटों की होती है और बरामदे के खम्भे पत्थर के बने होते थे। चैत्य के द्वार पर पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ होती हैं। ये सारी विशेषताएँ इटवा टीले की संरचना में दिखती है, जो इसे पालकालीन होने का संकेत देती हैं।

पालकालीन मूर्तिकला की विशेषताएँ :

छठी शताब्दी के बाद भारत के विभिन्न धर्मों में सामयिक परिवर्तन आने लगे थे। बौद्ध मत में इसी समय वज्रयान का प्रवेश हुआ और इसके प्रभाव से कला में व्यापक परिवर्तन आए। चूंकि पाल शासन का केन्द्रीय स्थल मगध और बंगाल था, इस कारण इस क्षेत्र में कला की एक नयी शैली विकसित हुई, जो पूर्ववर्ती गुप्त शैली से भिन्न थी। इस शैली के संरक्षक पाल शासक थे। इन्हीं के संरक्षण में बड़े विहारों एवं मठों का निर्माण हुआ और मूर्ति शिल्प के नए तत्व विकसित हुए, जिनका श्रेय धीमान एवं उसके पुत्र वितपाल को जाता है, जिसे धर्मपाल एवं देवपाल ने आश्रय दिया था। तारानाथ ने इस शैली को 'पूर्वी भारतीय शैली' कहा तो कुछ विद्वान इसे 'मगध शैली' कहते हैं, क्योंकि इस शैली की सर्वाधिक मूर्ति मगध क्षेत्र से मिली हैं। इसे 'पाल शैली' भी कहा जाता है। वैसे इस शैली की मूर्तियां पूर्वोत्तर उत्तर प्रदेश से बांग्लादेश तक मिली हैं।[33]

पालशैली की मूर्तियों के निर्माण में चिकने काले बैसाल्ट पत्थर और कांसे का प्रयोग किया जाता है। यही इस शैली की प्रमुख विशेषता है। मौर्यकाल और गुप्तकाल की ज्यादातर मूर्तियां चुनार के बलुआ पत्थर से बनी होती थी, परन्तु पालकाल में मूर्तियों का निर्माण कैमूर, गया और राजमहल की पहाड़ी से मिलने वाले भूरे और काले रंग के मुलायम बैसाल्ट पत्थर से हुआ था। पत्थरों के मुलायम होने से मूर्तियों में मूर्ति कला के लक्षणों एवं वस्त्राभूषण का सूक्ष्मता के साथ उकेरा जाना संभव होता है। पूर्ववर्ती गुप्तकाल से पालकाल की मूर्ति शिल्प कई मायने में अलग थी। गुप्तकाल में मूर्ति निर्माण के केन्द्रीय स्थल सारनाथ और मथुरा थे। परन्तु पालकाल में यह सम्मान नालंदा और गया को प्राप्त हो गया। गुप्तकाल की मूर्तियां कमनीय, लचीली, सुन्दर काया, सूक्ष्म एवं परदर्शी वस्त्र, नये तुले आभरण एवं भाव व्यंजकता से परिपूर्ण होती थी। गुप्तकालीन मूर्तियों में आध्यात्मिक चिंतन, शांति और स्मित के मुख पर स्पष्ट दर्शन होते हैं। गुप्तकाल में बनी बुद्ध की मूर्तियों के वस्त्र की धारियां उभरी हुई होती थी। प्रभामंडल अलंकृत होता था और उसके साथ विकसित कमल, पत्रावली, पुष्पलता आदि के कई अभिप्राय बने होते थे। गुप्तकाल के अभयमुद्रा वाली बुद्ध की मूर्तियों में उनका हाथ समकोण बनाता हुआ अधिक से अधि क कमर तक ही उठा हुआ रहता था। गुप्तकाल की बुद्ध मूर्तियों में बुद्ध के हाथ की अंगुलियां पृथक-पृथक होती थीं।[34]

पालकाल की बुद्ध, अवलोकितश्वर, मैत्रेय, हारिती, बोधिसत्व, मंजुश्री, तारा आदि की मूर्तियां बनीं। पाल शैली में बनी मूर्तियों में भाव-भंगिमाओं की अधिकता, अलंकरण एवं लक्षणों की प्रधानता के तत्व प्रभावी तरीके से दिखते हैं। इन पर सारनाथ कला का प्रभाव माना जाता है, जिसके अंतर्गत हल्के इकहरे बदन एवं पारदर्शी वस्त्रों को पहनी मूर्तियां प्रमुख हैं। पालकाल की मूर्तियों में प्रतिमाशास्त्र के नियमों का अधिक पालन किया गया है, इससे मूर्तियों में बोझिलता आ गयी है और इससे इनकी सहजता और सौंदर्यता गुप्तकाल की अपेक्षा कम दिखती है। पाल काल का कलाकार मूर्ति विज्ञान के नियमों से बंध कर ही अपनी कल्पना को आकार देता रहा, इससे उसकी सौंदर्य कल्पना सीमित हो गयी और मौलिकता का भाव कम हो गया। पालकाल की मूर्तियों में किरीट मुकुट, हार, कंगन, बाजूबंद आदि आभूषणों के प्रयोग अधिक दिखता है। पाल काल में अंग-प्रत्यंगों में गतिशीलता, भाव और सजीवता लाने के लिए कलाकारों ने अंग और प्रत्यंग के झुकाव का सहारा लिया है।[35]

पालकाल की आरंभिक मूर्तियों में मानवीय सौंदर्य है। देवी मूर्तियों में उन्नत वक्ष, क्षीणकटि, विस्तृत नितम्ब और दीर्घ जंघा का प्रस्तुतीकरण होता है। बोधि सत्व एवं अन्य देवों की मूर्तियों में गोलाकार चेहरा, कोमल चिकनाई लिये सरस अंग प्रवाह और चौड़ा वक्षस्थल भी मिलता है। मूर्तियों में यह लक्षण तंत्रवाद के प्रभाव के कारण हुआ है।[36]

पालकाल की अधिकांश मूर्तियां बुद्ध के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं एवं परवर्ती बौद्ध सम्प्रदाय के देवी-देवताओं की मूर्तियों की हैं। बुद्ध के जीवन से संबंधित दृश्यों में मायादेवी का स्वप्न, तुषित स्वर्ग से नीचे उतरते बुद्ध, गृहत्याग, वानरेन्द्र का मधु दान, मार विजय, नल हस्ति का दमन, श्रावस्ती का महाप्रतिहार्य, धर्मचक्र प्रवर्तन, महापरिनिर्वाण आदि के दृश्य उद्भूत किए जाते हैं, जो भरहूत और सांची परम्परा के प्रवाह

को दर्शाते हैं। तारा मूर्तियों के गले में तीन लरियों के हार, कलाई में बाजूबंद, पुष्ट उरोज आदि के माध्यम से नारी की कमनीय छवि को उभारा जाता रहा है।[37] यह दृश्य बहोरनपुर की बुद्ध मूर्तियों एवं तारा देवी की मूर्तियों में बखूबी दिख जाता है।

पालकाल की मूर्तियां लेखयुक्त हैं और उनमें तिथि का अंकन हुआ है। इससे उनके शैलीगत विकास को समझने में मदद मिलती है। पालकाल की बौद्ध प्रतिमाएं आकर्षक एवं कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध हैं। आकर्षक एवं तराशे गए पत्थरों का प्रतिमा निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका है। अष्टकमल एवं कमल पर आसीन मूर्तियों को दिखलाया जाता है। पालकालीन प्रतिमा के सामने वाले भाग पर ही अंकन की परम्परा रही है। सामान्यतया प्रतिमा के पीछे वाले भाग को यथास्थिति छोड़ दिया जाता है। यदा-कदा इसे समतल और चिकना भर कर दिया जाता है। कलाकार प्रतिमा निर्माण के लिए सदा समकोण या चतुर्भुजाकार पत्थर का प्रयोग करता है, जिसका ऊपरी भाग नुकीला होता है और उसके दोनों किनारे एक स्थान पर आकर मिलते दिखते हैं। उत्कीर्ण प्रतिमा के सामने उपासक खड़ा होकर आराधना करता है और प्रतिमा का पिछला हिस्सा दीवार से चिपका रहता है और दृष्टि से ओझल रहता है। इसका प्रभाव यह होता है कि मूर्तिकारों ने प्रतिमा के पार्श्व भाग को गढ़ने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। पालकालीन मूर्ति प्रायः दोहरे कमलासन पर खड़ी या बैठी मिलती हैं और मुद्रास्थान से युक्त हथेली या तलवे पर कमल पुष्प उत्कीर्ण होता है। पालकालीन मूर्तियां सारनाथ परम्परा की हैं, जिनमें अधिकतर मूर्तियाँ ध्यान, मनन और चिंतन की मुद्रा में होती हैं। सांस्कृतिक अविच्छिन्नता के कारण ऐसा हुआ होगा, माना जा सकता है।[38]

पालकाल के दौरान का बौद्ध धर्म प्रारंभिक बौद्ध धर्म नहीं था। इस पर तंत्रवाद का प्रभाव बढ़ रहा था और हिन्दू संस्कृति के तत्वों को बौद्ध मत आत्मसात कर रहा था। हिन्दू देवी-देवता बौद्ध मत में प्रविष्ट कर रहे थे। स्वाभाविक था कि इसका प्रभाव मूर्ति शिल्प पर भी पड़ता। और यही कारण है कि पालकालीन मूर्तियों में बौद्ध सम्प्रदाय के तंत्र से प्रभावित बौद्ध देवी-देवताओं का जितना लाक्षणिक अंकन मिलता है, उतना अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।[39]

पालकाल में मुख्य रूप से दैव-प्रतिमाओं के ही उदाहरण मिलते हैं और इनमें लौकिक विषयों का प्रायः अभाव दिखता है। ध्यानी बुद्ध और इस परम्परा के ही अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियां पाल काल में बनती रही हैं। ध्यानी बुद्ध पांच माने गये हैं- वैरोचन, अक्षोभ्य, रत्नसंभव, अमिताभ और अमोघसिद्धि। ये सदैव वज्रासन में ध्यानस्थ मिलते हैं और इनका कभी साथ तो कभी अलग-अलग अंकन होते रहा है। वैरोचन धर्मचक्र मुद्रा में, अक्षोभ्य भूमि स्पर्श मुद्रा में, अमिताभ ध्यान मुद्रा में और अमोघसिद्धि अभय मुद्रा में अंकित किए जाते रहे हैं। इन मुद्राओं पर वैष्णव मत का प्रभाव भी दिखता है। पालकालीन बुद्ध मूर्तियों के सिर पर किरीट मुकुट और गले में क्षीण संघाटी और यज्ञोपवीत दिखता है, जो इससे पहले के किसी काल की बुद्ध मूर्ति में नहीं दिखता।[40] सुन्दर और कलात्मक टेराकोटा पैनल या फलक निर्माण पालकाल की मुख्य विशेषता है, जिसे दीवार या घरातल पर लगाया जाता था। इन फलकों पर बुद्ध से जुड़ी घटनाओं या आम जनजीवन का चित्रण होता था। सजावट के लिए इन फलकों का उपयोग होता था। टेराकोटा फलक निर्माण पुरानी तकनीक है, परन्तु मूर्तिकारों द्वारा टेराकोटा शिल्प का व्यापक प्रयोग उत्तरगुप्त काल में ही दिखता है, जैसे कि पर्सी ब्राउन जैसे अधिकतर विद्वान मानते हैं। वैसे कनिंघम इस परम्परा को गुप्तकाल का मानते हैं, क्योंकि इसका पहला उदाकरण भिरतगांव के मंदिर में मिलता है।[41]

पाल मूर्ति शैली की एक महत्वपूर्ण देन लघु चित्र शैली है, जिसका मुख्य क्षेत्र बिहार और बंगाल था। आज के बांग्लादेश में भी यह प्रचलित था। बौद्ध विहार एवं मठ इस शैली के केन्द्र हुआ करते थे। हालांकि लघुचित्र अजंता के भित्तिचित्रों की अनुकृति लगते हैं और पूर्व से चली आ रही परम्परा के वाहक दिखते हैं। विषय के तौर पर इन लघु चित्रों में बुद्ध के जीवन और महायान एवं वज्रयान सम्प्रदाय के देवी-देवताओं का चित्रण अंकन होता था। इन चित्रों का प्राथमिक रंग लाल, नीला, काला और उजला होता था, जिसका प्रयोग रेखांकन के लिए होता था। भीतरी और पृष्ठभूमि के रेखांकन के लिए हरा, बैंगनी, हल्का गुलाबी जैसे रंगों का प्रयोग किया जाता था।[42]

बहोरनपुर से प्राप्त मूर्तियां का काल :

उपरोक्त विवरण और बहोरनपुर की मूर्तियों के प्राथमिक अवलोकन के बाद स्पष्ट होता है कि बहोरनपुर के मूर्तिशिल्प का विकास किसी एक काल में नहीं हुआ है। यह स्थल कई काल की बौद्ध संस्कृति को अपने में समेटे हुए है। यहाँ से प्राप्त बुद्ध की कुछ मूर्तियां गुप्तकाल, उत्तर गुप्तकाल या पूर्व पालकाल का प्रतिनिधित्व करती हैं तो कुछ उत्तर पालकाल की। तारा देवी की मूर्तियों के अलंकरण इसे पालकालीन दर्शाते हैं। टेराकोटा फलक पर बुद्ध के जीवन की घटना और विभिन्न मुद्राओं में बुद्ध की प्राप्त मूर्तियां इसे पालकालीन दर्शाती हैं। मूर्तियों के साथ आद्य नागरी अभिलेख का मिलना भी इसे पूर्व पालकालीन बताता है। मूर्ति निर्माण के आधार पत्थर का समकोण और फिर दोनों सिरों का एक स्थान बीचों-बीच मिल जाना भी इसे पालकाल का ही बताता है। बहुत संभव है कि बहोरनपुर का पूर्ण विकसित रूप पालकाल के दौरान आठवीं से 12वीं शताब्दी के समय आया हो।

पालकाल की प्रतिनिधि विशेषता काला बैसाल्ट पत्थर और कांस्य की मूर्तियां रही हैं, जो नालंदा, गया और भागलपुर क्षेत्र के पालकालीन बौद्ध विहारों से बड़ी संख्या में मिली हैं। बहोरनपुर बौद्ध मठ या पूजा स्थल के उत्खनन के दौरान अभी तक ऐसी किसी भी मूर्ति का न मिलना आश्चर्यजनक लगता है, जबकि सम्पूर्ण हजारीबाग का क्षेत्र इसी सर्किट का भाग था। बेशक उत्खनन प्रारंभिक दौर में है, परन्तु यहाँ से पाँच दर्जन से अधिक मूर्तियां मिल चुकी हैं। यह माना जा सकता है कि गुप्तकालीन सारनाथ के समय ही बहोरनपुर बौद्ध धर्म के एक केन्द्र के रूप में स्थापित हो चुका था। बुद्ध के समय में बहोरनपुर सेतकण्णिक प्रदेश था और बौद्ध धर्म की गतिविधियों से प्रभावित था। राजनीतिक दृष्टि से यह क्षेत्र मौर्य शासक, कुषाण शासक, गुप्त और मागध-गुप्त शासकों के प्रभाव में रहा है, तो निश्चय ही इन कालों की मूर्ति शिल्प का प्रभाव यहाँ पड़ा होगा। यही परम्परा बाद में आये पाल शासन में भी पड़ा। वैसे भी बुद्ध की पद्मासन मुद्रा की मूर्ति में लम्बे कान एवं नुकीला और खड़ा नाक सारनाथ की मूर्ति परम्परा को दर्शाते हैं, जो गुप्तकालीन है।

संदर्भ :

1. त्रिपाठी, हवलदार, बौद्ध धर्म और बिहार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, द्वितीय संस्करण, पृ. 43 में बुद्धचर्या, 414 से उद्धृत।
2. मज्झिम निकाय, 2, 4, 5
3. पाडेय, शत्रुघ्न कुमार, इटखोरी : सर्व धर्म समभाव का प्रतीक, खबर मंत्र, रांची संस्करण, दिनांक 22. 02.2015
4. वही।
5. त्रिपाठी, पूर्वोक्त : 45
6. वही।
7. वही : 48
8. वही।
9. डॉ. प्रसन्न, मालवा में नहीं, इटखोरी में है चीनी यात्री ह्वेंसांग का मोहापो, हिन्दुस्तान, रांची संस्करण, 12 जुलाई 2021, यह आलेख पद्मश्री बुलु इमाम द्वारा लिखित और एकेडेमिया में प्रकाशित लेख के आधार पर तैयार किया गया था।
10. इटखोरी संग्रहालय में रखे गये अवशेष पर आधारित विवरण। विशेष जानाकरी के लिए पढ़ें, रुपेन्द्र कुमार चट्टोपाध्याय और स्वाती रे की पुस्तक इटखोरी : अ स्कल्पचरल एंड आर्किटेक्चरल काम्पलेक्स इन छोटा नागपुर प्लेटू (7वीं से 13वीं शताब्दी ई.), कावेरी बुक्स, नयी दिल्ली, 2019
11. सांकृत्यायन, राहुल, बुद्धचर्या : 289
12. त्रिपाठी, वही : 93-94
13. दीघ्घनिकाय, संगीतिपरियायसुत्त : 3, 10), त्रिपाठी, वही : 103-04
14. संयुक्तनिकाय, उदायीसुत्त, 4,3,10
15. त्रिपाठी, हवलदार, छोटानागपुर की नदियां, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना 2015 : 18
16. वही : 19
17. वही।
18. संयुक्तनिकाय का उदयीसुत्त, 4.3.10
19. राय कौलेश्वर, बिहार का इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 2013 : 41
20. राय वही, त्रिपाठी, बौद्ध धर्म और बिहार : 5
21. सांस्कृतायन, पूर्वोक्त : 371
22. उपाध्याय भरत, 'बुद्धकालीन भारतीय भूगोल' : 68-69
23. विभिन्न स्थानीय अखबारों में प्रकाशित लेख पर आधारित।

24. पागल, अशोक, पुरातत्व और इतिहास की झारखंडी धरोहर, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2004 : 75–76
25. इमाम, बुल्लु, दामोदर वैली सिविलाइजेशन, 2001 और एंटीक्येरियम रिमेंस इन झारखंड, 2015
26. पागल, पूर्वोक्त : 76
27. राजेन्द्र देउरी से बातचीत पर आधारित।
28. राजेन्द्र देउरी भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग पटना के शाखा तीन के निदेशक से बातचीत पर आधारित। दैनिक भास्कर, रांची संस्करण, 18 फरवरी 2021.
29. राजेन्द्र दउरी से बातचीत और खुदाई स्थल के निरीक्षण के क्रम में मिली जानकारी पर आधारित।
30. आंखों देखी, 20 फरवरी 2021
31. प्रथम टीले के खुदाई और प्राप्त अवशेष के प्राथमिक अवलोकन पर आधारित।
32. द्वितीय टीले की खुदाई से प्राप्त अवशेष के प्राथमिक अवलोकन और पुरातत्व विभाग की उत्खनन में संलग्न टीम से बातचीत पर अधारित।
33. सिन्हा, डॉ. विन्ध्येश्वरी प्रसाद, भारतीय कला को बिहार की देन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, तृतीय संस्करण, 1999 : 127
34. पाण्डेय, डॉ. वी. के., प्राचीन भारतीय कला, वास्तु एवं पुरातत्व, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2013, पृ0 235
35. वही : 237
36. वही : 238
37. वही : 239
38. वही : 240
39. सिन्हा, पूर्वोक्त : 138
40. वही : 139–41
41. वही।
42. पाण्डेय, पूर्वोक्त : 236

❑❑❑

ISSN 2393-980X

शोध संविद

Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.

An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal

https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ दिलीप राम

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी

स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,

पटना विश्वविद्यालय, पटना।

आलोचना

रघुवीर सहाय की आरंभिक कविताएँ

हिंदी साहित्य जगत में रघुवीर सहाय का आगमन 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के साथ होता है। इस संकलन में एक वक्तव्य के साथ उनकी पंद्रह कविताएँ हैं। इन कविताओं के संदर्भ में रघुवीर सहाय का वक्तव्य बार-बार उद्धृत किया जाता है। उद्धृत करने का कारण उचित भी है क्योंकि वक्तव्य में उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता का स्पष्ट संकेत तो मिलता ही है, उनकी कविताओं को देखने-समझने के लिए दृष्टि-निर्माण में भी मदद मिलती है। रघुवीर सहाय ने अपने वक्तव्य से यह भी स्पष्ट कर दिया है कि कविता को वे किस नजरिए से देखते हैं और उससे उन्हें क्या काम लेना है, और उसके लिए कविता को कैसे शक्ति प्रदान की जा सकती है। उनका स्पष्ट मानना है कि - "उसके लिए मध्यवर्गीय, धोखा खाते रहने वाले ढुलमुल-यक़ीन को अपनी बौद्धिक चेतना को जागरूक रखना पड़ेगा और बराबर जागरूक रह कर एक दृष्टिकोण बनाना होगा। यह दृष्टिकोण सामाजिक, वास्तविक, साम्यवादी और इस लिए सही और स्वस्थ होगा। तभी कविता में जान और माने पैदा होंगे।"[1]

रघुवीर सहाय के लिए एक जानदार सार्थक कविता वही हो सकती है जो सामाजिक यथार्थ को लेकर सामने आती है। इसके लिए "ज़रूरी है कि हम अपनी अनुभूति को उसी प्रकार सुधारें, ताकि कविता भी वैसी ही जानदार हो सके जैसी कि वे वास्तविकताएँ, जिन से हम कविता की प्रेरणा लेते हैं। विचार-वस्तु का कविता में खून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है; और यह तभी संभव है जब हमारी कविता की जड़ें यथार्थ में हों।"[2]

कविता के संबंध में यह धारणा उस बीस वर्षीय युवक की है जिसने मुश्किल से दो-तीन साल पहले कविता करना शुरू ही किया था और उस उम्र में उसके लिए रोमानियत की कविताएँ स्वाभाविक रूप से ग्राह्य हो सकती थीं। युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ भी उसी दिशा में गमन कर रही थीं, उनमें वैयक्तिकता का समावेश हो चुका था। बावजूद इसके, रघुवीर सहाय ने अपने लिए एक अलग रास्ता चुना, जो सामाजिक यथार्थ से होकर गुजरता था। खास बात यह कि यह रास्ता उन्होंने समझ बूझकर चुना था, एक रचनात्मक द्वंद्व से गुजरकर चुना था और उस द्वंद्व में उनकी यथार्थवादी चेतना हावी रही। उदाहरण के तौर पर 1946 में लिखित उनकी आरंभिक कविता का एक नमूना देखिए -

"तुम सपनों में क्यों आती हो
मन की ज्वाला बुझा चुकी हो
अंत राह का सुझा चुकी हो
फिर क्यों मेरा हाथ पकड़कर
उस दुर्गम पथ पर लौटाती हो
तुम सपनों में क्यों आती हो।"[3]

इस कविता पर विस्तार से बात करना आवश्यक है क्यों इसे रोमानियत की कविता कहा गया है। और, रघुवीर सहाय की काव्य-यात्रा को रोमानियत से आरंभ माना गया है। परंतु गौर से देखा जाय तो यह कविता पूरी तरह से रोमानियत की नहीं है। हाँ, रोमानियत की शक्ल में है, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि कवि अपनी रोमानी भावनाओं से विमुख होकर यथार्थ की ओर देखने का प्रयास कर रहा है। अपने प्रयास में वह बार-बार सपनों का दखल महसूस करता है। इसलिए उसका प्रश्न स्वाभाविक है। पर सवाल उठता है कि वह प्रश्न किससे कर रहा है। सपनों में जो आती है, वह कौन है? प्रेमिका है या कुछ और ? - जो कवि की स्मृति को जगा देती है, उसे सपनों से भी जगवा देती है, मधुर सपने भी देखने नहीं देती -

"गीत एक ही मैंने गाया
गा गा कर मैं ही भरमाया
भूल गया उसकी जो कड़ियाँ,
मुझे सुना कर क्यों गाती हो।
तुम सपनों में क्यों आती हो।

आज मुझे टुक सो लेने दो
उन भूलों पर रो लेने दो
हँसते मुसकाते सपनों से
आज मुझे क्यों जगवाती हो
तुम सपनों में क्यों आती हो।"[4]

पंक्तियों को देखने से स्पष्ट है कि सपनों में आने वाली कोई स्त्री नहीं हो सकती। वास्तव में वह कवि की प्रगतिशील चेतना है जो बार-बार सपनों में आकर उन्हें युग-यथार्थ का आभास दिलाती है। वह बताती है कि कवि ने जो एक गीत गाया है वह भ्रमात्मक है, वास्तविक नहीं हैं। और कवि भी इस बात को समझ चुका है। अतः उसे पछतावा है। वह टुक भर सोना चाहता है, पश्चाताप की अग्नि में जलना चाहता है लेकिन उसकी यथार्थ चेतना उसका पीछा नहीं छोड़ती। वह बार बार सपनों में आकर सपनों की शिथिल दुनिया से बाहर निकाल लाती है। वह उन्हें बार बार बेचैन कर रही है। और, यह अत्यंत स्वाभाविक भी है कोई संवेदनशील व्यक्ति अपने युग यथार्थ के दबाव में आकर बेचैनी महसूस करे और अपनी चेतना से प्रश्न करे कि तुम ऐसा क्यों कर रही हो?

रघुवीर सहाय की यथार्थ चेतना अपनी जिम्मेदारी के प्रति गंभीर है। इसलिए वह कवि को युगीन यथार्थ से जुड़ने के लिए बाध्य करती है। कवि भी अपनी चेतना के प्रभाव में है और उसके प्रभाव से ही कवि के मन की ज्वाला (रोमानियत की आग) शांत हो चुकी है, जिस राह का अंत कर उसे आगे बढ़ना है उसका संकेतन भी वह कर चुकी है। अतः कवि का अब सोते रहना ठीक नहीं। उसे जागकर कर्तव्य पथ आगे बढ़ना चाहिए। लेकिन यथार्थ का रास्ता आसान नहीं है। वह एक दुर्गम पथ की तरह है जिसपर उनकी चेतना चलने के लिए लौटा लाना चाहती है।

इस कविता पर विस्तार से बात करने का एक मात्र मकसद सिर्फ इतना है कि अब तक हमें यही बताया गया है कि रघुवीर सहाय सन् 1946 से लिखना आरंभ करते हैं और उनकी आरंभिक कविताएँ रोमानियत से संबंध रखती हैं। जबकि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। रघुवीर सहाय अपने आरंभिक लेखन से ही युगीन यथार्थ का दामन थाम कर चलते हैं। जहाँ कहीं भी वे रोमानियत के प्रभाव को महसूस करते हैं उनका यथार्थवादी मन सजग हो उन्हें रोक लेता है। और यह अत्यंत स्वाभाविक है क्योंकि उस दौर का कोई भी सचेत युवा इतना गैर-जिम्मेदार नहीं हो सकता था। सन् 40 से 50 का दौर भारतीय युवाओं के लिए अपना सही पक्ष चुनने का समय था। सही के चुनाव में द्वंद्व स्वाभाविक है। रघुवीर सहाय उसी द्वंद्व (क्षणिक) से गुजरते हैं। और, जैसा कि पहले कहा चुका है कि इस द्वंद्व में कवि की यथार्थ चेतना हावी है। अतः यह कहना ज्यादा सही होगा कि रघुवीर सहाय अपने आरंभिक दौर से ही प्रगतिशील चेतना के कवि रहे हैं और उनकी इस चेतना का विकास निरंतर होता रहा, जो सन् 60 तक आते-आते पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त हुआ।

रघुवीर सहाय की यथार्थ चेतना उनकी पहली रचना से ही सजग है। रघुवीर सहाय रचनावली के संपादक सुरेश शर्मा के अनुसार कवि की पहली रचना 'कामना' नामक कविता है, जिसकी रचना तिथि 17 अक्टूबर, 1946 है। इस कविता में वे लिखते हैं –

"चल पड़ा निर्माण पथ पर युग युगों का मैं बटोही
विश्व की शुभकामना में विश्व से होकर निमोही
छोड़ आया हूँ सभी कुछ भोग राग विषाद माया
भूल यह की, हृदय अपना भी कहीं मैं छोड़ आया
लौट पड़ने का प्रलोभन विजय करना चाहता हूँ
मैं तुम्हारी शक्ति का आभास पाना चाहता हूँ"[5]

गौरतलब है कि यह रघुवीर सहाय की यह पहली रचना है और इसमें कवि स्वीकार करता है कि वह अपना हृदय कहीं छोड़ आया है। यह उसकी भूल है, पर उसे पाने के प्रलोभन पर वह विजय चाहता है। अर्थात् रघुवीर सहाय आरंभ से यही चाहते रहे कि उनकी रचनाएँ सामाजिक यथार्थ संपृक्त रहें। उन्होंने अपनी आरंभिक कविताओं में इसी कामना और उससे संबंधित द्वंद्व को रोमानियत की शैली में अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। वस्तुतः रघुवीर सहाय की आरंभिक रचनाएँ उनकी प्रतिबद्धता का आकार निश्चित करती हुई दिखाई पड़ती हैं। स्वयं रघुवीर सहाय ने भी यह स्वीकार किया है कि "कोशिश तो यही रही है कि सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जगारूक रहा जाये और वैज्ञानिक तरीके से समाज को समझा जाये। वास्तविकताओं की ओर ऐसा ही दृष्टिकोण रहना चाहिए और यही जीवन को स्वस्थ बनाए रख सकता था।"[6] यही दृष्टिकोण रघुवीर सहाय की रचनाओं का आधार है जिसे उन्होंने आरंभ से ही बनाए रखा है। इस दृष्टिकोण के मूल में जो चिंतन की प्रक्रिया घटित होती है, वही उनकी आरंभिक कविताओं में रोमानियत और यथार्थ के बीच द्वंद्व की शक्ल में उभरता है।

रघुवीर सहाय ने अपनी आरंभिक रचनाओं के बारे में जो वक्तव्य 'दूसरा सप्तक' में दिया है उसमें बाद के दिनों में भी कोई खास परिवर्तन नहीं आया। हाँ, परिपक्वता जरूर आयी है, साहित्य और समाज के द्वंद्व की पहचान में दृष्टि अवश्य गहरा गई है। उस गहन पहचान के आधार पर रघुवीर सहाय जब अपनी आरंभिक रचनाओं को देखते हैं तो उन्हें वे रचनाएँ सार्थक लगने लगती हैं। अतः सन् 1983 में वे उन रचनाओं का संकलन तैयार करते हैं और संकलन की भूमिका में लिखते हैं – "हर कवि के जीवन में उसकी लिखी हर कविता एक साथ दो तरह के विकासक्रमों का प्रमाण होती हैं, एक वह जो दूसरे कवियों की लिखी कविताओं सहित उसकी अपनी लिखी कविताओं ने साहित्य में बनाया है और दूसरा वह जो उसने अपनी लिखी कविताओं से अपने लिए बनाया है। मैं मानने में यह संकोच करता हूँ कि कोई कवि अकेले साहित्य में कोई परंपरा बन सकता है। वह दूसरों के साथ शामिल होकर जो बनाता है और खुद अपने लिए जो बनाता है, उन दोनों के बीच एक द्वंद्वात्मक संबंध ही उसे एक अस्तित्व और दिशा देता है और वही किसी कवि के कृतित्व का विस्तार भी है, सारांश भी। इन कविताओं को यहाँ एक साथ प्रकाशित कर देने का कारण यही है कि मुझे इतना दिखाई देने लगा है कि अपनी उन कविताओं को फिर से देखे बिना जो मैंने लिखकर प्रकाशन के योग्य नहीं पाई थीं, मैं अपने संपूर्ण कविकर्म को नहीं देख पाता। जैसे कि तब मैंने वे ही कविताएँ की थी जो मैं स्वयं विश्वसनीय देख पाता था वैसे ही अब वे भी प्रकाशित कर रहा हूँ जो अब मुझे इस संदर्भ में जिसका ऊपर उल्लेख किया, विश्वसनीय दिखाई देने लगी हैं। जो मुझे देखना सार्थक प्रतीत हो रहा है वह पाठकों को देखना भी सार्थक हो सकता है।"[7]

स्पष्ट है कि रघुवीर सहाय अपनी आरंभिक रचनाओं को स्वयं ही विश्वसनीय नहीं देख पा रहे थे और इसलिए उसे अप्रकाशित छोड़ दिया था। इसका कारण तो संभवतः यही रहा होगा कि कविवर की दृष्टि में वे रचनाएँ उनकी प्रतिबद्धता के अनुकूल सामाजिक सरोकारों से संपृक्त नहीं रही होंगी। बाद में, (लगभग 33 साल बाद) जब उनकी दृष्टि परिपक्वता के शीर्ष तक पहुँची तब उन्हें अपनी आरंभिक रचनाओं की सार्थकता का आभास हुआ और उन्हें लगा कि उनकी आरंभिक रचनाएँ भी उनकी प्रतिबद्धता के सर्वथा अनुकूल एवं सार्थक है और उनके कविकर्म की संपूर्णता में उतनी सहायक हैं जितनी बाद की रचनाएँ।

अस्तु, रघुवीर सहाय की आरंभिक रचनाएँ उनकी

प्रगतिशील व यथार्थ चेतना का ही प्रतिबिंब हैं।

संदर्भ :

1. दूसरा सप्तक, सं. अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2009 : 138
2. वही : 138-139
3. रघुवीर सहाय रचनावली, भाग 1, सं. सुरेश शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013 : 395.
4. वही : 395
5. वही : 394.
6. 'दूसरा सप्तक', सं. अज्ञेय : 138
7. रघुवीर सहाय रचनावली, भाग 1 : 301.

❑❑❑

ISSN 2393-980X
शोध संविद
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ ब्रजबिहारी पांडेय
सहायक प्राध्यापक, हिंदी
ओरिएंटल कॉलेज, पटना सिटी

आलोचना

जन-प्रतिरोध के निकष पर रघुवीर सहाय और धूमिल की काव्य-भाषा

रघुवीर सहाय और धूमिल दोनों प्रगतिशील चेतना के कवि हैं। उनकी काव्य-भाषा भी प्रगतिशील है। प्रगतिशील काव्य-भाषा जन-भाषा के करीब होती है। जनभाषा से काव्य-भाषा को जोड़ना सामंती कलावादिता से प्रतिरोध का बड़ा उदाहरण है। यह काम छायावादियों ने नहीं किया। उनकी भाषा में कहीं-कहीं क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग हुआ जरूर है, परंतु वह छायावादी कवियों की काव्य-भाषा की प्रवृत्ति के तहत नहीं है। काव्य-भाषा के रूप में जनभाषा का प्रयोग एक क्रांतिकारी परिवर्तन था जो प्रगतिवाद से पहले नहीं हुआ। काव्य-भाषा को परिवर्तन की भाषा अथवा जनप्रतिरोध की भाषा बनाने का काम प्रगतिवाद के दौर में अपेक्षाकृत अधिक हुआ। क्रांति, परिवर्तन और प्रतिरोध अपनी राजनैतिक पहचान के साथ प्रगतिशील काव्य-भाषा का हिस्सा बने। प्रतिरोध की भाषा स्वभावतः आमूल परिवर्तन की ओर अग्रसर रहती है। अन्य और भ्रष्टाचार के विरुद्ध प्रतिरोध रचने वाले साहित्यकारों की काव्य-भाषा परिवर्तनकामी होती है। उसमें दया और ईश्वर के प्रति कोई आग्रह नहीं होता। अन्याय, दुरवस्था के मूल कारणों को उद्घाटित करते हुए उसके उन्मूलन के प्रयास की प्रवृत्ति काम करती है। एक प्रगतिशील कवि के रूप में रघुवीर सहाय और धूमिल ने अपनी काव्य-भाषा को अनेक क्रांतिकारी रूपों में ढाला है। उनकी कविता में क्रांतिकारी नारों को शामिल किया गया है, सामंती पूँजीवादी वर्चस्व को नकारा गया है और दबले-कुचले आम लोगों को संघर्ष का रास्ता दिखाया गया है। इस तरह कविद्वय की कविताएँ क्रांतिकारी परिवर्तन की कामना से अपना स्वरूप अख्तियार करती हैं, और तद्नुकूल काव्य-भाषा का निर्माण करती हैं। कविद्वय की कविताओं में जो शब्द आए हैं वे जनता के बीच से आए हैं, आभिजात्य वर्ग की भाषिक शब्दावलियों का यहाँ प्रयोग नहीं के बराबर है। शब्दावलियों का यह प्रयोग आभिजात्यवाद, सामंतवाद आदि के विरुद्ध प्रतिरोध रचता है जो कविद्वय के कवि-कर्म का मूल स्वर है।

प्रगतिवाद के बाद स्वातंत्र्योत्तर जनतांत्रिक शासन व्यवस्था के अत्याचारों को प्रगतिशील कवियों ने काव्य-विषय बनाया। विशाल जनमत संग्रह की व्यवस्था होते हुए भी सामंती पुरोहिती तत्त्व समाप्त नहीं हो पाए। पूँजीवाद निरंतर मजबूत होता चला गया, कालाबाजारी बढ़ती गई। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका आदि पर माफियाओं का नियंत्रण रहा। स्वतंत्र भारत के जो सपने थे, वे माफिया और भ्रष्ट राजनीति के गर्भ

में समा गए। जनता अब निराशा की ओर अग्रसर हुई, उसके जनतांत्रिक अधिकारों का कोई मतलब न रहा। कविता में इन बातों को लेकर कुछ साहसी कवि उतरे। हालाँकि, यह काम अत्यंत चुनौतिपूर्ण था फिर भी मुक्तिबोध जैसे कवियों ने इस चुनौती को स्वीकार किया और कविता में जनप्रतिरोध की धार पैदा की। मुक्तिबोध की कविता प्रतिरोध के स्तर पर एक नई काव्य-भाषा रचती है जो राजनीतिक कविता लिखने वालों के लिए एक पाथेय है।

सत्ताविरोधी कविताएँ लिखते हुए प्रगतिशील कवि खेतिहर समाज की ओर देखने लगता है और वहाँ से शब्द ग्रहण करता है। धान, गेहूँ, तीसी, अलसी, चना, सरसों आदि शब्द अपनी सुंदर छवि के साथ प्रगतिशील कवियों के यहाँ व्यवहृत हैं। धूमिल की काव्य-भाषा में भी ऐसे शब्दों को स्थान मिला है। आमतौर पर प्रगतिशील कवि गुलाब की जगह सरसों, अलसी आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। रघुवीर सहाय और धूमिल की काव्य-भाषा में गुलाब शब्द नेहरू के लोकतंत्र पर व्यंग्य कररने के लिए प्रयुक्त हुआ है।

प्रगतिवाद से पहले जातिसूचक शब्दों का इस्तेमाल नहीं होता था। प्रगतिशील काव्य-भाषा में ऐसे शब्द धड़ल्ले से प्रयुक्त हुए। तेली, धोबी, चमार, मोची, कहार आदि शब्द कविता के विषय भी बने और काव्य-भाषा में प्रतिरोध के हथियार भी। "प्रगतिवादी कवियों ने दलित-विषय को कविता से जोड़कर काव्य-भाषा में नए पक्ष की संभावना को जन्म दिया। कविता का विचारधारा से स्पष्ट संबंध प्रगतिवादी कवियों ने स्वीकार किया। राजनीतिक विचारधारा कविता को समृद्ध करती है, इसकी संभावना इसके पहले नहीं दिखी थी। मार्क्सवाद अंततः राजनीतिक विचारधारा के रूप में प्रगतिवादियों द्वारा अपनाया गया था। उनके साझे प्रयासों का आधार मार्क्सवाद था। मार्क्सवाद को अपनाने के कारण कविता में सैद्धांतिक विश्लेषण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ी। वामपंथी कार्यक्रमों को कविता में व्यक्त गया। पूँजीवाद, समाजवाद, सर्वहारा, बुर्जुआ, सामंतवाद, पुरोहितवाद जैसे शब्द काव्य-भाषा में शामिल हुए।"[1]

प्रगतिशील काव्य-भाषा में गाँव से जुड़े शब्दों को गंभीरता से लिया गया है। प्रगतिशील कवियों ने अपने गाँव के नाम तक कविता में दिए हैं। अपने गाँवों को कवियों ने विस्तार से चित्रित किया है। नागार्जुन अपने गाँव 'तरउनी' का जिक्र करते हैं तो केदारनाथ सिंह 'चंदगहना' का। धूमिल तो अपने गाँव 'खेवली' के नाम पर पूरी कविता ही रच डालते हैं। इसके अतिरिक्त वे 'ग्राम कीर्तन' नामक कविता लिखकर अपने गाँव में रहने वालों लोगों की नवैयत बताते हैं, अर्थात् किसान जीवन से जुड़े लोगों की राजनीतिक उदासीनता को रेखांकित करते हुए यथास्थितिवाद, आलस्य और अवसरवादिता को उजागर करते हैं और अंत में वह ग्राम पूरे देश का रूपक बन जाता है। 'संध्या, प्रातः, बारिश, धूप, बादल, मौसम, नदी नाले, कदम्बन, पेड़-पौधे, पर्व-त्योहार, मेला-बाजार आदि शब्द ग्रामीण जीवन के अनिवार्य अंग हैं। इसके अतिरिक्त गाँवों में प्रचलित कुछ व्यक्तियों के नाम भी हैं जो उनके चरित्र के बोधक हैं। जैसे- रामदास, हरिचरना, रामलाल, भोलाराम, मंगरे, मैकू, रामगुलाम, बेचू, निरहू आदि। ये व्यक्तिवाचक शब्द वर्ग-चरित्र के वाचक हैं जो हिंदुस्तान की शोषित जनता का वर्ग है। इस वर्ग की शब्दावलियों को नजर अंदाज करके गाँव के जीवन का सहज और जीवंत चित्रण संभव नहीं। प्रगतिशील कवियों ने यथार्थ की सहजता और जीवंतता का खास खयाल रखा तथा ग्रामीण जीवन को बारीकी से कविता में चित्रित किया। परिणामतः जीवन की विशाल शब्द-संपदा हिंदी कविता में आने लगी। इस तरह प्रगतिशील काव्य-भाषा ने हिंदी कविता को जातीय रूप प्रदान किया। रघुवीर सहाय और धूमिल की काव्य-भाषा भी हिंदी के जातीय स्वरूप की परंपरा में आती है।

स्पष्ट है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्य-परंपरा में प्रगतिशील काव्य-भाषा का विकास कैसे हुआ और उसकी प्रवृत्ति में किन तत्त्वों का समावेश हुआ। रघुवीर सहाय और धूमिल की काव्य-भाषा भी उन तत्त्वों को आत्मसात कर विकसित हुई है। ये दोनों कवि प्रगतिशील काव्य-भाषा की परंपरा में एक मजबूत कड़ी हैं। इनकी काव्य-भाषा जनप्रतिरोध के संदर्भ में एक हथियार की तरह है, जो हिंदी के बहुत कम कवियों में है।

प्रगतिशील काव्य-भाषा हिंदी का जातीय रूप है। यह जनता की भाषा है जिसमें गाँव में प्रचलित शब्दों को स्थान मिला है। कविता जब वैचारिक प्रतिबद्धता

के करीब पहुँची तो उसे मार्क्सवाद से एक दृष्टि मिली, जिसके परिणामस्वरूप उसने ग्रामीण किसानों को उनकी भाषा के साथ अपनाया। उस भाषा में किसानी जीवन से संबंधित शब्द, गाँव के भदेस शब्द और प्रकृति के उपमानों को ग्रामीण जीवन के संदर्भ जगह मिली। रघुवीर सहाय की काव्य-भाषा में भी ऐसे शब्दों को जगह मिला है, लेकिन मार्क्सवादी विचार के आग्रह पर नहीं। वह कवि की अपनी मौज है और ग्रामीण प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण है जिसे उन्होंने चित्रात्मक भाषा में व्यक्त किया है –

"फैल गया गोरी धरती पर झिंझरा, झिंझरा
चाँदी के काँटोवाला बाँका बबूल
निर्जल मेघों की हल्की छायाओं-जैसा
....
मँजी गगरियों पर से किरणें घूम-घूम
छिपती जातीं पनिहारिन के साँवल हाथों की चूड़ियों में।"[2]

इन पंक्तियों की भाषा साधारण बोलचाल की है, जिसमें बोलचाल की लय का सुंदर निर्वाह हुआ है। रघुवीर सहाय की यह भाषा आरंभिक दिनों की है। आगे चलकर वे इसी भाषा का विकास करते हैं। ध्यातव्य है कि इस काव्य-भाषा में प्रतिरोध का तेवर नहीं है। हालाँकि, इस दौर की कविताओं में 'जन' शब्द कई बार आया है, लेकिन वह उनकी प्रतिबद्धता का सूचक है, प्रतिरोध का नहीं। आगे चलकर सहाय जी अपनी जन-प्रतिबद्धता के प्रति गंभीर हो जाते हैं जिसका संकेत वे आरंभिक दिनों की कविता में 'जन' शब्द के प्रयोग से दे चुके होते हैं। 'सप्तक' में संकलित ककविताओं की भाषा में उनका काव्य-व्यक्तित्व पूरी तरह उभर नहीं पाया है, उसमें उनका व्यक्तित्व लगभग उन्मुक्त है। इस उन्मुक्त व्यक्तित्व का आकर्षण वैविध्यपूर्ण है। कहीं ठहराव नहीं दिखाई पड़ता। उदाहरणार्थ उनका आकर्षण ग्रामीण जीवन, शहरी जीवन, प्रेम, प्रकृति-सौंदर्य, आत्मचिंतन इत्यादि के प्रति झुका हुआ है। आकर्षण की ये दिशाएँ सूचित करती हैं कि रघुवीर सहाय उन दिनों अपने कवि-कर्म की दिशा तलाश रहे थे और इसलिए काव्य-भाषा का भी।

रघुवीर सहाय की काव्य-भाषा का व्यक्तित्व उनके काव्य-संग्रह 'सीढ़ियों पर धूप में' से निर्मित होता हुआ दिखाई पड़ता है। इस संग्रह में रघुवीर सहाय को ऐसे शब्द-प्रयोग में सफलता मिली है जिनमें प्रतिरोध का स्वर उभरता है। अस्तित्ववादी क्षणवाद पर केन्द्रित उनकी एक कविता है, जिसका शीर्षक है- 'माँग रहे हैं जीवन'। इस कविता में उपहास उड़ाने वाले शब्दों में प्रतिरोध का जबरदस्त रचाव है –

"अपनी उन्मद जीवन-आशा से हम दंडित
माथे मुकुट व्यथा का बाँधे
हम क्षण की महिमा से मंडित
हम वैज्ञानिक हैं, हम पंडित हैं, हम खंडित
शरणागत हम

विह्वल भोगी विकल विलासी हम नर-नारी
उद्वेलित आंदोलित आडोलित संसारी
निश्चल पीड़ा आज हमारी
डाल दिए है हमने काँधे

तेरे चरणों पर रखकर हम शिर स्वर्णोज्ज्वल
माँग रहे हैं जीवन, हे प्रिय, हे जीवत पल
क्षण जी लें तब आगामी क्षण तक पहुँचा दे
ये तन दुर्बल, हारे माँदे"[3]

इस कविता के शब्दों का अर्थ-संदर्भ विश्लेषित करने पर रघुवीर सहाय की काव्य-भाषा के प्रतिरोधी तेवर की ताकत का पता चलता है। नन्दकिशोर नवल के विश्लेषण में इस कविता के शब्दों का अर्थ-संदर्भ खुलकर सामने आया है। वे लिखते हैं, "क्षणवादी दावा करते थे कि जीवन से अत्यधिक लगाव होने के कारण ही वे दुख की तीव्र अनुभूति करते हैं। इस तरह दु:ख उनकी उन्मद जीवनाशा का दंड है। हमारा ध्यान 'माथे मुकुट व्यथा का बाँधे' पर जाना चाहिए। मुक्तिबोध ने कहा था कि ये कवि अपने दुख को तमगे की तरह धारण करते हैं। रघुवीर सहाय में वह तमगा मुकुट है, यानी इन कवियों ने दुख से मुक्ति के लिए प्रयास न कर उसी को अपना लक्ष्य मान लिया है। 'पंडित' के साथ 'खंडित' की तुकबंदी पांडित्य का पोल खोल देती है। इसी तरह 'शरणागत' उन्हें आत्मदया की स्थिति में पहुँचा देता है। ये कवि 'विह्वल भोगी' और 'विकल विलासी' हैं। इन सांसारिकता का पूरा मखौल 'उद्वेलित' और आंदोलित' के साथ रघुवीर सहाय का गढ़ा हुआ 'आडोलित' शब्द बनाता है। ये अपनी पीड़ा को निश्चल समझते हैं और उसे अपने कंधों पर डाले

हुए थोड़ा गौरवान्वित भी हैं, किसी देवता के आगे अत्यंत विनत होना भी इनकी दयनीयता ही सूचित करती है। 'स्वर्णोज्ज्वल शिर' के दोनों शब्द विस्फोटक हैं। 'सिर' के स्थान पर 'शिर' क्षणवादियों की महिमा का उपहास करता है। वह 'स्वर्णोज्ज्वल' इसलिए है कि उस पर व्यथा का चमकता हुआ स्वर्ण मुकुट है ! देवता भी वही हैं, जो 'जीवित पल की साकार प्रतिमा' हैं ! इन कवियों के शरीर दुर्बल और जीवन के भोग से बहुत थके हुए हैं। देवता से इनकी याचना है कि वे उन्हें उपस्थित क्षण को भोगने दें, फिर जब वे उसे पूरा भोग लें, तब कृपा करके उन्हें अगले क्षण तक पहुँचा दें, जिससे कि वे उसे भी उसी तरह भोग सकें !"[4]

स्पष्ट है कि रघुवीर सहाय ने अस्तित्ववादी क्षणवाद का उपहास जिस तरह से उड़ाया है उसमें शब्द-चयन का कितना सटीक योगदान है। अस्तित्वादियों की वास्तविकता की पोल खोलने में रघुवीर सहाय के शब्द उस सिपाही की तरह हैं जिनके खड़ा होने के स्थान को देखकर ही सारा मामला समझ में आ जाता है और यह भी समझ में आ जाता है कि वे शब्द किसके विरुद्ध और कितनी ताकत से प्रतिरोध में खड़े हैं।

'सीढ़ियों पर धूप में' संकलित कविताएँ प्रगतिशील कविता के प्रचलित ढाँचे से और 'नई कविता' के नएपन से अलग अपना खुद का रास्ता बनाती हैं। इस संग्रह में प्रेम की कविताओं के साथ प्रकृति की भी कविताएँ संकलित हैं। पर उनमें एक अंतर है, रूमानियत की कमी का। इस संग्रह की अन्य कविताओं से सहाय जी का रोमानी रूप गायब है। उसकी जगह उनकी अनुभूति बौद्धिकता और चिंतनशीलता से रिश्ता कायम करती हुई देखी जा सकती है। इस नए रिश्ते के साथ उनकी काव्य-भाषा अपेक्षाकृत अधिक चुस्त है और तीक्ष्ण भी। यही तीक्ष्णता उनकी काव्य-भाषा के प्रतिरोधी तेवर के कारण है जो प्राय: कवि और पाठक दोनों को काटती है। इस तेवर के कारण सहाय जी कविताओं में एक दूसरे प्रकार का स्वाद आ गया है। उदाहरणार्थ –

"तुम क्या करती हो मेरी लाडली
अपनी व्यथा के संकोच से मुक्त होकर
जब मैं तुम्हें प्यार करता हूँ"[5]

यहाँ 'लाडली' संबोधन परंपरागत प्रेम-कविता के प्रति एक प्रकार का प्रतिरोध है। कविता में इस संबोधन की उपस्थिति करंट के झटके के समान है जो प्रेम-कविता को उसकी परंपरा से बिलकुल अलग तेवर प्रदान करता है। इसी तरह एक दूसरी कविता में 'छोकरी' शब्द आया है जो सर्वथा नए प्रकार की प्रेम-कविता का संकेत है –

"उजली दुपहरी थी, हवा ठंडी, शुरू की जनवरी,
हम दो जने थे, मैं सयाना दूसरी थी छोकरी"[6]

यहाँ 'छोकरी' शब्द केवल नए प्रकार की प्रेम-कविता की सूचना नहीं देता, अपितु पारंपरिक प्रेम-कविता को उसके पुरानेपन के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर भी बुलंद करता है। इन प्रेम-कविताओं में जो उपहास का भाव है उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि 'वह प्रेमी-प्रेमिका और प्रेम को निशाने पर लेकर भी उनका उपहास नहीं उड़ाता। उसमें प्रेम की मूल्य-गरिमा बनी रहती है।' वस्तुत: कवि के निशाने पर पारंपरिक प्रेम का आभिजात्य है जिसके प्रतिरोध में शब्द नियोजित कर प्रेम को उसकी संपूर्ण गरिमा के साथ आम जन के निकट ला खड़ा किया है, जहाँ प्रेम आम जनता की भाषा में अपनी मूल्य-गरिमा को परिभाषित करता है।

रघुवीर सहाय की कविता में जो प्रकृति आई है उसका चित्र वे भिन्न शब्दवलियों में प्रस्तुत करते हैं –

"और यह कैलेंडर से मालुम था
अमुक दिन अमुक वार मदन महीने की होवेगी, पंचमी
दफ्तर में छुट्टी थी- यह था प्रमाण
और कविताएँ रहने से यह पता था
कि दहर-दहर दहकेंगे कहीं ढाक के जंगल
आम बौर आवेंगे
रंग-रस-गंध से लदे-फँदे दूर विदेश के
वे नन्दनवन होंगे यशस्वी
मधुमस्त पिक भौंर आदि अपना-अपना कृतित्व
अभ्यास करके दिखावेंगे"[7]

इस कविता में अन्य लोगों के प्रकृति-बोध के साथ माघ मास पर व्यंग्य किया है। 'माघ का महीना वसंत के आगमन के लिए एक रूढ़ि बन गया है।' कवि ने उसे यहाँ 'मदन महीना' कहकर उपहास उड़ाया है। इस कविता में रघुवीर सहाय की असाधारण वर्णन क्षमता से परिचित हुआ जा सकता है। उनकी

काव्य-भाषा का यह रूप अन्यत्र दुर्लभ है। 'दहर-दहर दहकेंगे ढाक के जंगल' और 'रंग-रस-गंध से लदे-फँदे नन्दनवन' पदबंध में काव्यात्मक वर्णनात्मकता का अद्‌भुत उदाहरण है। इस संश्लिष्ट काव्यात्मक वर्णन से जंगल और नंदनवन का चित्र अपनी संपूर्ण इयत्ता के साथ आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। इसके आगे की पंक्ति 'अपना-अपना कृतित्व अभ्यास करके दिखावेंगे' में वसंत ऋतु पर लिखी गई कविताओं में पारंपरिक सामग्री के उपयोग पर एक चोट है, अर्थात् यह पंक्ति कविता में पारंपरिक सामग्री का जमकर प्रयोग करने वालों के विरुद्ध एक प्रहार है जो कला की पारंपरिकता को बासीपन की हद तक ले जाने कवियों के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर सृजित करती है।

रघुवीर सहाय शहरी मध्यवर्गीय चेतना के कवि हैं। मध्यवर्ग की अभाव से उपजी पीड़ा को गहराई से महसूस करते हैं। खासतौर पर, मध्यवर्गीय स्त्री की जो बेचारगी है, उस बेचारगी के विरुद्ध उनकी कविता जो प्रतिरोध खड़ा करती है उसमें उनकी काव्य-भाषा का तेवर देखिए –

"पढ़िए गीता
बनिए सीता
फिर इन सबमें लगा के पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घर बार बसाइए।

होंय कँटीली
आँखें गीली
लकड़ी सिली, तबियत ढीली
घर की सबसे बड़ी पतीली
भरकर भात पसाइए।"[8] – *(पढ़िए गीता)*

X X X

"नारी बिचारी है
पुरुष की मारी है
तन से क्षुधित है
मन से मुदित है
लपककर झपककर
अंत में चित्त है"[9] – *(नारी)*

यहाँ स्त्री की परवशता और उसे आधुनिक बनाने के ढोंग की पोल खोली गई है। उसकी पढ़ाई-लिखाई का कोई खास परिणाम नहीं निकलता। उसकी समस्त पढ़ाई का पर्यवसान गीता ज्ञान में हो जाता है और उस ज्ञान के तहत उससे सीता बनने की उम्मीद की जाती है। उसी रास्ते पर चलते हुए अंततः उसे रसोई तक सीमित कर दिया जाता है। कुल मिलाकर पितृसत्ता के दुष्चक्र में फँसकर उसे हथियार डाल ही देना पड़ता है। वह बहुत लंबे समय तक अपनी स्थिति के प्रतिरोध में खड़ा नहीं रह पाती। इस कविता में शब्द-प्रयोग की चुस्ती देखते बनती है। शब्द-प्रयोग की चुस्ती और जटिलता में ही प्रतिरोध उत्पन्न होता है। नंदकिशोर नवल के अनुसार, "रघुवीर सहाय ने 'गीता', 'सीता' और 'परिणीता'-जैसे पवित्र शब्दों को अपनी पहली कविता में वस्तुतः पलीता लगाकर उड़ा दिया है। इसी तरह उसमें उन्होंने 'कँटीली', 'गीली', 'सीली', 'ढीली' और 'पतीली' जैसी चालू तुकबंदी से स्त्री की कल्पित मर्यादा के गढ़ को ढहा दिया है। उनकी व्यंग्यात्मक मुद्रा स्त्री-जाति के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता की देन है। जो जनता को प्यार करता है, वही उसे फटकार सकता है। रघुवीर सहाय स्त्री-जाति के प्रति भावुक नहीं हैं, क्योंकि उसकी दशा के लिए वे आज के युग में उसे भी जिम्मेदार मानते हैं। इसी से उनका स्वर बहुत धारदार हो जाता है, जो दोनों तरफ काटता है। स्त्री जाति पर उनका आक्रोश दूसरी कविता में भी व्यक्त हुआ है, निश्चय ही मुखरता के साथ नहीं, बल्कि गहरे दुख से मिलकर। ...रघुवीर सहाय की अंतिम पंक्तियों में कोई अश्लीलता नहीं, क्योंकि चोट दूसरी जगह की गई है। 'क्षुधित' और 'मुदित' पंत-शब्दकोश के शब्द हैं, 'चित्त' से उनकी तुकबंदी उनकी भी दिव्यता नष्ट कर देती है।"[10]

'आत्महत्या के विरुद्ध' काव्य-संग्रह की कविताएँ भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था और राजनीति पर आधारित कविताएँ है। इस सग्रह के प्रकाशन के पश्चात रघुवीर सहाय की काव्य-भाषा को अखबारी भाषा कहा गया। सहाय जी ने इस संग्रह की कविताओं को 'अखबारी' शब्दों के सहारे लिखा भी गया है। इस बात को आधार बनाकर नई कविता और प्रगतिशील कविता के खेमे के लोगों ने सहाय जी की कविताओं को 'अखबारी' कह दिया। इसके जवाब में रघुवीर सहाय ने कविता और अखबारनवीसी का फर्क बताते कहा कि "कवि

और अखबारनवीस के उद्देश्य समान हैं, फर्क उनके तरीके में है। दोनों ही नए मानव-संबंध की तलाश करते हैं, लेकिन अखबारनवीस जहाँ घटनाओं और तथ्यों को उन्हीं के क्रम से प्रस्तुत करता है, वहाँ कवि उस क्रम में ऐसा परिवर्तन कर देता है कि वे घटनाएँ और तथ्य 'वैयक्तिक' न रहकर निर्वैयक्तिक हो जाते हैं। इस तरह वे यथार्थ मात्र न रहकर एक नया यथार्थ- 'संभव यथार्थ- बन जाते हैं।"[11] रघुवीर सहाय ने राजनीतिक घटनाओं और तथ्यों से अपनी कविताओं में कायदे से ऐसे ही संभव यथार्थ की सृष्टि की है, जो उन घटनाओं और तथ्यों तक ही सीमित न रहकर सृजनशीलता का उदाहरण बन गए हैं। इस तरह रघुवीर सहाय अपनी काव्य-भाषा परंपरागतता को तोड़कर रचते हैं। उनकी काव्य-भाषा हर प्रकार की प्रचलित परंपरागतता के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर पुष्ट करती हुई दिखाई पड़ती है। इसलिए उनकी काव्य-भाषा हर जगह तोड़ती हुई नजर आती है। यहाँ तक कि उनके हर अगले काव्य-संग्रह की भाषा पिछले काव्य-संग्रह की काव्य-भाषा से भिन्न है। इस संदर्भ में नंदकिशोर नवल लिखते हैं कि "रघुवीर सहाय का विश्वास तोड़ने में है, इसलिए उन्होंने नई कविता की प्रचलित और स्वीकृत भाषा को तोड़ा है। यह काम उन्होंने भिन्न प्रकार की शब्दावली और उसके प्रयोग-कौशल के द्वारा तो किया ही है, वाक्य-विन्यास को बदलकर भी किया है। नई कविता में वाक्य जिस तरह से लिखे और कविता में रखे जाते थे, उन्होंने उसके ढंग को बदल दिया। उनके वाक्य कभी छोटे हैं, कभी बड़े, कभी पूरे हैं, कभी अधूरे, लेकिन विराम-चिह्नों को हटा देने से प्राय: आपस में मिले हुए हुए हैं। उससे वाक्यों की स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गई है और एक वाक्य दूसरे वाक्य में घुस गया है। इससे भी एक नई भाषा की सृष्टि में मदद मिली है, लेकिन यह नई भाषा सिर्फ कहने के लिए नई भाषा नहीं हैं। इसमें एक वाक्य का 'करेंट' दूसरे वाक्य में भी प्रवाहित होता है, जिसे पढ़ते समय एक नए प्रकार की आनन्दानुभूति होती है। रघुवीर सहाय ने यह भी कहा है कि वही तोड़ना तोड़ना है, जो साथ ही साथ बनता चला जाए। स्पष्टत: उनका संकेत सृजनात्मकता की तरफ है, जो उनकी काव्य-भाषा में नए वाक्य-विन्यास के साथ-साथ रचना में वाक्यों के नए ढंग के विन्यास से भी संभव हुई है।"[12]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय की काव्य-भाषा प्रगतिशील काव्य-भाषा ही है, परंतु उसका अपना व्यक्तित्व है। सहाय जी अपनी काव्य-भाषा में शब्द-प्रयोग के ऐसे कलात्मक विवेक का परिचय देते हैं, जिसमें मामला अपनी संपूर्णता के साथ उपस्थित हो जाता है और किसी तरह का कोई रहस्य बाकी नहीं रह जाता। न यथार्थ की अभिव्यक्ति में कोई कमी आती है और न ही उस यथार्थ के नकरात्मक पक्ष के प्रतिरोध में। यथार्थ की अभिव्यक्ति और उसके प्रतिरोध दोनों में एक लयात्मक धार होता है जो पाठक को समझदार बनाते हुए उसके पाथेय का संकेत भी करता जाता है।

धूमिल की काव्य-भाषा भी रघुवीर सहाय की भाँति जनभाषा है जिसे कायदे से जातीय भाषा कहा जा सकता है। वे अपनी काव्य-भाषा के प्रति अत्यंत सावधान हैं। उनकी कविताओं में बार-बार 'भाषा' का संदर्भ आता है। वे भाषा और भूख दोनों के प्रति चिंतित थे। उनकी चिंता इन शब्दों में साफ झलकती है- "विभिन्न गुटों, वादों, भाषाओं और संप्रदायों में विभाजित देश का एक बड़ा हिस्सा भूख और भाषा के संकट से गुजर रहा है। आर्थिक दबाव के नीचे पिसकर उसकी शिनाख्त खत्म हो गई है। वह कहीं शरीक नहीं है। ऐसा नहीं कि आज का आदमी इस दुहरे संकट से जूझ नहीं रहा है। वह लड़ रहा है किंतु अकेले की लड़ाई ने उसे दुर्बल/निर्बल बना दिया है। ऐसी स्थिति में वह या तो तटस्थ होकर रह गया या फिर निर्मम। आदमी और आदमी के बीच सारे संबंध टूट रहे हैं। इस तरह न केवल आर्थिक असंतुलन बढ़ा है बल्कि कहीं बहुत गहरे उसकी भाषा भी इस साजिश का शिकार हुई है।"[13] इस तरह धूमिल की दृष्टि में भाषा का संकट कोई साधारण संकट नहीं है। वह अनेक संकटों की सूचक है। वस्तुत: भाषा के संकट को वे आदमियत के संकट से जोड़कर देखते थे। इसलिए कविता को उन्होंने भाषा में आदमी होने की तमीज माना। कविता के माध्यम से उन्हें इसी तमीज को प्रतिष्ठित करना था। अत: वे अपनी भाषा और रचना-प्रक्रिया के प्रति अत्यंत सजग रहे। उनकी सजगता के बारे में बताते हुए डॉ. नंदकिशोर नवल लिखते हैं, "अकारण नहीं है कि

कविता लिखने में उन्हें बहुत समय लगता था और उसी अनुपात में वे उस पर श्रम करते थे। इस संबंध में काशीनाथ ने जो कुछ लिखा है, वह उनकी सृजन-प्रक्रिया को जानने की दृष्टि से उपयोगी है : वह बहस करता, अपने को साफ करता; इस बीच मिलने वाले सुझावों और प्रतिक्रियाओं को अपने दिमाग में बिठाता जाता और यह सिलसिला तब तक जारी रखता जब तक कविता पूरी नहीं हो जाती। शब्दों के प्रयोग, सटीक मुहावरे, सही और अनिवार्य तुक, सार्थक वाक्य-विन्यास इतनी मेहनत करने वाला दूसरा आदमी मैंने नहीं देखा। ...वह प्राइमरी या मिडिल स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थी की तरह दिन या रात के किसी समय आता और बेचैनी में स्याही से रँगी दोनों हथेलियाँ आगे फैला देता- 'यार काशी, उँगलियों में घट्टे पड़ गए और ससुरी कविता खिसकने का नाम नहीं ले रही है।' या 'यार देखो, पसीने-पसीने हो गया हूँ लेकिन कोई बात ही नहीं बन रही है।' ऐसे श्रम को वह 'रियाज' कहता।"[14] कविता पर इतना परिश्रम बहुत कम कवियों ने किया होगा। आमतौर पर ऐसा परिश्रम मुक्तिबोध और निराला के यहाँ मिलता है। संभवतः यही कारण है कि काव्य-भाषा के संदर्भ में मुक्तिबोध और निराला अद्वितीय हैं। धूमिल को अब उसी श्रेणी में परिगणित कर लेना चाहिए। उन्होंने समकालीन हिंदी कविता को जैसी भाषा दी है, वह उनकी सबसे बड़ी देन है। उनकी इस देन को स्वीकारते हुए कृष्णदत्त पालीवाल ने उनकी काव्य-भाषा की विशेषताओं को निम्नलिखित शब्दों में रेखांकित किया है-

> *"समकालीन हिंदी कविता को धूमिल की सबसे बड़ी देन है उनकी काव्य-भाषा। गद्य की ललकार को झेलती और सहती हुई यह काव्य-भाषा फूटती है। पुरानी भाषा का पूरा आभिजात्य धूमिल झाड़ देते हैं और गाँव-कस्बे की संवेदना भरी भाषा में सर्जनात्मकता की निष्पत्ति करते हैं। भाषा की पूरी काव्य-लय झटका देती है और एक ऐसी पहचान बनाती है कि भूलना असंभव। परिवेश की तमाम विसंगतियों को यह तनाव-भरी भाषा अर्थ के ध्वनितंत्र में झन-झना देती है। भाषा में तुकों को लेकर जो ठोकरें मैथिलीशरण गुप्त को बदनाम करती थीं, वे ही तुकें धूमिल की नामी-गिरामी कविताओं की शक्ति बन जाती हैं। यह कवि विपरीत, विरोधी, अप्रत्याशित स्थितियों-परिस्थितियों को अर्थग्रहण तथा बिंबग्रहण के प्रतिमान में डालकर सफल हो जाता है। बोलचाल के काव्य-मुहावरे अर्थ-लय को प्रभावी बनाते हैं- इतना प्रभावी कि समकालीन कविता का कोई कवि उनके सामने नहीं टिक पाता। गद्य की लय में अर्थ-प्रवाह उमड़कर निकलता है और काव्य-पंक्तियों में दीप्ति कौंध जाती है। काव्य-भाषा में सभी बिंब ग्रामीण अनुभवों की कोख से फूटे हैं। इसलिए भरभराकर उनका अर्थ दमक उठता है। 'जंगल', 'पेड़', 'भेड़िया', 'आग', 'जूता', 'अकाल', 'भाषा की रात', 'कीचड़', 'दलदल' तथा 'सड़ांध' जैसे बिंब-प्रतीक समकालीन राजनीति के नरक को सामने ला देते हैं।"[15]*

पालीवाल जी के इस वक्तव्य में धूमिल की काव्य-भाषा की समस्त विशेषताएँ समा गई हैं, परंतु पालीवालजी ने धूमिल के प्रतिरोधात्मक स्वर की शक्ति को रेखांकित नहीं किया। धूमिल का शब्द-प्रयोग और वाक्य-विन्यास कुछ अलग तरह का है। उसमें एक खास प्रकार का भदेसपन है जो उनके आक्रोश बनाम प्रतिरोध को धारण करता है। एक उदाहरण देखें-

> *"अब वहाँ अर्थ खोजना व्यर्थ है*
> *पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों*
> *और बैलमुत्ती इबारतों में*
> *अर्थ खोजना व्यर्थ है।"[16]*

यहाँ संघर्ष और तनाव की गहन स्थिति में चिंतन और विचार के आवेग को महसूस किया जा सकता है। आवेग की इस स्थिति में धूमिल अनुभूति और अभिव्यक्ति के समन्वय से उत्पन्न संतुलन खो बैठते हैं और भाषा में इतना तीखापन भर देते हैं कि वह शिष्ट भाषा में 'अभद्र' अभिव्यक्ति बनकर रह जाता है। परंतु इसी तीखेपन में प्रतिरोध की वह धार पैदा होती है जिसे

धूमिल पैदा करना चाहते हैं। इसलिए भाषा का तीखापन उनका चुनाव है न कि असंतुलन। सोचने वाली बात है कि जो व्यक्ति रात-रात भर जग कर महज कुछ पंक्तियों को गढ़ रहा हो, वह असंतुलित कैसे हो सकता है? वस्तुतः धूमिल की काव्य-भाषा प्रतिरोध का हथियार है, जिसे वे अपनी ग्रामीण शब्दों के विशिष्ट प्रयोग से गढ़ते हैं। इसी कविता में 'बैलमुत्ती इबारत' शब्द पर विचार करके देखिए तो पता चलेगा कि धूमिल जिस प्रकार का प्रतिरोध खड़ा करना चाहते हैं उस अर्थ-संदर्भ में इस शब्द का जो तेवर है उससे कम तेवर के शब्द से काम नहीं चलता। अगर यहाँ कोई शिष्ट शब्द का प्रयोग किया जाता तो अर्थ-संदर्भ तो खंडित होता ही प्रतिरोध की धार भी खत्म हो जाती है। सच तो यह है कि धूमिल प्रतिरोध ही नहीं विद्रोह की कटार रचते हैं। इस संदर्भ में आलोचक राहुल का कहना सटीक है- "धूमिल की कविता में 'भाषा' पेशेवर नहीं, उत्तेजित भीड़ का कवच धारण करने के लिए.... खूनी कटार है।"[17]

वस्तुतः तद्‌युगीन यथार्थवादी परिवेश में शब्दों की वास्तविक शक्ति को पहचानने में धूमिल ने अद्‌भुत दृष्टि का परिचय दिया है। अपने पहले ही काव्य-संग्रह में भाषा की ऐसी धार लेकर उपस्थित होते हैं कि यकीन ही नहीं होता कि यह उनका पहला काव्य-संग्रह है। उन्होंने काव्य-भाषा के स्तर आभिजात्यपन को तोड़ा है। वे पारंपरिक हिंदी कविता के लिए अछूत माने जाने वाले शब्दों का विशिष्ट प्रयोग बड़े दुस्साहस के साथ किया है। उनके शब्द-प्रयोग की प्रवृत्ति से स्पष्ट होता है कि वे कितने गहरे आक्रोश में हैं। उनका यही आक्रोश काव्य-भाषा में प्रतिरोध की कटार रचता है। वे काव्य की आभिजात्य भंगिमा के प्रतिरोध में खड़े होकर नए तेवर के शब्द-विधान से परिवर्तन का बिगुल बजाते हैं। इस संदर्भ में काशीनाथ सिंह लिखते हैं कि "जिन दिनों कवितावादियों ने अपनी दब्बू, विनीत और मध्यवर्गीय कुंठाओं वाली कविता की वकालत में कहना शुरू किया था कि शब्दों के अर्थ खो गए हैं, वे गलत जगह रख दिए गए हैं-संदर्भच्युत हो गए हैं। धूमिल ने अपनी कविता में शब्दों को सही संदर्भों में रखना शुरू किया। सही जगह पर और लोगों ने देखा कि सही संदर्भ पाकर वे शब्द 'डाइनामाइट' की तरह हुए जा रहे हैं। उनमें विस्फोटक क्षमता आ गई है।"[18] धूमिल को ऐसे ही डाइनामाइट की जरूरत थी। क्योंकि उनकी कविताएँ आदमियत की तमीज सीखाने के लिए जन्म ले रही थीं। उनका कवि जर्जर आदमियत से पीड़ित था। अतः उसका मन अशांत था। जाहिर है अशांत मन कठोर तथा चुभने वाले शब्दों को अपने करीब पाता है। धूमिल ने अपने पास पड़े कठोर और चुभने वाले शब्दों को सही संदर्भ देकर और अधिक धारदार बनाया तथा ऐसे आदमी को निशाना बनाया -

"जो आदमी के भेस में
शातिर दरिंदा है
जो हाथों और पैरों से पंगु हो चुका है
मगर नाखून में जिंदा है
जिसने विरोध का अक्षर-अक्षर
अपने पक्ष में तोड़ लिया है।"[19]

धूमिल का शब्द-विधान भदेस शब्दों से ऊर्जा ग्रहण करने में सिद्धहस्त है। उनकी काव्य-भाषा अपने समकालीनों से इतर एक अलग राह (खतरनाक राह) पर खड़ी दिखाई देती है। वह नारी के गुह्य अंगों का इस्तेमाल भी इस तरह करती है कि यथार्थ का असली चेहरा तिलमिलाकर बाहर आ जाता है और नंगा होकर बगलें झांकने लगता है। अतः कहा जा सकता है कि धूमिल की काव्य-भाषा केवल प्रतिरोध की शक्ति से लैस नहीं है, वह सार्थक प्रतिरोध का हथियार है। ऐसा हथियार, जो झूठे आभिजात्य को एक झटका में तोड़ देता है।

संदर्भ :

1. *काव्यभाषा और नागार्जुन की कविता*, कमलेश वर्मा, पेरियार प्रकाशन, पटना, 2014 : 91.
2. *रघुवीर सहाय रचनावली*, भाग-1, सुरेश शर्मा (सं.), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013 : 42-43.
3. *रघुवीर सहाय रचनावली*, भाग-1 : 83-84.
4. *समकालीन काव्य-यात्रा*, डॉ. नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004 : 88.
5. पूर्वोद्धृत, *समकालीन काव्य-यात्रा*, डॉ. नंदकिशोर नवल : 92.
6. वही।
7. *रघुवीर सहाय रचनावली*, भाग-1 : 64.
8. *वही* : 79.
9. *वही* : 92.

10. समकालीन काव्य-यात्रा, डॉ. नंदकिशोर नवल : 94.
11. वही : 107.
12. वही :. 109.
13. वही : 276.
14. वही : 268-269.
15. नवजागरण : देशी स्वच्छंदतावाद और नयी काव्यधारा, कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018 : 205.
16. संसद से सड़क तक, धूमिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1972 : 8.
17. विपक्ष का कवि-धूमिल, राहुल, 157.
18. आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून, 1975, पृ. 18
19. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 86.

❑❑❑

SHODH SAMVID

ISSN 2393-980X

शोध संविद

Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.

An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal

https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ सुरेश चंद्र

विभागाध्यक्ष एवं डीन

दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया।

आलोचना

समकालीन भारत की चुनौतियाँ और नुक्कड़ नाटक

लम्बे राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के बाद 15 अगस्त, 1947 ई. को भारत स्वतन्त्र हुआ और 26 जनवरी,1950 ई. को भारत को गणराज्य बनाने वाला भारत का संविधान लागू हुआ। संविधान की प्रस्तावना के अनुसार भारत को समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए अधिनियमित और आत्मार्पित किया गया है। संविधान की प्रस्तावना में नागरिकों के मौलिक अधिकारों के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। संविधान में उल्लिखित नीति निर्देशक तत्व भारतीय नागरिकों के जीवन को सम्पन्न और सुखद बनाने में पूर्णतः सक्षम हैं। परन्तु ऐसा हो नहीं पा रहा है। संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भारत को जिस रूप में निर्विवाद अटूट बन्धुता वाला राष्ट्र बनाने की व्यवस्था दी थी, लोगों ने उसे व्याहारिक नहीं बनने दिया है। स्वतंत्रता पूर्व देखे गए सपने संविधान लागू होने के बाद निरन्तर टूटटे-बिरखते गए हैं। सत्ताधारी वर्ग ने विकास का जो पूँजीवादी मार्ग चुना, आज उसके लोककल्याण विरोधी परिणाम हमारे सामने विन्यस्त हैं।

भारत में जब बड़ी संख्या में लोग गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं, गाँव-के-गाँव अशिक्षा, शोषण और सांस्कृतिक पिछड़ेपन के अंधकार में डूब रहे हैं, वर्ण और जाति विषयक पूर्वग्रह लोगों के अपमान, स्त्रियों के बलात्कार, नियुक्तियों में एन.एफ.एस और धार्मिक स्थलों में लोगों का प्रवेश न करने देने के कारण बन रहे हैं, धर्मों को आधार बना कर लोग खुलेआम साम्प्रदायिकता बरत रहे हैं, अलगाववादी भारत राष्ट्र की अखण्डता के लिए नित नया खतरा खड़ा करते हैं, उग्रवादी अशान्ति फैला रहे हैं, नक्सलवादियों और सैनिकों के मध्य आए दिन मुठभेड़ हो रही हैं, उग्रवादी अशान्ति का कारण बने हुए हैं, चुनावों में हिंसा हो रही है, लोग आन्दोलन करते हुए अपने जनप्रतिनिधि को पीटने के क्रम में अर्द्धनग्न कर रहे हैं, जनकल्याण को झुठलाते हुए पूँजीपतियों के हित साधने की कबायतें जोरों पर हैं, बेरोजगारी की समस्या बढ़ रही है, सरकारी उपक्रमों का निजीकरण हो रहा हैऔर भ्रष्टाचार का राजनीतिकरण आम बात हो चुकी है तब भारत राष्ट्र की चुनौतियों की भयावहता अपने आप स्पष्ट हो जाती है। भारत राष्ट्र के सामने चुनौतियों की भयावहता का इतिहास पिछले 70 वर्षों में निर्मित हुआ है, जो भारत राष्ट्र के आमजनों के लिए क्रूर विडम्बना है।

भारत के संविधान के लागू होने के बाद सात दशक से अधिक के समय में भारत राष्ट्र के अन्दर बनी इस अनपेक्षित विडम्बनापूर्ण परिस्थिति ने साहित्यकारों एवं संस्कृतिकर्मियों को प्रेरित किया कि वे ऐसे माध्यमों को अपनायें जो उन्हें शोषित-पीड़ित-अशिक्षित आम जनता से निर्बाध रूप में जोड़ सकें। इन माध्यमों के द्वारा वे देश के हालातों की तस्वीर ही प्रस्तुत न करें, बल्कि यह भी बताएँ कि वे कौन-सी शक्तियाँ हैं जो इन हालातों को पैदा कर रही हैं और जो जनता को संगठित संघर्ष करने से रोकती हैं। नुक्कड़ नाटक शोषक शासक, पूँजीवादी वर्ग और सामन्ती समाज की इस साजिश का कारगर जवाब है। नुक्कड़ नाटक संसाधनों से वंचित और सताए जाते रहे श्रमशील आमजनों के बीच बहुआयामी शोषणमूलक अपसंस्कृति के विनाश हेतु प्रतिरोध की सुसंस्कृति की कलात्मक प्रस्तुति का नाम है।

शहरों और कस्बों में विभिन्न भारतीय भाषाओं में नुक्कड़ नाटक खेले जाते रहे हैं। नुक्कड़ नाटक समसामयिक जनोन्मुखी आन्दोलन के कार्यक्रमों और मुद्दों पर कलात्मक और प्रबल रूप से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने और दर्शकों को इन आन्दोलनों में शामिल होने के लिए प्रेरित तथा इन मुद्दों के प्रति सचेत करने के अचूक साधन हैं। नुक्कड़ नाटकों में आमजनों की बदहाली और उसके लिए उत्तरदायी मूल्यविरोधी ताकतों के विरुद्ध राष्ट्रोन्मुखी मूल्यबद्ध जीवन व्यवस्था का बेहद सार्थक चित्रण हुआ है। इन नाटकों में जनता के शोषण को बढ़ावा देने वाली शक्तियों के प्रति क्रान्ति का स्वर स्पष्ट सुनायी देता है।

इन नाटकों के लेखक समाज में फैल चुकी अलोकतान्त्रिक, सामन्ती, पूँजीवादी, फूहड .फिल्मी संस्कृति का मानवोचित स्वस्थ विकल्प देने का प्रयास करते हैं।

भारत के कई लब्ध प्रतिष्ठित रचनाकारों- शिवराम, सफदर हाशमी, असगर वजाहत, रमेश उपाध्याय, माता प्रसाद, राजेश कुमार, गुरुशरण सिंह (पंजाबी) आदि ने इस दिशा में अविस्मरणीय कार्य किया है। इतना ही नहीं, नुक्कड़ नाटकों की रचना के सामूहिक प्रयास भी हुए हैं। सन् 1973 ई. में स्थापित हुए "जन नाट्यमंच, दिल्ली" ने बहुत-से नुक्कड़ नाटक सामूहिक प्रयासों से लिखे हैं। नुक्कड़ नाटकों के मंचन "जन नाट्यमंच" ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। इस मंच ने अपने अनेक उत्तम नाटकों के हजारों शो किए हैं। इस मंच ने अपने नाटकों के माध्यम से जनता के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठायी है।

शिवराम हिन्दी नुक्कड़ नाटकों की रचना में अग्रगण्य हैं। उन्होंने बेहद चर्चित और बहुत बार मंचित "जनता पागल हो गयी है" शीर्षक नुक्कड़ नाटक की रचना की। "जनता पागल हो गयी है" नुक्कड़ नाटक सन् 1974 ई. में लघु पत्रिका "उत्तरार्द्ध" में प्रकाशित हुआ। "जनता पागल हो गयी है" नाम से शिवराम के 8 नुक्कड़ नाटकों का संग्रह संभव प्रकाशन, कैथल, हरियाणा से सन् 2016 ई. में प्रकाशित हुआ है।

"जनता पागल हो गयी है" नुक्कड़ नाटक में शिवराम ने सरकार, पुलिस और पूँजीपति के भ्रष्टाचार आधारित जनघातक गठजोड़ को अनावृत्त करते हुए जनता के सशक्त प्रतिरोध को शब्दबद्ध किया है। यह नुक्कड़ नाटक बताता है कि -

- *नेता किस प्रकार जनता को केवल वोटबैंक के रूप में प्रयोग करते हैं।*
- *नेतागीरी किस प्रकार मात्र वायदों और झूठे आश्वासनों का पर्याय बन गयी है।*
- *नेता सरकार में रहकर सरकारी मशीनरी का किस तरह दुरुपयोग करते हैं।*
- *पूँजीपति किस प्रकार चुनाव फण्ड देकर नेताओं को और सुविधा शुल्क देकर पुलिस को खरीदते हैं।*
- *पूँजीपति किस प्रकार श्रमिकों का शोषण करते हैं और पुलिस तथा नेता श्रमिकों के शोषण में उनकी सहायता करते हैं।*
- *जब जनता अपने अधिकारों की माँग करती है तो किस प्रकार शासन, प्रशासन और पूँजीपति उसे पागल घोषित करके उसका दमन करते हैं।*
- *शासन, प्रशासन और पूँजीपति किस प्रकार लोकतन्त्र की हत्या कर रहे हैं।*

चुनाव निकट आने पर सरकार में भागीदार नेता जनता से मिलने का कार्यक्रम बनाता है। वह जनता से मिलने जनता के बीच जाता है। पुलिस का अधिकारी

जनता की सेवा के लिए नियुक्त पुलिस के सिपाही को उस नेता की सवारी बनाता है। व्यंग्यात्मक शैली में भारतीय प्रशासन की दुर्दशा को नाटक में संयोजित सरकार और पुलिस अधिकारी के संवाद में महसूस किया जा सकता है –

"सरकार : पुलिस !
हम सेवक हैं जनता के
जायेंगे खुद उसके हुजूर चल के
लाओ कोई माकूल सवारी
करो सुरक्षा की तैयारी
पुलिस प्यारी....हमारी।
(पुलिस अधिकारी एक सिपाही को कान पकड़ कर लाता है।)
पुलिस अधिकारी : (सिपाही से) सवारी बन।
(सिपाही हाथ-पैरों के बल घोड़ा बन जाता है।)
लीजिये सरकार, सवारी है तैयार। चलिए मेहरबान, जनता के कद्रदान।
(घोड़ा सिपाही हिनहिनाता है और फिर पीठ पर सरकार को लादे चल देता है।)"[1]

जनता के शोषण के लिए पूँजीपति शासन-प्रशासन के साथ अध्यात्म के नाम पर बरती जा रही अवैज्ञानिक मान्यताओं का भी सहारा लेता है। परेशान भूखी जनता को रोटी उपलब्ध कराने का आश्वासन देकर पूँजीपति उसे कारखाने में काम पर लगा देता है। काम करने के क्रम में थक जाने पर जब जनता कराहती है तब पूँजीपति उसे समझाता है –

" पीड़ा सहने का अभ्यास करो। इसी में सद्गति है। सारे धर्मों का यही सार है। जनता सहनशील बनो। संतोष करो। परिश्रमी बनो। भगवान से डरो। भाग्य पर भरोसा रखो। तुम्हारे इस जन्म के दु:ख-दर्द पूर्व जन्मों का फल है। इस जन्म में अच्छे कर्म करो, अपने कर्तव्य का पालन करो। अगले जन्म में इसके सुफल तुम्हें प्राप्त होंगे। धर्मप्रायण बनो जनता। इसी में कल्याण है। यह जो तुम दु:खी हो, दरिद्र हो तो पूर्वजन्म के पापों के कारण। मैं जो सुखी और समृद्ध हूँ तो पूर्वजन्म के पुण्यों के कारण। ईश्वर का विधान ही ऐसा है। फिर जो भी हो रहा है, जो भी हुआ है उसी की मर्जी से हुआ। आगे जो भी होगा उसी की मर्जी से होगा। ईश्वर ही सत्य है, बाकी सब मिथ्या है। यह सब स्वप्न की तरह है। अत: निष्काम कर्म ही मुक्ति का मार्ग है। भगवान श्रीकृष्ण ने 'गीता' में कहा है – कर्मण्येवाधि कारस्ते मा फलेषु कदाचन:"[2]

जनता के श्रम से पूँजीपति खूब लाभ कमाता है। भूख लगने पर जनता पूँजीपति से रोटी माँगती है। पूँजीपति निष्ठुरता बरतते हुए जनता को केवल दो रोटी देता है। जनता की दो रोटी से भूख शान्त नहीं होती है। वह और रोटी माँगती है। पूँजीपति उसे रोटी देने के बजाय उससे और काम करने के लिए कहता है। भूखी जनता जब थकान होने की बात करती है तब पूँजीपति उसे निकम्मी करार दे देता है। जनता रोटी प्राप्त किए बिना काम न करने की बात करती है। जनता अब प्रतिरोध पर उतर आती है और "इंकलाब जिन्दाबाद" के नारे के साथ हड़ताल कर देती है। श्रमिक जनता की हड़ताल की स्थिति में पूँजीपति राष्ट्र और उसकी व्यवस्था को खतरे में बताता है। पैसे के बल पर पूँजीपति पुलिस के द्वारा जनता के आन्दोलन को अपने हित में दबाना चाहता है। जब जनता का आन्दोलन नहीं रुकता तब सरकार, पूँजीपति और पुलिस द्वारा एक स्वर में जनता को पागल घोषित कर दिया जाता है। जनता सरकार, पूँजीपति और पुलिस के जनविरोधी सामूहिक षड्यंत्र की सच्चाई जान चुकी है। अपने अधिकार के लिए जनता हुँकार भर के प्रतिरोध करती है। जनता के विद्रोह की सफलता के प्रति पूर्णत: आश्वस्त जनता सरकार, पूँजीपति और पुलिस को पागल बताती है।

असगर वजाहत की नाट्य-कला सहज ही पाठकों-दर्शकों का ध्यान आकर्षित करती है। समसामयिक समाज के यथार्थ की सूक्ष्म पकड़ आपके नुक्कड़ नाटकों में मुखरित हुई है। असगर वजाहत के नाटकों में देश की कमर-तोड़ गम्भीर समस्याएँ उठायी गयी हैं। सामान्य जनता की पहुँच के बाहर गुमराही के नकाब में छिपे सामाजिक यथार्थ को असगर वजाहत ने जिस कलात्मक ढंग से बेनकाब किया है, वह ढंग अनूठा है।

असगर वजाहत उल्लेखनीय नुक्कड़ नाटक है – "नंगा प्रसाद"। इस नाटक में शासन और पूँजीपति द्वारा मिलकर किए जाने वाले मजदूरों के दमन को बेनकाब किया गया है। पूँजीपति चुनाव में चंदा इसलिए देता है कि चुनी जाने वाली सरकार मजदूरों के शोषण में उसकी सहायता करे। मजदूरों के शोषण में सरकार उसकी भरपूर सहायता करती है। सेठ के अग्रांकित

कथन से सरकार और पूँजीपति के गठबन्धन का रहस्य स्पष्ट हो जाता है –

"हम चुनाव में चन्दा इसलिए नहीं देते कि हमें न्याय और अन्याय की परिभाषा बताई जाए।..... हम सरकार चलाते हैं। हमसे किसी को यह पूछने का अधिकार नहीं कि न्याय और अन्याय क्या है।"[3]

सेठ जब मजदूरों द्वारा घेर लिया जाता है तब महारानी उसके बचाव के लिए सिपाही भेजती है।

असगर वजाहत का "सबसे सस्ता गोश्त" बहुत चर्चित नुक्कड़ नाटक है। इसमें वर्तमान भ्रष्ट राजनेताओं के चरित्र को उजागर किया गया है। साम्प्रदायिकता और धर्म के नाम पर जनता को आपस में लड़ाकर नेता जिस प्रकार अपने स्वार्थों की पूर्ति करते हैं, उसका कलात्मक चित्रण इस नाटक में मिलता है। नेता विभिन्न सम्प्रदायों अथवा धर्मों के होते हुए भी स्वार्थगत एकता के सूत्र में बँधे रहते हैं। हिन्दू और मुस्लिम नेता मिलकर गीत गाते हैं और अपनी सच्चाई स्पष्ट करते हैं –

"नेता हैं हमजाति के
हिन्दू हैं न मुस्लिम
अरे कामहमारा लूटके खाना
हिन्दू हैं न मुस्लिम।"[4]

ये नेता जनता को लूट कर अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु जो षड़यंत्र करते हैं, वे षड़यंत्र अधमता की इतनी जटिल प्रक्रिया से तय होते हैं कि भारत के धर्मभीरु आम नागरिक उसे समझ ही नहीं सकते। ये नेता हिन्दू और मुस्लिम समाज की धार्मिक मान्यताओं के साथ घृणित खेल खेलते हैं। वे मनुष्य का गोश्त पोटली में बाँधकर मन्दिर और मस्जिद में रखवा देते हैं। हिन्दू लोग बिना देखे और बिना किसी विचार-विमर्श के उस गोश्त को गाय का गोश्त मान लेते हैं और ठीक उसी प्रकार मुस्लिम लोग बिना देखे और बिना किसी विचार-विमर्श के उस गोश्त को सूअर का गोश्त मान लेते हैं। परिणामस्वरूप दोनों समाजों के मध्य साम्प्रदायिक भावना भड़क जाती है। असगर वजाहत ने प्रस्तुत नुक्कड़ नाटक के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है कि हमारे समय के नेताओं के लिए उनके राजनीतिक स्वार्थ मनुष्य के जीवन से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इन नेताओं के लिए मनुष्य का गोश्त सबसे सस्ता गोश्त है, जिसे इनके गुर्गे बहुत आसानी से उपलब्ध करा देते हैं।

यह ज्ञात होने पर कि मन्दिर और मस्जिद में रखा गया गोश्त आदमी का है, तब पंडित और मुल्ला घोषणा कर देते हैं कि मन्दिर और मस्जिद अपवित्र नहीं हुए। वहाँ उपस्थित लोग इसे अच्छी बात बताते हुए धर्म का बच जाना स्वीकार करते हैं। यथा –

"हिन्दू : पंटित जी ! आदमी के माँसे तो मन्दिर अपवित्र नहीं हुआ न ?

पंडित : नहीं ! आदमी के माँस से मन्दिर अपवित्र नहीं होता।

मुसलमान : मुल्ला जी ! आदमी के गोश्त से तो मस्जिद नापाक नहीं हुई ?

मुल्ला : नहीं, बिल्कुल नहीं....अगर सुअर का गोश्त होता तो मस्जिद नापाक हो
जाती....

पंडित : अगर गाय का गोश्त होता तो मन्दिर अपवित्र हो जाता....

कुछ आवाजें : कितनी अच्छी बात है कि यह आदमी का गोश्त है।"[5]

जन नाट्यमंच शोषित-पीड़ित श्रमजीवी जनता के हितों के लिए प्रतिबद्ध उत्साही और कर्मठ रचनाकारों की एक ऐसी संस्था है जो मंचन तथा निर्देशन के साथ-साथ नाटकों का लेखन भी सामूहिक रूप से करती है। अपनी स्थापना से लेकर अब तक की अवधि में जन नाट्यमंच ने बहुत-से नुक्कड़ नाटक लिखकर देश के विभिन्न भागों में उनके सफल प्रदर्शन किए हैं, जिन्हें लाखों दर्शकों ने बेहद सराहा है। इस मंच के पारस्परिक सहयोग से लिखे गए "अपहरण भाईचारे का" शीर्षक नुक्कड़ नाटक में साम्प्रदायिकता को भड़काने वाली शक्ति को बेनकाब किया गया है। जिस भाईचारे अथवा एकता के बल पर हम आजाद हुए आज वही भाईचारा साम्प्रदायिक उग्रवादियों के द्वारा छिन्न-भिन्न हो गया है। नाटक में कहा गया है कि इस समस्या को सरकार समाप्त नहीं करती है। मदारी का अग्रांकित कथन द्रष्टव्य है –

"अपने भाईचारे की रक्षा आप नहीं करेंगे तो और कौन करेगा। किसके सहारे बैठे हैं आप लोग। किसकी आस लगाए हैं। क्या कहा, ये काम सरकार का है। अरे सरकार का तो न जाने क्या-क्या काम है। जानो माल की रक्षा करना सरकार का

काम है। करती है। मँहगाई रोकना सरकार का काम है। रोकती है। रोजगार देना, शिक्षा देना सरकार काम है। देती है। अरे इसी प्रकार सरकार के सहारे बैठे रहे तो देश के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।"[6]

नाटक के अन्त में भाईचारे की पुन: स्थापना के लिए भारत के नवयुवकों का आह्वान किया गया है। भाईचारा कहता है – "आओ भारत देश के वीरों आओ! मुझको आजाद करो, आओ मेरे बन्धन तोड़ो, अमन को फिर आबाद करो।"[7]

साम्प्रदायिकता की बेड़ियों में जकड़े भाईचारे की मुक्ति-कामना को इस नाटक में कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है।

जन नाट्य मंच कृत "पुलिस चरित्रम्" शीर्षक नाटक भारतीय न्याय व्यवस्था और पुलिस कर्मियों के दोहरे चरित्र पर प्रकाश डालता है। पुलिस जनता के सामने तो कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के वायदे करती है, लेकिन घूस के सामने अपने सब वायदों और कानूनों को ताक में रखकर जन-सामान्य के ऊपर हो रहे शोषण को और अधिक बढ़ाती है। न्यायाधीश न्याय की याचना करने वाले पीड़ितों को कानून से अनभिज्ञ बताकर उन्हें कोर्ट से ही भगा देते हैं। इस नाटक में रक्षक के भीतर बैठे भक्षक का कलात्मक उद्घाटन किया गया है।

जन-नाट्यमंच का "गाँव से शहर तक" शीर्षक नाटक गाँव और शहर में व्याप्त बेरोजगारी और आर्थिक शोषण की समस्या को आधार बनाकर लिखा गया है। गाँव में छोटे-छोटे किसानों की जमीन को महाजन हड़प लेते हैं और शहर में मिल मालिक मजदूरों को अधिक काम पर कम मजदूरी देकर उनका आर्थिक शोषण करते हैं। साधनहीन मनुष्य को जो परेशानी गाँव में है, वही शहर में है। अब स्थिति यह है कि गाँव के व्यक्ति का रोजगार के लिए शहर जाना कोई अर्थ नहीं रखता। काम के लिए दिल्ली आए हुए कलुआ से जब मजदूर बात करता है तो यह स्थिति स्पष्ट हो जाती है –

"कलुआ : भैया यहाँ कुछ काम नहीं मिल जाएगा?
मजदूर : अबे तेरा दिमाग खराब हो गया है क्या – दिल्ली में आकर काम ढूँढ़ रहा है। यह बैठी भीड़ नहीं देख रहा है। ये सब बेरोजगार हैं। तभी तो मजमा लगा रखा है। वैसे आये कहाँ से हो ?
कलुआ : भैया गाँव से आया हूँ। वहाँ तो कुछ बचा नहीं। सुना था शहर में काम-धन्धा अच्छा है।
मजदूर : कुछ दिन रह कर देख लो। खुद ही मालूम हो जाएगा।"[8]

इस नाटक में किसान-महाजन और मजदूर-मालिक के सम्बन्धों पर गहराई से विचार किया गया है। मजदूरों के साथ किये जाने वाले मालिकों के अमानवीय व्यवहार का परिचयमजदूर के इस कथन मेंमिलता है –

"तनख्वाह देता है 8 घंटे की और कामकराता है 10 घंटे। दस्तखत लेत है 300 रुपये पर और पकड़ाता है 200 रुपये।....भगवान किसी को मजदूर न बनाये।"[9]

"हल्ला बोल" जन नाट्य मंच का बेहद चर्चित नुक्कड़ नाटक है। सन् 1988 ई. में हुई सात दिन की औद्योगिक हड़ताल के दौरान इस नुक्कड़ नाटक के "चक्काजाम" शीर्षक से प्रदर्शन किए गए थे। 01 जनवरी, 1989 ई. को झंडापुर, साहिबाबाद, उत्तर प्रदेश में इस नाटक का प्रदर्शन करते समय असामाजिक तत्वों ने रास्ता को मुद्दा बनाकर कलाकारों पर हमला कर दिया था। उस हमले में नुक्कड़ नाटक अद्वितीय हस्ताक्षर सफदर हाशमी घायल हुए थे और राम बहादुर नामक एक मजदूर की घटना स्थल पर ही मौत हो गयी थी। 02 जनवरी, 1989 ई. को उपचार के दौरान सफदर हाशमी की भी मृत्यु हो गयी थी। जानकर आश्चर्य होता है कि सफदर हाशमी की मृत्यु के दो दिन बाद उनकी पत्नी मल्यश्री हाशमी ने उस घटना स्थल पर ही "हल्ला बोल" नुक्कड़ नाटक का मंचन करके अपनी जनप्रतिबद्धता और नुक्कड़ नाट्य कला के प्रति अपने समर्पण की पराकाष्ठा से दुनिया को अवगत कराया।

"हल्ला बोल" नुक्कड़ नाटक स्वतन्त्र भारत में विकसित हुई जनविरोधी पूँजीवादी सोच, नेतागीरी के नाम पर की जा रही दलाली और अन्याय की पोषक चमचागीरी को बेनकाब करते हुए आन्दोलन की सफलता हेतु श्रमिकों की एकता को मजबूत करने पर बल देता है।

यह नुक्कड़ नाटक "कला कला के लिए" सिद्धान्त के बरअक्श "कला जीवन के लिए" सिद्धान्त

को बरतने का उत्तम उदारण है। अपनी माँगों को लेकर आन्दोलनरत श्रमिक पात्र जब नाट्यकला को प्रतिरोध का माध्यम बनाते हुए "सीटू जिन्दाबाद!" के नारे लगाते हैं तब पुलिसकर्मी पात्र उन्हें रोकता है। पुलिसकर्मी और सूत्रधार में बहस होती है ख्र

"पुलिस : ओये, ओये, ये क्या हो रहा है? डिरामा कर डिरामा। ये नारे - वारे नहीं चलेंगे।

सूत्रधार : पर हमारे ड्रामें में तो ऐसा ही होता है।

पुलिस : तुमहरे ड्रामे में होता होगा। हमारे इलाके में नहीं होता।....एस.एच.ओ. साब का आडर है कि जो साला सीटू का नाम लेता दिखे, फौरन हवालात में डाल दो।

सूत्रधार : पर हमारे ड्रामे में तो नारे लगाने ही पड़ेंगे।

पुलिस : (चिल्लाता है।) न, मेरे इलाके में ये सब नहीं चलेगा।

सूत्रधार : फिर हम ड्रामा कैसे करें?"

पुलिस : अबे जैसे ड्रामा किया जाता है, और कैसे! कोई प्यार-मुहब्बत का, आशिक-महबूबा का खेल दिखाओ, कुछ नाच-गाना हो, हँसी-मजाक हो।"[10]

श्रमिक पात्र जोगी और अश्शो की प्रेमकथा का प्रदर्शन करते हैं। अश्शो जोगी से शादी करने की बात कहती है। जोगी कारखाने में मशीनमेन के रूप में कार्य करता है। वह कम वेतन के कारण अभी शादी करना नहीं चाहता है। अश्शो जिद करती है। अश्शो की जिद के फलस्वरूप जोगी अश्शो के घर जा पहुँचता है। जब यथास्थिति का पता चलता है तब अश्शो के पिता बहुत बहस के बाद अपना निर्णय देते हैं कि यदि जोगी रुपये 1050/= प्रतिमाह की नौकरी पाले तो वे अपनी बेटी अश्शो की शादी उसके साथ कर देंगे। नुक्कड़ नाटक में बाबा, अम्मा, अस्सो और जोगी के संवाद का अंश द्रष्टव्य है -

बाबा : तो बिटुआ, कोई ऐसी नौकरी पकड़ जिसमें 1050 मिलते हों। फिर अश्शो की शादी तुमसे खुशी-खुशी कर देंगे।

अश्शो : पर ऐसी नौकरी मिलेगी कहाँ?

जोगी : सब जगह 562 ही तो मिलते हैं।

अम्मा : तो बेटा , तू मालिक से कह-सुन कर अपनी तन्खा बढ़वाने की कोशिश तो कर।

जोगी : अजी हाँ, माता जी, सालों ने रो-रो कर दो साल में 73 रुपये बढ़ाये हैं, वो भी इत्ती लम्बी लड़ाई के बाद।

दोनों : तो बेटा हाथ पर हाथ धरके मत बैठो, अपनी लड़ाई को और तेज करो।

जोगी : वो तो तो आपके बताये बगैर भी कर रहे हैं। अब तो सारे के सारे मजदूर सीटू के मैंबर बनेंगे और उसका झंडा उठाकर और लम्बी लड़ाई लड़ेंगे।"[11]

नुक्कड़ नाटक में यह स्पष्ट हो जाता है कि नाट्य कला का प्रयोग श्रमिकों के विकास का मार्ग प्रशस्त करने के लिए ही किया जा रहा है, माध्यम बेशक प्रेमकथा है। जैसे ही पुलिसकर्मी पात्र को उक्त संवाद में श्रमिकों के प्रतिरोधी स्वर का बोध होता है, वह फिर भड़क जाता है। पुलिसकर्मी पात्र श्रमिक पात्रों को गाली देते हुए वहाँ से जाने को कहता है -

"फिर! फिर सालो, मैं कुछ कह नहीं तो तुम फैलते ही जा रहे हो। बहुत हो गया, उठाओ अपना ताम-तोबड़ा और चलते-फिरते नजर आओ।....मुझे क्या पता था कि तुम झंटों और नारों के बगैर भी मजदूरों को भड़का सकते हो। बस, अब मैं कुछ और नहीं सुनना चाहता। तुम खिसक लो यहाँ से।"[12]

जोगी निर्भय होकर घोषणा कर देता है कि -

"हवल तो क्या, चाहे दिल्ली की सारी
पुलिस मेरी छाती पर सवार हो जाए -
मेरी जबान से एक ही आवाज निकलेगी
- सी.आई.टी.यू. जिन्दाबाद, इन्कलाब
जिन्दाबाद!"[13]

नुक्कड़ नाटक में स्वार्थी विघटनकारी नेताओं और चमचा का श्रमिक विरोधी चरित्र चित्रित किया जाता है। कच्चे (ठेका पर रखे गए) और पक्के (स्थायी) श्रमिकों के मध्य मतभेद उभर कर सामने आता है। रसूल गुलाम और राघवन कट्टे श्रमिक हैं। जोगी पक्का श्रमिक है। सीटू के प्रति अपनी प्रतिबद्धता स्पष्ट करते हुए जोगी सब श्रमिकों को एक साथ मिलकर आन्दोलन करने की पहल करता है। पारबती नामक स्त्री श्रमिक रसूल गुलाम और राघवन से सीटू में सम्मिलित होने का आग्रह करती है। परिणामस्वरूप सब श्रमिक एक हो जाते हैं। इसके बाद कच्चे और पक्के श्रमिक मिलकर

कोरसगान गाते हैं –

"सब मेहनत करने वालों की,
सब भूखे रहने वालों की,
सब ठेके के मजदूरों की, महकूमों की, मजबूरों की,
सीटू की जो माँगें हैं, सब मजदूरों की माँगें हैं।
हर मेहनतकश की माँगें हैं, और हर बेबश की माँगें हैं।
क्लोजर, छँटनी, तालाबन्दी पर हो सरकारी पाबंदी।
दो रुपये आँकड़ा भत्ता हो, सिर पर छत, तन पर लत्ता हो।
मजदूर विरोधी कानूनों को, वापस ले सरकार अभी,
क्या एस्मा और क्या एन.एस.ए., सब वापस ले सरकार अभी।
जिस मिल में हों वर्कर महिला, बच्चे रखने की हो सुविधा।
ठेकेदारी का अन्त करो, इस बीमारी का अन्त करो।
और बन्द करो ये पुलिस दमन, ये लाठी-गोली का शासन।
लड़कर लेंगे माँगें सारी, ये देखेगी दुनिया सारी।
मजबूत हमारा एका है, झंडा ऊँचा लहराता है।
मजदूर विरोधी हाकिम तक, ये संदेश पहुँचाता है।"[14]

रमेश उपाध्याय कृत "हरिजन दहन" शीर्षक नाटक हरिजनों पर हो रहे जुल्मों की कहानी पर आधारित है। सरकार हरिजनों की स्थिति सुधारने के वायदे करती है, परन्तु उन्हें पूरा नहीं करती। उनसे वोट लेने के लिए राजनेता उनके प्रति हमदर्दी का नाटक करते हैं और सत्ता में पहुँचने पर उनसे बात करना भी पसन्द नहीं करते। नाटककार ने इन्हीं बातों पर प्रकाश डाला है। रमचन्ना को जो तीन बीघा बंजर जमीन सरकार से मिली उसे ठाकुर छीन लेता है और उसे जिन्दा ही जला दिया जाता है। रमचन्ना के साथ किया गया यह अमानवीय कुकृत्य सम्पूर्ण दलित समाज की करुण त्रासदी है। दलितों की इस त्रासदी के लिए उनकी भाग्यवादिता और संगठन-शक्ति का अभाव ही उत्तरदायी है। जंगीराम राजपुर के दलितों को यही बताता है –

"सरकार वायदे करती है कि हमारी हालत सुधारने के लिए हमें जमीन देगी। लेकिन ये वायदे कब पूरे हुए। और वोट लेने के लिए पिछली बार जो ऊसर-बंजर जमीन हमको दी गयी वो फिर छीन ली गयी। ऐसा क्यों होता है हमारे साथ। इसलिए कि हमसंगठित नहीं हैं। इसलिए कि हमभाग्य और भगवान के नामपर सब कुछ सह जाते हैं।"[15]

राजेश कुमार और नवल किशोर के "रँगा सियार" शीर्षक नाटक में तात्कालिक राजनीति के जनघाती स्वरूप का वर्णन किया गया है। इस नाटक में बताया गया है कि चोर-लुटेरे भी खादी पहनकर अपना राजनीतिकरण करने में सफल हो जाते हैं। जब जनता खादी पहने हुए चोर को अपना नेता समझ बैठती है तब वह अपने पाजामा-कुरता तथा टोपी पर हाथ फेरता हुए कहता है –

"वाह रे खादी का कमाल। हुआ बेमिशाल, रंग ही बदल गया। अब मुझे ढंग भी बदलना होगा।"[16]

बाद में वह ऐसा बदलता है कि देश की कमर ही तोड़ डालता है। उसके मंत्रिमंडल के वित्तमंत्री ने बड़े-बड़े उद्योगपतियों को रियायतें दीं, रक्षामंत्री ने हथियार बनाने वाली कंपनियों से रियायत संबंधी बातचीत की, गृहमंत्री ने पुलिस बलों की संख्या में वृद्धि कर दी और लोगों में सांप्रदायिकता की भावनाओं का विष घोल दिया तथा दूरदर्शन, रेडियो और समाचार पत्रों में राजनीतिक विरोधियों के वक्तव्यों का आना बन्द करा दिया। संस्कृति मंत्री ने हत्या, बलात्कार, चुम्बन, नग्नता वाली फिल्मों को वित्तीय मदद देकर सेंसर के अंकुश में ढील कर दी।

फिल्मों के द्वारा प्रचारित-प्रसारित अपसंस्कृति की समस्या पर केन्द्रित राजेश कुमार का "कल्चर उर्फ चढ़ गया ऊपर रे" शीर्षक नुक्कड़ नाटक मानवोचित संस्कृति के प्रति चेतस लोगों का ध्यान आकर्षित करता है।

नाटक में वर्णित है कि फिल्म में अश्लील गाने को फिल्माए जाने के कारण लोगों में आक्रोश है। फिल्मों में अश्लील गानों-दृश्यों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिये जाँच कमेटी की बैठक आयोजित होती है। फिल्मों में अश्लील गानों-दृश्यों पर प्रतिबन्ध लगवाने के लिए लोग धरना देते हैं। बैठक में संस्कति मंत्री, जज, प्रोड्यूसर और गीतकार भाग लेते हैं। संस्कृति मंत्री फिल्म को संस्कृति बताते हुए देश की संस्कृति को बचाने पर बल देता है। संस्कृति मन्त्री गुस्सा में प्रोड्यूसर से कहता है –

"धार्मिक फिल्म बनाते न, जय संतोषी माँ,

दयारे मदीना की तरह....कोई देशभक्ति वाली फिल्म बनाते न....इ चोली, अंडर वियर और खटिया-पटिया वाले गानों से आप जनता को कौन-सा धार्मिक, कौन-सा राष्ट्रीय संदेश देना चाह रहे हैं ? बताइये इ लहँगा-चुन्नी और गुटर-गूँ से भला कौल-सी संस्कृति फैलाना चाहते हैं....तनिक समझाइये. ...पता नहीं कहाँ-कहाँ से गन्दगी बटोर लाते हैं ?....शर्म की बात है कि दुनिया को दिशा दिखाने वाल कवि आज स्वयं वासना की अन्धी गलियों में भटक रहा है।"[17]

इसके बाद चौंका देने वाली विडम्बना घटित होती है। अश्लील गानों-दृश्यों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए जाँच कमेटी के सदस्य फिल्म को देखते हैं। संस्कृति मन्त्री अश्लील दृश्य बताए जा रहे दृश्य को आह्लादित होकर बार-बार देखता है। प्रोड्यूसर नाचता है और नाचने के क्रम में ही नोटों से भरा सूटकेस संस्कृति मंत्री को दे देता है। रिश्वत के परिणामस्वरूप फिल्मों में अश्लील गानों-दृश्यों पर प्रतिबंध लगाने के लिए आयोजित हुई जाँच कमेटी की बैठक में प्रदर्शनकारियों की भावनाओं के विरुद्ध और फिल्म प्रोड्यूसर के फक्ष में निर्णय होता है –

"मन्त्री : वो गाने वो फिल्में जो इनकी (प्रदर्शनकारी सामाजिक कार्यकर्ताओं की) नजरों में द्विअर्थी हैं, अश्लील हैं....

सब : पास....

(सभी हँसते हैं।)

मन्त्री : और वो गाने वो फिल्में जो राजनीतिक, सामाजिक जागरूकता के/की पक्षधर हैं. ...

सब : फेल....

(सब जोरों से ठहाका लगाते हैं।)"[18]

जज जब अपने घर में बच्चों को टेलिविजन पर अश्लील दृश्यों-गानों को देखते-सुनते पाता है तो उन्हें डाँटते हुए कहता है –

"जब देखो टी.वी. देखते रहते हैं, पढ़ना लिखना कुछ नहीं। यही प्रोग्राम देखते हो दिनभर....अश्लील, फूहड़, इरोटिक...."[19]

एक दिन शरारती लड़के संस्कृति मंत्री की लड़की को छेड़ते हैं। तब संस्कृति मंत्री आगबबूला हो जाता है। वह गाली बकते हुए लड़कों से कहता है –

"स्सालो , गटर के कीड़ों, हरामियों, ये गाने हमने इसलिए पास नहीं किए थे कि हमारी ही लौंडिया को देखकर गला साफ करो। कमीनों मेरी लौंडिया को छेड़ते हो। कल्चर मिनिश्टर की लौंडिया को छेड़ते हो।"[20]

स्पष्ट है कि "कल्चर उर्फ चढ़ गया ऊपर रे" नुक्कड़ नाटक संस्कृति के सन्दर्भ में फिल्म प्रोड्यूसर, न्याय के नाम पर अन्याय में संलग्न न्यायाधीश और सरकार में बैठे नेता की पोल खोल देता है। यह नुक्कड़ नाटक भली प्रकार समझा देता है कि संस्कृति में जब गिरावट आती है तो उसके दुष्परिणाम से कोई बच नहीं सकता है।

भारत में वर्ण व्यवस्था के तहत तथाकथित उच्चवर्णी लोग तथाकथित निम्नवर्णी लोगों (दलितों) को कहते तो हिन्दू हैं, लेकिन उन्हें नीचा मानकर उनके साथ असमान व्यवहार करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दलित समाज तथाकथित उच्चवर्णी लोगों की उच्च-निम्न विषयक वर्णवादी मान्यता के कारण अनुसूचित जाति समूह के लोग, जिन्हें शूद्र कहा-लिखा गया और अब जो दलित के रूप में जाने जाते हैं, सामाजिक अन्याय के शिकार हैं। दलितों से मन्दिर-निर्माण में न केवल श्रमगत सेवाएँ ली जाती हैं, बल्कि चन्दा भी लिया जाता है; परन्तु उन्हें मन्दिरों में प्रवेश करने से रोका जाता है। प्रख्यात दलित साहित्यकार माता प्रसाद ने इस समस्या पर केन्द्रित "धर्मान्तरण" शीर्षक नुक्कड़ नाटक की रचना की। इस नुक्कड़ नाटक में दलितों के धर्मान्तरण (हिन्दू से इस्लाम और ईसाई) को इस समस्या का समाधान बताया गया है। नुक्कड़ नाटक के प्रारम्भ में एक व्यक्ति दोहों में हिन्दू धर्म और तथाकथित अथवा स्वघोषित उच्चवर्णी हिन्दुओं की सच्चाई से उपस्थित जनों को अवगत कराता है–

"सुनो भाइयो सुनो! तुम, धर्मों की दास्तान।
एक धर्म है छोड़ता, क्योंकर, है इंसान?
जब तक हिन्दू हैं दलित, हिन्दू मानें छूत।
धर्म बदलते जब वही, छुटे छूत का भूत।
नुक्कड़ नाटक देखिये, इसका क्या परिणाम?
बुरा न मानो सज्जनो, देखो अब दिल थाम।"[21]

दलित जन मन्दिर में जगन्नाथ के दर्शन हेतु जाते हैं। उनमें से एक व्यक्ति तर्कपूर्ण प्रश्न करता है–

> *"हमको अगर हिन्दू माना जाता है, भगवान के दर्शन से क्यों रोका जाता है? आज ही फैसला हो जायेगा कि हम हिन्दू हैं कि नहीं।"*[22]

भगवान जगन्नाथ की जय का उद्घोष करते हुए दलित जन जैसे ही मन्दिर के द्वार पर पहुँचते हैं, एक पण्डा अन्य पण्डे-पुजारियों को आवाज देता है कि –

> *" तरुण उपाध्याय और सभी पण्डे-पुजारियो सुनो! ये अस्पृश्य मन्दिर में दर्शन करके भगवान जगन्नाथ को अपवित्र करना चाहते हैं। सब लोग दौड़ो, इन्हें रोको!"*[23]

दलित जनों और मन्दिर के पण्डे–पुजारियों के बीच मारपीट होती है। हिन्दू धर्म के तथाकथित उच्चवर्णी ठेकेदारों के अमानवीय व्यवहार के प्रतिकार स्वरूप दलित जन हिन्दू धर्म त्याग कर इस्लाम और ईसाई धर्म अपना लेते हैं।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अपने जीवन में शिक्षा को सबसे अधिक महत्त्व दिया। शिक्षा दलितों की तरक्की का मार्ग प्रशस्त कर राष्ट्र के सम्यक् उन्नयन के द्वार खोल सकती है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर महान राष्ट्रवादी थे और वे जन–जन को शिक्षित करके अपने राष्ट्र को सम्पन्न–सशक्त बनाना चाहते थे। उन्होंने दलित जनों का आह्वान किया कि "शिक्षित बनो!" दलित जन शिक्षा प्राप्त करने लगे तो तथाकथित उच्चवर्णी लोगों को इसलिए बुरा लगा कि शिक्षित होकर दलित जन उनके यहाँ बेगार–मजदूरी नहीं करेंगे। तथाकथित उच्चवर्णी लोगों ने दलित जनों को शिक्षा से दूर रखने के जो प्रयास प्राचीन काल से शुरू किये थे, वे उन प्रयासों को परिवर्तित रूप में अब भी जारी रखना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि दलित अशिक्षित रहें और अभाव की जिन्दगी जीते हुए उनकी गुलामी करते रहें। राष्ट्रहित में दलित समाज का शिक्षित होना जरूरी है। माता प्रसाद ने तथाकथित उच्चवर्णी लोगों की दलित समाज की शैक्षिक प्रगति से सम्बद्ध राष्ट्रविरोध ी सोच का पर्दाफाश कर दलित समाज को शिक्षा के प्रति जागरूक करने के उद्देश्य से "गुलमिया अब ना करिहों हो" शीर्षक नुक्कड़ नाटक लिखा है।

एक तथाकथित उच्चवर्णी व्यक्ति सुरेन्द्र प्रताप सिंह कंधा पर डंडा रखे आता है और रामबली नामक तथाकथित निम्नवर्णी (दलित) व्यक्ति से अपमानजनक भाषा में कहता है –

> *"सुन रे रमबलिया, परसों हमारे धान की कटाई तुम लोग कर दो। देखना, अपने अमृत ललवा को भी साथ लाना न भूलना।"*[24]

रामबली अपने समाज के लोगों की बैठक आयोजित करते हैं। वे उपस्थित जनों को तथाकथित उच्चवर्णी व्यक्ति द्वारा धमकी के लहजे में दिए गए आदेश से अवगत कराते हुए अपने पुत्र अमृत लाल को आगे पढ़ाने की बात करते हैं। द्रष्टव्य है रामबली का कथन –

> *" गाँव के सभी दलित जाति के भाइयो मैंने आपको आज यहाँ इकट्ठा किया है। सरकार ने जमीदारी खतम कर दी है, लेकिन अभी जमीदार की ऐंठन नहीं गयी है। आज सुरेन्द्र प्रताप सिंह आये थे, उन्होंने कहा कि घर के सभी लोग उनके धान की परसों कटाई करों। यह भी कहा कि मेरा लड़का अमृत लाल, जो हाई स्कूल में पढ़ रहा है, भी कटाई करने आवे। वे कह रहे थे कि अब उसे पढ़ाने की जरूरत नहीं। पढ़कर क्या करेगा? उसे तो हमारे यहाँ ही हलवाही करनी है। अब बात हद से बढ़ गयी। अभी तक वे लोग हमें अपमानित करते रहे। कम मजदूरी पर काम कराते रहे। आजादी के बाद अब यह गुलामी हमें मंजूर नहीं। हम अमृत को आगे जरूर पढ़ाना चाहते हैं। हमें क्या करना चाहिये इस पर आपकी राय चाहता हूँ।"*[25]

बैठक में तथाकथित उच्चवर्णी लोगों की दलित–प्रगति विरोधी सामाजिक अन्यायमूलक सोच और कार्यपद्धति का विरोध करने का निर्णय लिया। तथाकथित उच्चवर्णी लोगों को दलितों ने अपनी एकता की शक्ति का बोध कराया। परिणामस्वरूप तथाकथित उच्चवर्णी लोगों को दलितों के साथ समझौता करने को विवश होना पड़ा। सुरेन्द्र प्रताप सिंह मन्नू पंडित से कहता है –

> *"हम तो चार घर ठकुर हैं। आप लोग*

> *साथ नहीं देंगे तो मैं कैसे उनसे मुकाबला करूँगा। ठीक है, मन्नू पंडित आप उन लोगों से बात करें। जमाना बदल गया है। हम समझौते को तैयार हैं।"*[26]

गुरुशरण सिंह मूलतः पंजाबी नाटककार हैं। आपने अनेक उत्कृष्ट नुक्कड़ नाटकों की रचना की है। आपके नाटकों के विषय धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में आ गयी विकृतियों पर आधारित हैं। आपके अनेक नुक्कड़ नाटकों का हिन्दी में अनुवाद हो चुका है। हिन्दी में अनूदित नाटकों को ही प्रस्तुत अध्ययन का विषय बनाय गया है।

> *"जंगीरा की हवेली" गुरुशरण सिंह का बहुचर्चित नुक्कड़ नाटक है। इस नुक्कड़ नाटक में हवेली भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। नाटककार ने इसमें यह बताया है कि वह संस्कृति जिसके निर्माण में गौतमबुद्ध, बाबर और नानक जैसी महान आत्माओं ने अपना योग दिया था, वह संस्कृति राजनेताओं ने विकृत और अपंग बना दी है। गुरुशरण सिंह का "बाबा बोलता है" अत्यन्त प्रभावोत्पादक नुक्कड़ नाटक है। "यह नाटक उन लोगों को समर्पित है जो एक तरफ राजनैतिक भ्रष्टाचार तथा दूसरी तरफ ध ार्मिक साम्प्रदायिक उन्माद के खिलाफ़ संघर्ष करना अपना कर्तव्य समझते हैं।"*[27]

इस नाटक में एक वृद्ध और अनुभवी पुरुष द्वारा देश की समसामयिक यथार्थ स्थिति का वर्णन कराया गया है। देश की सत्ता पर नेहरू परिवार के एकाधिकार के सम्बन्ध में बाबा कहता है –

> *"चौसठ में बाप मरा था, बेटी गद्दी पर बैठी थी। चौरासी में माँमरी है, बेटा गद्दी पर बैठा है। सत्तर करोड़ लोग, एक ही खानदान राजा।"*[28]

नाटककार ने खालिस्तान की माँग करने वाले सिख समुदाय का जनवादी शक्तियों को पहचानने के लिए आह्वान किया है, ताकि उनमें एकता की भावना जाग्रत हो जाए –

> *" हमें जनवादी शक्तियों की पहचान करनी चाहिए। इन शक्तियों के लोग अपने लोगों को जाग्रत करने के लिए निकले हैं। उनके कदम से कदम मिलाओ। धरती का एक टुकड़ा न माँगो जहाँ सिखों का बोल–बाला हो, बल्कि सारा देश माँगो जहाँ जनता का बोल–बाला हो।"*[29]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नुक्कड़ नाटकों में स्वातंत्र्योत्तर भारत की बहुआयामी चुनौतियों का चित्रण कर उनके समाधान की समझ विकसित करने के सराहनीय उपक्रम किए गए हैं। भारत के संविधान के अनुरूप भारत राष्ट्र को विकास के मार्ग पर आगे बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि भारत राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक नुक्कड़ नाटकों में चित्रित चुनौतियों को अपनी चुनैतियाँ माने और उनके समाधान हेतु स्वयं की भूमिका सुनिश्चित करे।

सन्दर्भ :

1. जनता पागल हो गयी है, शिवराम, संभव प्रकाशन, कैथल – 136027, हरियाणा, प्रथम संस्करण, 2016 : 10, 11
2. वही : 20, 21
3. उत्तरार्द्ध, अंक – 7, मई, 1974 ई., सम्पादक : सव्यसाची, 2164 –डेम्पियर नगर, मथुरा, उत्तर प्रदेश : 61, 62 ।
4. सबसे सस्ता गोश्त, असगर वजाहत, राजपाल एण्ट सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली–110 006, प्रथम संस्करण, 2015 : 62.
5. वही : 66.
6. वही : 68
7. वही : 70
8. वही, अंक– 21, मई, 1983 ई. : 14
9. वही।
10. सरकश अफसाने, प्रकाशक : जन नाट्य मंच, 2253–ई., शादी खामपुर, न्यू रंजीत नगर, नयी दिल्ली –110 008, द्वितीय संस्करण, 2015 : 97, 98
11. वही : 104
12. वही।
13. वही : 107
14. वही : 113, 114
15. उत्तरार्द्ध, अंक 21 : 77
16. वही, अंक – 31, जनवरी, 1988 ई. : 15
17. हमें बोलने दो, राजेश कुमार, आशय प्रकाशन, 167–सुबह, तिलकामांझी, भागलपुर, बिहार, प्रथम

संस्करण, 2000 : 47, 48
18. वही : 54
19. वही : 58
20. वही : 60
21. दलितों का दर्द, माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन, 32/3, पश्चिमपुरी, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011 : 12
22. वही।
23. वही।
24. वही : 21
25. वही।
26. वही : 23
27. उत्तरार्द्ध, अंक 32, अप्रैल, 1983 ई. : 21
28. वही : 22
29. वही, अंक 29 : 27

❑❑❑

ISSN 2393-980X
शोध संविद
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ जगमोहन सिंह
सहायक प्रवक्ता, हिंदी
रानीगंज गर्ल्स कॉलेज, सिअरसोल
राजबाड़ी, पश्चिम बंगाल

आलोचना

कथ्य और अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'देवरानी जेठानी की कहानी' का महत्व

'नागरी' की सेवा में समर्पित पं. गौरीदत्त का स्थान हिंदी साहित्य में अन्यतम है। इनकी गणना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, मदनमोहन मालवीय, अयोध्या प्रसाद खत्री, महावीर प्रसाद दिवेदी, बालमुकुन्द गुप्त जैसे श्रेष्ठ साहित्यकारों और हिंदी के सेवकों के साथ की जाती है। 'नागरी' के प्रचार-प्रसार में पं. गौरीदत्त की अविस्मरणीय भूमिका रही है। जब पूरे राष्ट्र में अंग्रेजी और उर्दू का प्रचार-प्रसार जोरों पर था, नागरी उपेक्षित अवस्था में पड़ी थी, उर्दू और अंग्रेजी भाषा को श्रेष्ठ समझा जाता था, तब ऐसे विकट समय में पं. गौरीदत्त ने नागरी के प्रचार-प्रसार का प्रण लिया। इनके प्रयासों ने उर्दू-अंग्रेजी के पक्षधरों में खलबली मचा दी थी। पं. गौरीदत्त आजीवन नागरी की सेवा में रत रहे। उन्होंने नागरी की सेवा में सारी संपति दान (नागरी प्रचार के लिए रजिस्ट्री) कर दी और स्वयं संन्यासी बनकर राष्ट्र हित में जुट गए।

पश्चिमोत्तर प्रदेश मेरठ में इन्होंने नागरी के प्रचार-प्रसार का प्रण लिया और बाद में धीरे-धीरे यह आंदोलन पूरे राष्ट्र में व्याप्त हो गया। इनके प्रयासों से मेरठ में बहुत से विद्यालय खुले जो आज भी पं. गौरीदत्त के पद्चापों की गाथा सुनाते हैं। मेरठ में 'गौरी नागरी कोश' इन्हीं के नाम पर स्थापित किया गया था। लोग इनसे प्रणाम, जयराम की जगह 'जय नागरी की' कहा करते थे। आचर्य रामचन्द्र शुकल कहते हैं, "जब कहीं कोई मेला तमाशा होता वहाँ पंडित गौरीदत्त जी लड़कों की खासी भीड़ पीछे लगाए नागरी का झंडा हाथ में लिए दिखाई देते थे। मिलने पर 'प्रणाम', 'जयराम' आदि के स्थान पर लोग इनसे 'जय नागरी की' कहा करते थे। इन्होंने संवत 1951 में दफ्तरों में नागरी जारी करने के लिए एक मेमोरियल भी भेजा था।"[1] इनके अथक परिश्रम और प्रयासों के कारण अदालतों में हिंदी भाषा और नागरी लिपि व्यवहार में लाने का आज्ञा पत्र (1900) निकला। उद्धरण - "अंत में भाषा तथा साहित्य-प्रेम के कारण स्वर्गीय बाबू (बाद को डॉ.) श्यामसुंदर दास, पं. रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह के प्रयत्नों से 1893 ई. में स्थापित काशी नागरी प्रचारणी सभा मेरठ के पं. गौरीदत्त और स्वर्गीय पं. मदनमोहन मालवीय के अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप 1900 में लेफ्टिनेंट गवर्नर एंटेनी मेक्डॉनेल (1895) ने अदालत में हिंदी भाषा और नागरी लिपि व्यवहार में लाने का सरकारी आज्ञा-पत्र निकाला।"[2] कहना होगा कि भारतेन्दु-युग में 'नागरी' को स्थान दिलाने के अथक प्रयास नित्य चल रहे थे। यही नहीं अंग्रेजी सरकार

को भारतीय चिंतकों के समक्ष झुकना ही पड़ा था। भारतेन्दु युग में अन्य साहित्यकारों के साथ-साथ पंडित गौरीदत्त 'नागरी' के विकास के प्रयास में नित्य प्रवहमान थे। जो मशाल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जलाई थी उसे पंडित गौरीदत्त ने थामकर आगे के लिए महावीर प्रसाद दिवेदी का मार्ग प्रशस्त किया।

हिंदी (नागरी) के विकास में 'सरस्वती' पत्रिका की भूमिका अविस्मरणीय है। 'सरस्वती' पत्रिका में दिवेदी जी ने हिंदी भाषा का परिमार्जन, परिष्करण और संस्कार किया। 1900 ई. के पहले तक एक पृष्ठभूमि बन चुकी थी। कई आंदोलन नागरी को लेकर हो चुके थे। यही नहीं नागरी के महत्व को देशवासियों के समक्ष उजागर करने का प्रयास हिंदी के महान साहित्य चिंतक कर रहे थे, जिनमे पं. गौरीदत्त को कौन विस्मृत कर सकता है। बाबू बालमुकुन्द गुप्त पं. गौरीदत्त की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हुए कहते हैं, "वे नागरी ही लिखते थे, नागरी ही पढ़ते थे, तथा नागरी में ही गीत गाते थे, भजन गाते थे, गजल बनाते थे। नागरी में ही स्वांग-तमाशे करते थे, नाटक खेलते थे। जब सारा मेरठ शहर 'नौचन्दी' की सैर करता था, वे वहाँ देवनागरी का झंडा उठाए फिरते थे। सारांश यह है कि सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते उन्हें नागरी का ही ध्यान था। नागरी के लिए सरकार को अभ्यावेदन आदि समर्पित करने में उन्होंने बड़ा परिश्रम किया था।"[3] इस तरह धुन के पक्के नागरी की सेवा में नित्य प्रयासरत पं. गौरीदत्त का स्थान हिंदी साहित्य में श्रेष्ठ है। उनकी कई कृतियों में नागरी के प्रति अथक प्रेम को देखा जा सकता है, जिनमें से कुछ प्रमुख हैं- 'उर्दू अक्षरों से हानि', 'नागरी का तारा' , 'गौरी नागरी कोश' आदि। पं. गौरीदत्त द्वारा संपादित एक पत्रिका 'देवनागरी की पुकार' (1883) का उल्लेख (डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार) भी मिलता है। इससे यह आभास होता है कि नागरी की सेवा में पं. गौरीदत्त मन-प्राण से जुटे थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पं. गौरीदत्त के निधन पर भावपूर्ण श्रद्धांजली 'भारत मित्र' पत्रिका में इस तरह देते हैं, "पं. गौरीदत्त जी बड़े नागरी हितैषी पुरुष थे। मेरठ जैसी ऊसर भूमि में नागरी का पौधा इन्होंने लगाया था। वहाँ खाली उर्दू की ही जय-जयकार थी, पर अब वहाँ नागरी जानने वाले भी बहुत हो गए थे। पंडित गौरीदत्त जब तक जीवित रहे, नागरी की ही सेवा करते रहे। हर घड़ी नागरी की ही धुन थी। राम-राम, और नमस्कार की जगह भी कहते थे, कि नागरी की जय।"[4]

हिंदी का प्रथम उपन्यास 'देवरानी जेठानी की कहानी' का हिंदी साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान है। मौलिक उपन्यास के पचड़े को हटा देने पर इसे ही हिंदी साहित्य का प्रथम गौरवपूर्ण उपन्यास कहा जाएगा। भाषा, बानगी, शैली आदि की दृष्टि से इसमें प्रथम उपन्यास बनने के सारे गुण विद्यमान है। ज्ञातव्य है कि 'परीक्षागुरु' का प्रकाशन 1882 ई. में और 'देवरानी जेठानी की कहानी' का प्रकाशन 1870 ई. में हुआ, किन्तु मौलिकता की दृष्टि से 'परीक्षागुरु' को प्रथम उपन्यास बनने का गौरव प्राप्त हो गया और 'देवरनी जेठानी की कहानी' को 'नारी-शिक्षा विषयक' कृति कहकर उपेक्षित अवस्था में छोड़ दिया गया। डॉ. पुष्पपाल कहते है, "यद्यपि कुछ समय तक इस उपन्यास को 'नारी शिक्षा विषयक' कृति कहकर उसके समुचित गौरव से वंचित रखा गया, किन्तु अपनी गहरी सामाजिक दृष्टि और व्यापक मानवीय सरोकारों की दृष्टि से यह ऐसा सशक्त उपन्यास है, बहुत देर तक जिसके जोड़ की कृति हिंदी में प्राप्त नहीं होती।"[5] 'नारी-शिक्षा विषयक' कृति कहकर इस पर जो आक्षेप मढ़ा गया था, उससे इतर यह कृति कई समस्याओं को पाठकों के समक्ष उजागर करती है। पं. गौरीदत्त स्वयं पुस्तक संस्करण की भूमिका में यह उद्घोषणा करते हैं कि "स्त्रियों को पढ़ने-पढ़ाने के लिए जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं सब अपने-अपने ढंग और रीति से अच्छी है, परंतु मैंने इस कहानी को नए रंग-ढंग से लिखा है। मुझको निश्चय है कि दोनों, स्त्री-पुरुष इसको पढ़कर अति प्रसन्न होंगे और बहुत लाभ उठायेंगे।"[6]

इस कृति में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं की सूक्ष्म दृष्टि से बहुआयामी विवेचना हुई है। बाल-विवाह, विधवा-विवाह, विवाह में धन का अपव्यय, परिवार में अलगाव की समस्या, स्त्रियों की आभूषण प्रियता के दुष्परिणाम, अंधविश्वास की कु-प्रवृत्तियाँ, लोक-मर्यादा एवं नारी शिक्षा की समस्याओं एवं सुपरिणाम को बड़े ही सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत उपन्यास में प्रकट किया गया है। किसी अन्य उपन्यास से तुलना न करके देखने

से 'देवरानी जेठानी की कहानी' की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध हो जाती है। गोपाल राय कहते हैं, "गौरीदत्त का उद्देश्य अपने पाठक का कौतूहल-जन्य मनोरंजन करना नहीं है। उनका 'विषय' पढ़ी-लिखी स्त्री का गुण बताना है। इस विषय को केन्द्र में रख कर वे अपनी कथा का निर्माण करते हैं, जिसमें घटनाएँ एकदम नहीं हैं। बिना किसी घटना के कथा के निर्माण का यह प्रयास अपने में बिलकुल नया है। कथाकार अपनी कथा का आरंभ तो परंपरागत ढंग से ही करता है - 'मेरठ में सर्वसुख नाम का एक अग्रवाल बनिया था।' - पर इसे तेजी से अग्रसर करने का कोई प्रयास नहीं करता। वह कहानी को यहीं रोक कर सर्वसुख का परिचय देता है और अपनी सीमाओं में उसका चरित्र-चित्रण करता है। पाठक कथाकार के मुख से ही उसके परिवेश का विवरण प्राप्त करता है"[7] इस तरह उपन्यास के विकास के क्रम में 'देवरानी जेठानी की कहानी' अविस्मरणीय भूमिका निभाती है। इस उपन्यास ने हिंदी पाठकों का मार्ग दर्शन किया एवं एक दिशा दृष्टि प्रदान की। हिंदी गद्य की सुप्त अवस्था को तोड़ने में इस उपन्यास का अमूल्य योगदान है। भाषा में भले ही कहीं-कहीं कौरवी जन-भाषा के प्रयोग के कारण असहजता उत्पन्न हो सकती है, किन्तु तठस्थ पाठक के ज्ञान के समक्ष यह असहजता भी सहज हो उठती है।

'देवरानी जेठानी की कहानी' उपन्यास में स्त्री-शिक्षा की बात प्रारंभ से अंत तक विद्यमान है। शिक्षा का क्या महत्व है। इसे बार-बार उपन्यास में दोहराया गया है। देवरानी के पढ़ी होने और जेठानी (ज्ञानो) के अपढ़ी होने पर दोनों के बीच विचारधाराओं में जमीन-आसमान का अंतर दिखाई पड़ता है। देवरानी विपत्ति के समय अपने मस्तिष्क का प्रयोग कर जीवन को सुचारू ढंग से सहज बनाने का प्रयास करती है, वहीं जेठानी अंधविश्वास में पड़कर अनाप-सनाप बकती रहती है और दोष किसी अन्य के मत्थे मढ़ती है। परिवार में सामंजस्य बिठाने में स्त्री की अहम भूमिका होती है। इसी कारण स्त्री-शिक्षा की बात उपन्यास में बार-बार उभरकर आई है। पं. गौरीदत्त शिक्षा के महत्व को एक जगह इस तरह उजागर करते हैं, "सुखदेई को मेरे साथ नागरी पढ़ने भेज दिया करो और भी मुहल्ले की पांच-सात लौंडियें उसके घर जाया करे हैं। और वह सीना-पिरोना भी सिखलाया करे है। और वह बड़ी-बड़ी बात कहै थी कि जब सुखदेई पढ़ जायगी और चिठ्ठी-पत्री लिखनी आ जायगी। घर का हिसाब लिख लिया करेगी। और उसके घर कभी-कभी एक मेम आया करे है। लौंडियों को देख हरी हो जा है और उनका पढ़ना सुनकर किसी को छल्ला और किसी को अंगूठी दे जा है।"[8] पंडित गौरीदत्त स्त्री-शिक्षा के साथ-साथ यहाँ मेल-मिलाप को भी उजागर कर रहे हैं। शिक्षा ग्रहण करते समय कई लोगों के एक साथ मिलने पर सार्थक दृष्टि और सुविचार का जन्म होता है जो मानव के विकास में महत्ती भूमिका का निर्वहन करता है। अकेलापन मनुष्य के मस्तिष्क को विकृत कर देता है। मेल-मिलाप से शरीर में स्फूर्ति एवं ताजगी आती है। देवरानी के आचरण से पूरे समाज में वाह-वाही होने लगती है। स्त्रियों के बीच देवरानी के आचरण, व्यवहार और शिक्षा की साख जम जाती है। उद्धरण- "जब कोई इसके बाप के घर की बात पूछती, वह ऐसी मीठी बातों से जवाब देती कि सब प्रसन्न हो जाती। बिना बातों नहीं बोलती, चुपकी बैठी रहती। वा जब अवसर पाती, अपनी पोथी ले बैठती। मुहल्ले और विरादरी की बैअर-बानियों में धूम पड़ गई कि फलाने की बहु बड़ी चतुर है। कोई कहती बड़े घर की बेटी है। इसका बाप तहसीलदार है। अंग्रीजी पढ़ा हुआ है। अपनी बेटी को आप पढ़ाया है। ....ननद-भावजों का बड़ा प्यार हो गया। दोनों पढ़ी-पढ़ी मिल गई।"[9] भावजो का विवाह हो जाने पर वह भी अपने ससुराल में शिक्षा का समुचित उपयोग कर पास-पड़ोसी की लड़कियों को शिक्षित करने का प्रयास करती है। लेखक की उक्ति है, "शुखदेई भी अपने घर गई और वहाँ अपने कुनबे की लौंडियों को नागरी पढ़ाने लगी।"[10] पति-पत्नी दोनों के शिक्षित होने पर आपसी सामंजस्य में संगती अच्छी तरह बैठती है। इस और भी उपन्यास में दृष्टिपात किया गया है। जहाँ एक शिक्षित हो और दूसरा अशिक्षित वहाँ संगति कभी नहीं बैठती है। इस दृष्टि से देवरानी और उसके पति (छोटेलाल) दोनों शिक्षित हैं और दोनों में आपसी तालमेल काफी अच्छा है। उपन्यास की पंक्तियाँ हैं, "इधर इसकी घरवाली इससे खूब राजी थी। और यह बात परमेश्वर

की दया से होती है कि दोनों स्त्री-पुरुष के चित्त इस तरह से मिल जाएं। यह कुछ अचंभे की बात भी नहीं है। दिल तो वहाँ नहीं मिलता जहाँ मर्द पढ़ा हो, और स्त्री बेपढ़ी। जब यह दोनों मिलते, एक-दूसरे को देख बड़े प्रसन्न होते। इधर वह उसके मन की बात पूछती और अपनी कहती। इधर उसकू इस बात का बड़ा ही ध्यान रहता कि कोई बात ऐसी न हो कि जिससे इसका मन दुखे। उसकी बेसलाह कोई काम न करता। उसके लिए एक नागरी का एक अखबार लिया। रात को उर्दू और अंग्रेजी अखबरों की खबर उसे सुनाता और जब आप थक जाता उससे कहता लो अब तुम हमें अपने अखबार की खबरे सुनाओं। इस बात से इसको बड़ा ही आनंद होता।"[11] यह उद्धरण वर्तमान संदर्भ में मील का पत्थर है, क्योंकि आज परिवार में असामंजस्य की स्थिति हृदय के न मिलने के कारण ही है। बहुत हद तक शिक्षा इसमें जिम्मेवार है। छोटी-छोटी बात पर समझदारी का प्रयोग न कर भयग्रस्त हो जाना यह अशिक्षितों की पहचान है। इसे नकारा नहीं जा सकता। शिक्षा का जीवन में बहुत महत्व है और जब स्त्री-शिक्षा की बात आती है तब उसकी उपयोगिता और बढ़ जाती है। विद्वानों ने स्त्री-शिक्षा के महत्व का नित्य बखान किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहते हैं, "लड़कियों को भी पढ़ाइए, किंतु इस चाल में नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती हैं, जिससे उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुल-धर्म सीखे, पति की भक्ति करें और लड़कों को सहज में शिक्षा दें।"[12] 'देवरानी जेठानी की कहानी' भी स्त्री-शिक्षा का बार-बार बखान करती है, क्योंकि स्त्रियों के शिक्षित होने से उनका समय व्यर्थ में व्यतीत न होकर सार्थक प्रयास की ओर आगे बढ़ेगा। अन्यथा अपढ़ी होने पर थोथी बातों में दिन व्यतीत होगा। देवरानी के शिक्षित होने पर सारा समाज उसकी प्रशंसा करता है। देवरानी स्वयं कभी व्यर्थ का समय व्यतीत नहीं करती। उद्धरण, "अपनी पोथी में से सहेलियों और भनेलियों को कहानियाँ सुना-सुना कर कभी रुलाती और कभी हंसाती।

और जब कभी ज्ञान चर्चा छेड़ देती तो भागवत गीता के श्लोक पढ़-पढ़ के ऐसे सुंदर अर्थ करती कि सुनकर सब मोहित और चकित हो जातीं। और जिस दिन एकादशी, जन्माष्टमी, रामनौमी या और कोई तिथि-पर्वी होती और सीना पिरोना न होता तो उस दिन तुलसीदास और सूरदास के भजन गाती और विष्णुपद सुनाती की सब प्रसन्न हो जाती।"[13] दूसरी ओर जेठानी की रात-दिन सास से खटपट होती रहती। वह नित्य ही सास और देवरानी को खरी-खोटी सुनाने से न चुकती। आदर-सत्कार की भावना से वह कोशों दूर रहती। दो शब्द किसी से मीठी बात तक न करती। केवल द्वेष में घुलती रहती। उद्धरण, "जब कोई बैअर-बानी बाहर की आती, न तो बैठने को पीढ़ा देती और न उसकी बात पूछती। और जो कुछ कहती भी, तो ऐसे बोलती जैसे कोई लड़े है।

सास से तो रात-दिन खटपट रक्खे थी। और जब कोई देवरानी को इसके सामने सराहती तो कहती हाँ जी, वह तो अमीर की बेटी है। मैं तो गरीब बनिये की बेटी हूँ। मुहँ से कुछ नहीं कहती पर देवरानी को देख-देख फुंकी जाती।"[14] जेठानी के इस तरह के आचरण का मूल कारण उसका अशिक्षित होना था। जेठानी का अशिक्षित होना उसके प्रवृति की सूचना देता है।

'देवरानी जेठानी की कहानी' उपन्यास में जहाँ एक ओर स्त्री-शिक्षा को स्थान-स्थान पर उद्घाटित किया है, वहीं दूसरी ओर पुरुषों के शिक्षित होने पर भी बल दिया है। पं. गौरीदत्त नागरी के साथ-साथ अंग्रेजी शिक्षा पर भी उपन्यास में बल दे रहे हैं। ऊपर विवेचन किया जा चुका है कि पंडित गौरीदत्त भारतीय भाषा विशेषकर नागरी के बहुत बड़े शुभचिंतक थे। उनका पूरा जीवन नागरी के प्रचार-प्रसार में ही बीता। दूसरी और वे उपन्यास में अंग्रेजी शिक्षा की भी बात कर रहें हैं। दरअसल लेखक समय की अवस्था से परिचित थे। उस समय अंग्रेजों का शासन था और अंग्रेज, अंग्रेजी भाषा का प्रयोग धड़ल्ले से कर रहे थे। लेखक नहीं चाहते थे कि भारतीय कूपमंडूक बने रहे। अंग्रेजों की नीति को पहचानने के लिए उन्हें उनकी भाषा में उत्तर देना समय की माँग थी। यही नहीं समय के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा के महत्व को भी आम जनमानस समझने लगा था और सबसे बड़ी बात यह थी कि एक अध्येता को जीतनी भाषा का ज्ञान होगा वह अपनी विचारध ाराओं को कई तरह से प्रकट कर राष्ट्र की उन्नति में

संलग्न हो सकेगा। कहीं न कहीं ऐसा ही उद्देश्य लेखक का रहा होगा ? बहराल लेखक नागरी के साथ-साथ उपन्यास में अंग्रेजी की भी बात कह रहे हैं। उदाहरण के रूप में सर्वसुख की उक्ति देखिए, "सुखदेई की माँ, लाला बुलाकी दास हमारी बिरादरी जो मदर्से में नौकर है यों कहते थे कि अपने छोटे बेटों को तुम अंग्रेजी पढ़ाओ।"[15] तहसीलदार अपनी बेटी को चिठ्ठी लिखते हुए कहते हैं, "तुम्हारे छोटे भाई गंगाराम को मदर्से में बिठा दिया है और बड़े भाई रामप्रसाद को तुम्हारे ताऊ के पास आगरे इस कारण भेज दिया है कि वहाँ कालिज में पढ़कर वकालत का इम्ताहन दे।"[16] और तो और देवरानी और छोटेलाल का अपने भतीजे पर अपूर्व स्नेह उड़लते समय भी शिक्षा का महत्व इस तरह प्रकट होता है, "कभी कहता कि नन्हें को अंग्रेजी पढ़ाके रुड़की कालेज में भेजेंगे और इंजिनियर बनावेंगे।

उसकी घरवाली कहती की नहीं इस्कू तो तुम वकील बनाना। मेरा ताऊ आगरे में वकील है। हजारों रुपए महीने की आमदनी है और घर के घर है किसी का नौकर नहीं।"[17]

स्त्रियों के साथ-साथ पुरुषों का शिक्षित होना भी जरूरी है, क्योंकि पुरुष के शिक्षित होने पर वे शिक्षा के महत्व को समझेंगे तथा स्त्री-पुरुष दोनों को शिक्षा दिए जाने पर बल देंगे। यही नहीं उपन्यास में कई जगह यह उल्लेख है कि पिता स्वयं अपनी पुत्री को शिक्षा ग्रहण करवा रहे हैं। पहला उदाहरण है सर्वसुख का अपनी पुत्री को घर में शिक्षा दिए जाने का। उद्धरण- "लाला साहब, लड़की बड़ी सुघड़ है। वह अपनी लड़की को आप नागरी पढ़ाया करे है।"[18] दूसरा उदाहरण देवरानी के पिता का है जहाँ अपनी पुत्री को शिक्षा ग्रहण करवाने का उल्लेख समाजीगण इस तरह कर रहे हैं, "इसका बाप तहसीलदार है। अंग्रेजी पढ़ा हुआ है। अपनी बेटी को आप पढ़ाया है।"[19] विचारणीय है कि 'देवरानी जेठानी की कहानी' उपन्यास केवल मात्र स्त्रियोजनोचित शिक्षा ग्रहण कराने वाला उपन्यास नहीं है, बल्कि इसमें स्त्रियों के साथ-साथ पुरुषों की शिक्षा के महत्व को भी उजागर किया गया है। पुरुष के शिक्षित होने के कारण ही न देवरानी और उसके पति में संगति बैठती है। अन्यथा दूसरी और दौलत राम और जेठानी में खटपट होती रहती है। समय के बदलते पद्चाप की ध्वनि उपन्यास में स्पष्ट सुनी जा सकती है। देवरानी और छोटेलाल अपने पुत्र नन्हें को मदर्से में अंग्रेजी पढ़ाने भेजते हैं। इससे स्पष्ट पता चलता है कि नागरी के साथ-साथ अंग्रेजी का ज्ञान दिलवाने में भी अभिभावक आनाकानी नहीं करते थे। यह समय की माँग थी और लेखक को समय के साथ चलना उचित प्रतीत हुआ। उद्धरण- "नन्हें की अवस्था सात वर्ष की थी जब उसे पांडे के यहाँ मुहूर्त कराके अंग्रेजी पढ़ाने बिठला दिया था।"[20] लेखक विद्यादान के महत्व को भी उपन्यास में स्त्री-शिक्षा के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। उनकी उक्ति है कि विद्या का दान प्रत्येक मनुष्य को करते रहना चाहिए। विद्या एक ऐसा दान है जो कभी घटता नहीं है, बल्कि नित्य ही इसमें वृद्धि होते रहती है। लेखक की उक्ति है, "देखो विद्यादान का शास्त्र में कैसा महात्म लिखा है। अर्थात जो बातें तुमको आती हैं, औरों को भी सिखलाना चाहिए।"[21] अतः स्त्री-पुरुष दोनों को ही विद्या के महत्व को समझकर उसका नित्य दान करते रहना चाहिए। विद्यादान से बढ़कर कोई भी दान सृष्टि में नहीं है।

वर्तमान संदर्भ में शिक्षा के महत्व को जनमानस ने स्वीकार किया है। आज स्त्री-पुरुष दोनों के समक्ष शिक्षा के महत्व को प्रकट किया जाता है। माँ-पिता भले ही अनपढ़ हों, किन्तु अपने बच्चों को हर संभव शिक्षा का दान दिलवाना चाहते हैं और अपने बच्चों के समक्ष शिक्षा के महत्व को प्रकट भी करते हैं। स्त्री-पुरुष के शिक्षा के बुनियादी ढाचें में आज परिवर्तन भी हुआ है। स्त्रियों ने घर की चहारदीवारी को लांघकर अपनी उपस्थिति प्रत्येक जगह दर्शायी है। ज्ञान-कोश की वृद्धि में स्त्रियों का एक बड़ा तबका जुटा हुआ है। स्त्रियों ने अब असहाय कहे जाने की प्रवृत्ति को झुठला दिया है। इतना होने के पश्चात भी शिक्षा की व्यवस्था आज भी भारत में ढीली-ढाली ही है। नगरों को देखकर हम पूरे राष्ट्र का मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं, क्योंकि भारत गाँवों का देश है। यहाँ ग्रामीण संस्कृति में भारतीय संस्कृति विराजमान है। 70 प्रतिशत से भी अधिक जनमानस की आबादी भारत के गाँवों में निवास करती है। गाँव से नगर की ओर पलायन कर रहे जनमानस का मस्तिष्क कहीं न कहीं गाँव से ही जुड़ा रहता है। वे एकदम से नगर-वासी नहीं

हो जाते हैं, बल्कि नगरों में भी गाँव की संस्कृति, आचार-व्यवहार, विचारों को जीवित रखते हैं। दूसरी ओर भारतीय गाँवों में शिक्षा की व्यवस्था अभी तक सुधरी नहीं है। सरकारी विद्यालयों की अवस्था और भी दयनीय है। यहाँ कई गाँव ऐसे भी हैं जहाँ स्त्री-शिक्षा की बात स्वप्न के समान है। सरकारी विद्यालयों को सुव्यवस्थित करने के लिए करोड़ों रुपए उड़ेले जा रहे हैं, किन्तु परिणाम शून्य ही हाथ लग रहा है। दूसरी ओर बेसरकरी विद्यालय खूब फल-फूल रहें हैं। लाखों रुपए शुल्क देकर यहाँ अभिभावक अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं, जिसकी संख्या बहुत अधिक तो नहीं कही जा सकती, पूरे राष्ट्र की जनसंख्या का कुछ प्रतिशत ही कही जा सकती है। बाकी जनमानस सरकारी स्कूलों में ही अपने बच्चों का प्रवेश दिलवाते हैं। यह गहन मंत्रणा का विषय है कि सरकारी विद्यालयों की दयनीय अवस्था के पीछे कारण क्या है? इसका निराकरण जनमानस को स्वयं करना होगा, क्योंकि अशिक्षित समाज राष्ट्र के विध्वंश का कारण होता है। पं.गौरीदत्त ने स्त्री-पुरुष दोनों की शिक्षा की बात उपन्यास में उठाई। यह लगभग 150 वर्ष पहले की बात है, जब पं. गौरीदत्त शिक्षा के महत्व को उजागर कर रहे होते हैं। वर्तमान परिदृश्य को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज में शिक्षा का क्या महत्व है? स्त्री-पुरुष में शिक्षा के अभाव से पूरा राष्ट्र अनपढ़ रह जाएगा। विकास कैसे होगा? इसे गौरीदत्त समझ रहे थे और भारतीय ललनाओं को शिक्षित करने के प्रयास में नित्य सचेष्ट भी थे।

'देवरानी जेठानी की कहानी' उपन्यास में आभूषणप्रियता के दुष्परिणाम को दिखाकर उपन्यासकार ने सामाजिक जागरूकता लाने की केशिश की है। बाद में इस समस्या पर कई उपन्यासों का निर्माण हुआ, जिसमें 'गबन' (प्रेमचंद) उपन्यास को कौन विस्मृत कर सकता है। भारतीय समाज में आभूषण-प्रियता एक दीमक की तरह है। एक हंसते हुए परिवार को यह दीमक धीरे-धीरे खोखला कर देता है। आभूषण प्रियता का अत्यधिक नशा दांपत्य जीवन में कड़वाहट को भर देता है। पति-पत्नी के बीच के माधुर्य को समाप्त करने में आभूषण-प्रियता की महत्पूर्ण भूमिका होती है। 'देवरानी जेठानी की कहानी' उपन्यास में नथिया और दीनानाथ के बीच कड़वाहट इसी आभूषण-प्रियता के कारण उत्पन्न होती है। नथिया के रोज-रोज आभूषण की रट से कुंठित होकर दीनानाथ घर छोड़कर चला जाता है द्य उद्धरण- "जब सायंकाल को सारे दिन का हारा-थका घर आता, नून-तेल का झीकना ले बैठती। कभी कहती मुझे गहना बना दो, रोती-झिकती, लड़ती-भिड़ती। उसे रोटी न कर के देती। कहती कि फलाने की बहु को देख, गहने में लद रही है। उसका मालिक नित नयी चीज लावै है। मेरे तो तेरे घर में आके भाग फुट गए। वह कहता, अरी भागवान, जाने भगवान रोटियों की क्यों कर गुजारा करे हैं। तुझे गहने-पाते की सूझ रही है ?"[22] आभूषणप्रियता की विकरालता केवल मात्र नथिया और दीनानाथ की नहीं है, बल्कि हमारे समाज में कई ऐसे परिवार हैं जिनका दांपत्य जीवन इसी आभूषणप्रियता के कारण नित्य कड़वाहट से भर रहा है। स्त्रियों का आभूषण से मोह होना कोई नई बात नहीं है, किन्तु जब यही मोह विवशता बन जाती है तब परिस्थितियाँ भयावह रूप ले लेती हैं। आभूषण के कारण ही मोहन का अपहरण होता है। उसकी जान पर बन आती है। उद्धरण - "तुम जानों अपनी जान सबको प्यारी है। बेचारा बालक डर गया और चुप हो रहा। उसने इसके कड़े, बाली और तगड़ी उतार ली और बाँये हाथ की ऊँगली में जो सोने की अँगूठी थी उसकू ऐसा दाँतों से किचकिचा कर खेंचा कि उँगली में लहू निकलने लगा।"[23] बड़े-बुजुर्ग यह देखकर समझ जाते हैं कि गहने के कारण ही मोहन का अपहरण हुआ है। उद्धरण- "मर्दों के मुँह फक्क पड़ रहे। औरतों पर गुस्से हों कि लौंडे को इन्होंने खोया कि क्यों गहना पहनाया था ? मोहन की जान इनके गहने ने ली। अब सबको यही संदेह हुआ कि किसी ने गहने की लालच गला घोट कर कुए में गेर दिया"[24] मोहन के एक गड्ढे में मिलने से सभी घर वालों की जान में जान आती है। लाला सबके गहने उतरवा के रखवा देते हैं, "लाला ने सब लड़की-वालों की कड़े-बाली उतरवा दिये और कह दिया कि फिर कोई नहीं पहनाने पावे।"[25]

'देवरानी जेठानी की कहानी' उपन्यास विध वा-विवाह की समस्या पर अपनी मुखर प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। उपन्यास लिखे जाने के समय विध

वा-विवाह की समस्या ने अपना विकराल रूप ले लिया था। छोटी-छोटी कन्याओं का बूढ़े-बुजुर्गों के साथ विवाह हो जाता था और वे असमय ही विधवा हो जाती थीं। विधवाओं की जीवन-शैली बड़ी करुण हुआ करती थी। समाज उसे बहिष्कृत कर देता था। किसी अनुष्ठान में वे भाग नहीं ले सकती थीं। सादा जीवन उन्हें जीना होता था। 'देवरानी जेठानी की कहानी' उपन्यास में लेखक विधवाओं की करुण अवस्था का परिचय देकर इस बुराई को दूर करने का भरसक प्रयास करते दिखते हैं। किरपी के माध्यम से लेखक विधवाओं की करुण अवस्था का परिचय देते हैं एवं समाज पर कटाक्ष करते हैं कि हमने ही अपनी दुर्गति कर रखी है अन्यथा दूसरे समुदायों में धड़ल्ले से विधवा-विवाह का प्रचलन है। उद्धरण-"इसके साथ की लौंडियें अच्छा खावे हैं, पहिने हैं। हँसे है, बोले हैं। गावे हैं, बजावे हैं। क्या इसका जी नहीं चाहता होगा ? सात फेरों की गुनाहगार है। पत्थर तो हमारी जाति में पड़े हैं। मुसलमानों और साहेब लोगों में दूसरा बिवाह हो जाय है। और अब तो बंगालियों में भी होने लगा। जाट, गूजर, नाई, धोबी, कहार, अहीर आदियों में तो दूसरे विवाह की कुछ रोक-टोक नहीं। आगे धर्मशास्त्र में भी लिखा है कि जिस स्त्री का उसके पति से संभाषण नहीं हुआ हो और विवाह के पीछे पति का देहांत हो जाए, तो वहाँ पुनर्विवाह योग्य है अर्थात उस स्त्री को दूसरा विवाह कर देने से कुछ दोस नहीं"[26] धर्मशास्त्र में जब विधवा-विवाह की व्यवस्था थी ...तब दोष कहाँ था? जबकि दूसरे समुदायों में विधवा-विवाह की पूरी छूट थी। दरअसल बात यह थी कि हमने अपने आप को सामाजिक जकड़न में बांध रखा था। दूसरी ओर अन्य प्रान्तों में कई सामाज-सुधारक विधवा-विवाह का समर्थन कर रहे थे। बंगाल, महाराष्ट्र एवं दक्षिण भारत में कई ऐसे बुद्धिजीवी थे जो सामाजिक सुधार के कार्य में संलिप्त थे एवं विधवा-विवाह का समर्थन कर रहे थे। बदलाव की अनुगूँज राष्ट्र के कोने-कोने में सुनी जाने लगी थी। यही बदलाव की झलक पं. गौरीदत्त के प्रस्तुत उपन्यास में भी प्रकट हुई। बाद के उपन्यासों में विधवा-विवाह को पूर्ण समर्थन मिला और कानून द्वारा इसे स्वीकृत कर लिया गया।

'देवरानी जेठानी की कहानी' उपन्यास बाल-विवाह के दुष्प्रभावों को उजागर कर समाज को सचेत करने का प्रयास करता है। उपन्यास के कई दृष्टांतों में बाल-विवाह की बात और छोटी उम्र में विवाह न करने की चिंता देखी जा सकती है। उस समय के समाज में बाल-विवाह आम बात थी। 8 या 10 वर्ष के बालक-बालिकाओं का विवाह कर माता-पिता मुक्त हो जाना चाहते थे। कभी-कभी पोतड़ों में ही विवाह का हो जाना आम बात थी। बच्चों पर इसका क्या दुष्प्रभाव पड़ता है इसकी किसी को कोई चिंता नहीं थी ? उद्धरण- "सुखदेई की माँ बोली कि तुम दौलतराम की सगाई रख लो। आई हुई लक्ष्मी घर से कोई नहीं फेरता। और रुपया-पैसा हाथ-पैरों का मैल है। आगे लौंडिया लौंडे का भाग है।"[27] अर्थात छोटी उम्र में विवाह करवा कर सब कुछ भाग्य पर छोड़ देना ! यही मनोवृति उस समय के समाज में विद्यमान थी। कई बार परिस्थितियाँ विपरीत हो जाती थी और बालिकाएँ कम आयु में विधवा हो जाती थीं। ऐसी कई हजार बालिकाएँ थीं जो उस समय बाल-विधवा की करुण पीड़ा का भोग कर रही थीं, किन्तु इसकी चिंता किसी को नहीं थी। माता-पिता अपनी बेटियों को बोझ समझते थे। उद्धरण- "लाला ने समझा दिया कि जिस काम से निपटे, उससे निपटे। यह काम भी तो करना ही है और यह भी कहा है कि धी-बेटी अपने घर ही रहना अच्छा है।"[28] उपन्यास में उपन्यासकार कई जगह बाल-विवाह का विरोध करते नजर आते हैं। उनका यह विरोध छोटेलाल और देवरानी के माध्यम से इस तरह प्रकट होता है, "नन्हें की सगाई कई जगह से आई पर छोटेलाल और उसकी बहु ने फेर-फेर दी। और यह कहा जब पंदरह-सोलह वर्ष का होगा तब विवाह-सगाई करेंगे।"[29] किन्तु घर के बड़े-बुजुर्गों को यह उचित प्रतीत नहीं हुआ। वे बाल-बिवाह के समर्थन में उतर आए और कहने लगे, "यह तुम क्या गजब कर रहे हो ? जब स्याना हो जायगा, कौन बिवाह-सगाई करेगा ? लोग कहेंगे कि यह जाति में खोटे होंगे, जो अब तक बिवाह नहीं हुआ।"[30] कहना होगा कि बड़े-बुजुर्गों को जाति-बिरादरी की अधिक चिंता थी, बालक-बालिकाओं की कोई चिंता नहीं थी। उन्हें भाग्य-भरोसे परोस दिया जाता था। बहराल परिस्थितियाँ जो भी रही हों उपन्यास में उपन्यासकार ने बाल-विवाह के विरुद्ध प्रतिरोध की

ध्वनि को उठाकर साहस का कम किया था। जब चारों ओर हताशा उमड़ रही थी एक आस की रेखा उपन्यास के माध्यम से जगी थी। बाद में कानून बनाकर बाल-विवाह पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

वर्तमान में यह सुनने को आ ही जाता है कि बाल-विवाह कराते समय अभिभावक पकड़े गए। आज भी कई राज्य ऐसे हैं जहाँ बाल-विवाह धड़ल्ले से करवाए जाते हैं। ऐसे अभिभावकों को कानून का कोई भय नहीं है, क्योंकि वे स्वयं अपने आप को सर्वेसर्वा (कानून) मानते हैं। ऐसे में हमारा समाज बाल-विवाह से मुक्त होकर भी पूर्णतः मुक्त नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हमारा समाज आज भी बेटियों को बोझ ही समझता है और अभिभावक अतिशीघ्र अपनी पुत्री का विवाह करके मुक्त हो जाना चाहते हैं। अभिभावक के निश्चिंत रहने पर भी समाज उन्हें शांति से रहने नहीं देता है। यदि अभिभावक अपने अनुसार चलने का प्रयास करते हैं, तो लांक्षन लगाने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। मनुष्य कब तक किसी की बात को सुनता रहेगा? विवश होकर अभिभावकों को अपनी पुत्री के विवाह की तैयारी करनी पड़ती है। हम वर्तमान में जितना भी आधुनिक बनने का ढोंग करें भीतर से हमारी मानसिकता सड़ी-गली ही है। हम अपने घर को छोड़कर दूसरे के घर में तांक-झाँक करने को आतुर हैं। जब तक हमारी विचारधारा नहीं बदलती है हम एक खुशहाल राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते हैं। हमें पहले अपने आप को बदलना होगा। अपने आप को बदलकर ही हम राष्ट्र निर्माण के साथ-साथ समाज निर्माण में सहभागिता निभा पाएँगे। आज जिस तरह दुष्कर्म की घटनाएँ घट रही हैं इससे ऐसा लगता है कि हम मानसिक रोगी हैं। हममें मंथन करने की कला खो गई है। हम मार्ग भटक गए हैं। दिशाहारा होकर हम इधर-उधर भटक रहे हैं। छोटी-छोटी बच्चियों के साथ दुष्कर्म हमारे मस्तिष्क की विकृति की सूचना दे रहा है। इन घटनाओं को देखकर क्षोभ उत्पन्न होता है कि बाल-विवाह उचित ही था ! कम से कम बच्चियाँ अपने ससुराल में सुरक्षित तो थीं ! आज जब हमारी बच्चियाँ सुरक्षित नहीं हैं तब हम किस आधार पर विकास की बात कर रहे हैं ? उपन्यास के माध्यम से हमें मंथन करना होगा कि हम कहाँ जा रहे हैं ? हम इतने विकृत कभी नहीं थे ! कहीं ऐसा न हो कि उपन्यासकार ने जिस नवजागरण का शंखनाद किया था वह सब व्यर्थ हो जाए !

'देवरानी जेठानी की कहानी' उपन्यास विवाह में होने वाले अपव्यय का खुला चित्रण करता है। लेखक इस उपन्यास में घर-द्वार के नष्ट होने के प्रति सचेतनता प्रकट करते हैं। विवाह में होने वाले अपव्यय का एक चित्र देखें, "इक्कावन रुपये नकद, सोने के पाँच गहने, तीन सौ रुपये की मालियत, पाँच बरतन, जरी का जामा, एक घोड़ा और पालकी यहाँ से खेत में गया।. ......रात को बाराती ताशे बजवाते जाजकियों से गवाते, अनार और माहताबी छोड़ते जीमने आए। अगले दिन जब बरी-पुरी हो ली, बिदा की ठहरी। उस समय लाला सर्वसुख जी ने सब बारातियों के एक-एक रुपया नारियल, टीके किया। उसमें बड़ी वाह-वाह रही। इक्कीस तियल, एक दोशाला, ग्यारह बरतन, एक बड़ा भारी टोकना, कुछ रुपये नकद और पकवान आदि उस समय समधी को दिया"[31] इस तरह के विवाह में अपव्यय आज कई गुना अधिक होने लगा है। लोग बहुत अधिक ऋण लेकर दिखावे भर के लिए अपव्यय कर रहे हैं। इस तरह का अपव्यय संपूर्ण जीवन को ऋण के बोझ तले डूबा दे रहा है और विवाह में लिए गए ऋण से उबरना असंभव हो जा रहा है। इसी कारण लेखक सर्वसुख के माध्यम से विवाह में होने वाले बाहरी दिखावे की धज्जियाँ उड़ाते हैं- "भाई मैंने तो घर-वर दोनों अच्छे देख लिये हैं। उनका बड़ा कुटुंब है। सादा चलन है। लड़का पढ़ा-लिखा है। दूकान का कारबार अपने हाथ से करे है और बड़ा चतुर है। रुपया-पैसा किसी की जाती नहीं। ऊपर की टिप-टाप अच्छी नहीं होती। मनुष्य को चाहिए कि जीतनी चादर देखे उतने पाँव पसारे। मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती। जैसे और हमारे बनिये हाट-हवेली गिर्वी रख के वा दुकान में से हजार दो हजार रुपये जो बड़ी कठिनाई से पैदा किये हैं, बिवाह में लगाकर बिगड़ जाते हैं।"[32] यह उदाहरण वर्तमान संदर्भ में मील का पत्थर है। यह आवश्यक नहीं है कि दिखावे के लिए कर्ज लेकर विवाह में धन का अपव्यय किया जाए, बल्कि दांपत्य जीवन में प्रगाढ़ता कैसे उत्पन्न हो और परिवार आनंद के साथ जीवन कैसे जी सके यह आवश्यक है। कर्ज

लेकर धन का अपव्यय दरिद्रता को ही आमंत्रण देना है। इससे दोनों परिवारों का भला नहीं, बल्कि हानि ही होती है। इसी कारण लेखक यह कहलवाते हैं, "जब यह चिट्ठी यहाँ आई लाला ने छोटेलाल और दौलतराम को उनकी माँ के सामने बुला के सलाह की। ये ही ठहरी की रख लो जहाँ सौ नहीं, सवाये। छोटे लाल ने कहा कि हमें अपने काम से काम है बहुत-सी टीप-टाप में कहाँ की नमूद मरी जा है।"[33] कहने का अर्थ है कि मनुष्य को अपने सामर्थ्य के अनुसार कार्य करना चाहिए। कबीर की उक्ति है, 'तेते पाँव पसारिए, जेते लांबी सोर।' यदि मनुष्य अपने सामर्थ्य के अनुसार कार्य करेगा तो आजीवन आनंद में रहेगा। पं. गौरीदत्त ने यह उदाहरण प्रस्तुत कर यह दिखाने का प्रयास किया है कि सामर्थ्य के अनुसार बहुत कम में भी विवाह-रीति संपन्न हो सकता है। उद्धरण- "जब बारात चढ़ ली गाड़ीवानों से दाने-भूसे पर तकरार हुई। ताशेवालों और जजकियों ने एक-एक आदमी के दो-दो परोसे माँगे। जब वार-द्वारी हो चुकी, तब नौशे को जनवासे में ले गए। और जब लौंडा फेरो पर से उठ के थापा पूजने गया, वहाँ उसने यह चार छन कहे और एक-एक छन का एक-एक रुपया लिया।"[34] इस तरह दिखावे को छोड़कर बहुत कम में विवाह हो सकता है द्य लेखक यहाँ इस ओर इंगित कर रहे हैं।

'देवरानी जेठानी की कहानी' में संगठित परिवार को टूटते हुए दिखाया गया है। कहना होगा कि यहाँ 'अलग्योझा' की समस्या उभर कर आई है। परिवार के टूटने का मुख्य कारण कहीं-न-कहीं शिक्षा का अभाव ही है। परिवार आपसी मेल-मिलाप, सहानुभूति, मन-मुटाव को भुलाकर आगे बढ़ता है, परंतु जहाँ ईर्ष्या-द्वेष की भावना, आपसी मन-मुटाव, अविश्वास की भावना उत्पन्न हो जाती है वहाँ परिवार टूट जाता है। उपन्यास में भी यही समस्या उभर कर आई है। एक के पढ़े होने और दूसरे के अपढ़ होने से आपसी सामंजस्य बैठा पाना असंभव हो जता है। यही देवरानी-जेठानी के साथ होता है। परिणामस्वरूप दोनों परिवार अलग हो जाता है। सर्वसुख नहीं चाहता है कि परिवार में अलगाव हो। वह अपने दोनों बेटों के साथ रहना चाहता है। उसे मान-मर्यादा की भी चिंता है। वह कहता है, "बिरादरी के लोग हँसेंगे और ठटटे मारेंगे कि फलाने के घर लुगाइयों में लड़ाई हुई थी तो उसने अपने बड़े बेटे को जुदा कर दिया। देखो यह कैसी बहु आई इसने हमारी बात में बटटा लगाया और घर तीन तेरह कर दिया।"[35] परंतु होनी को कौन टाल सकता है। सर्वसुख की स्त्री कहती है कि हमारा पुत्र ही निकम्मा है हम क्या कर सकते हैं ? उद्धरण- "अजी जब अपना ही पैसा खोटा हो परखने वाले को क्या दोष है ? जग तो आरसी है जैसा लोग देखेंगे वैसा कहेंगे।"[36] उधर तहसीलदार अपनी बेटी (देवरानी) को अलगाव की व्यथा से त्रस्त होकर पत्र लिखता है। तहसीलदार अपनी पुत्री को समझाता है कि मेल-मिलाप से रहना, किसी से बैर मत करना। तहसीलदार एकजुटता वाले संपन्न परिवार में विश्वास करता है। उसकी उक्ति है, "बेटी, जो मैं तुमसे उसी दिन प्रसन्न हूँगा जब मैं यह सुनूँगा कि तुम्हारी ससुराल वाले तुमसे प्रसन्न हैं। तुम्हारा लिखना-पढ़ना उसी दिन काम आवेगा जब तुम अपनी सास की आज्ञा में रहोगी। सास को माता के राम-तुल्य जानना। ननद और जेठानी को अपनी बहिनों से अधिक मानना। .....अपने धर्म-कर्म पर चलना। ईश्वर को याद रखना। आए-गए का आदर सम्मान करना, सबसे मीठा बोलना, संतोष से अपने कुटुंब में गुजरान करना, आपको तुच्छ जानना।"[37] एक पढ़ा-लिखा पिता ही ऐसी मंत्रणा अपनी पुत्री को दे सकता है। सर्वसुख और तहसीलदार नहीं चाहते हैं कि परिवार में अलगाव हो। कोई भी पिता अपने पुत्रों के बीच में अलगाव को नहीं देख सकता है। 'एकता में ही बल है' इसे आज की पीढ़ी भले ही न समझे, किन्तु इसमें सच्चाई है। प्रत्येक दिन के चख-चख से अशांत होकर सर्वसुख अपने बेटों में अलगाव कर देता है। उद्धरण- "सामने का दालान दौलत राम को दे दिया और सब तरह के जुदा-जोखा कर दिया। जो कोई चीज दुकान से आती दोनों घर आधी-आधी बट जाती।"[38]

वर्तमान संदर्भ में एकल परिवार की अवधारणा तीव्र रूप से पल्लवित हुई है। नगर ही नहीं ग्रामों में भी अब एकल परिवार की अवधारणा प्रस्फुटित होकर जड़ जमा रही है। सभी को स्वतंत्रता चाहिए। कोई किसी की बात सुनना नहीं चाहता है। नगर और ग्राम दोनों की संस्कृति मिलकर गड्ड-मड्ड होने लगी है। आधुनिकता की हवा सर चढ़कर बोल रही है। आने वाला समय एकल परिवार की संघटना को भी बदलकर रख देने

वाला है। 'देवरानी जेठानी की कहानी' उपन्यास के लिखे जाने के समय जो समस्या उभरी थी उससे कहीं अधिक घातक परिणामों से हमें वर्तमान में सचेत रहना होगा, क्योंकि 21 वीं सदी पूरा परिवर्तन चाहती है और इस परिवर्तन में घर-परिवार, रिश्ते-नाते सब बहने को आतुर हैं।

'देवरानी जेठानी की कहानी' में अंधविश्वास की कुप्रवृतियों की ओर पाठक वर्ग का ध्यान आकर्षित किया गया है। अंधविश्वास में पड़कर व्यक्ति अपना तो अहित करता ही है परिवार को भी मटियामेट कर देता है। जिसके हृदय में अंधविश्वास का एक बार प्रवेश हो जाता है फिर उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। अंधविश्वास के कारण ही मनुष्य के हृदय में शंकाओं का जन्म होता है। अंधविश्वास रूपी मकड़ी के जाल से बाहर निकलना असंभव है। उपन्यास में इस तरह के कई दृष्टांत हैं जहाँ अंधविश्वास की बात उभरकर आई है। एक दृष्टांत देखें, "एक समय गर्मी के दिन थे। दो-तीन धुएं में रोटी की। दोनों माँ-बेटियों की आँखें दुखने आ गयीं। परहेज किया नहीं और बीमारी बढ़ गई। किसी ने बहका दिया कि तुम्हारी आँखें घर के देवता ने पकड़ी है। उस दिन से दवाई भी डालनी छोड़ दी। ....जब लाला को यह खबर हुई वह एक दिन आके बहुत लड़े कि दवा नहीं डालेगी तो अंधी हो जायेगी। तब कोई पंदरह दिन में रसौत की पोटली से आराम हुआ"[39] बच्चे को सर्दी-खाँसी होने पर उपचार न करवा मंत्र से झड़वा देना यह अंधविश्वास नहीं तो और क्या है ? यह तथ्य ध्यातव्य है कि अंधविश्वास अनपढ़ व्यक्तियों को अतिशीघ्र घेरता है। जेठानी के अनपढ़ होने के कारण ही वह बात-बात में भयग्रस्त हो जाती है और किसी अपशकुन की शंका से विचलित हो जाती है। उद्धरण – "किसी के सामने दूध नहीं पिलाती, न उसको दिखलाती। गोद में ढक के बैठ जाती। इसलिए की कभी नजर न लग जाए। नित टोने-टोटके, गंडे-ताबीज करती रहे थी। जो कोई स्याना-दिवाना आता इससे रुपया-धेली मार ले जाता। अर्थात जो मूर्ख स्त्रियों के काम हैं, और उनसे किसी प्रकार का लाभ नहीं है, किन्तु बड़ी हानि है सब करती और अपनी देवरानी को सुना-सुना सब स्त्रियों से कहती कि बहिन, बेटा तो हुआ है जो वैरी जीने देंगे।"[40] उपन्यास में उद्धृत सिर के चोटी के बाल कतर लेना अंधविश्वास को ही प्रश्रय देता है। अंधविश्वास में लिप्त लोग टोना-टोटका करने के लिए ऐसा करते हैं। उपन्यास में उपन्यासकार अंध विश्वास को दिखाने के साथ-साथ इसका प्रतिकार भी करते हैं। कहना उचित होगा कि लेखक अंधविश्वास के प्रति सचेतनता जगाकर जनमानस के हृदय में नवजागरण का संचार कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि वर्तमान में अंधविश्वास से आज का समाज पुर्णतः मुक्त हो चुका है। यदि ऐसा होता तो बाबाओं का व्यापार इतना न फल-फूल रहा होता। यदि अंधविश्वास से हम मुक्त हो चुके होते तो बुराड़ी (दिल्ली) जैसी आत्महत्या की घटना दुबारा न घटती। आम जनमानस सचेत रहकर ही साधु-संतों के चंगुल से बच सकता है। आज के साधु-संत, ध्यानी-ज्ञानी कम ....पाखंडी अधिक हैं। बीते कुछ वर्षों में साधुओं के कर्मकांडों ने यह सिद्ध कर ही दिया है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि 'देवरानी जेठानी की कहानी' कई समस्याओं को उजागर कर उसका निराकरण प्रस्तुत करती है। यह उपन्यास पुरानी रूढ़ परंपराओं में जकड़े जनमानस के हृदय में नवजागरण का शंखनाद करता है। उपन्यास में प्रतिकार की ध्वनि के साथ-साथ नवजागरण का शंखनाद है। उपन्यास पुरानी परंपराओं को खंगालने के साथ-साथ संस्कृति, व्यवहार एवं लोक-रीति को व्यक्त कर उत्कृष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता है। वर्तमान में जिस तरह की विचलन भरी स्थिति उत्पन्न हो गई है उससे बाहर आने का मार्ग उपन्यास प्रस्तुत करता है। अपने कलेवर में यह रचना कल जितनी प्रासंगिक थी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है और वर्तमान संदर्भ में यह रचना मूल्यांकन की माँग करती है।

संदर्भ :

1. सिंह, डॉ. पुष्पपाल, देवरानी जेठानी की कहानी, रेमाधव पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006 : 68-69
2. वही : 69
3. वही : 69-70
4. वही : 70
5. वही : 7
6. वही : 25

7. दस्तावेज 104, वर्ष–26, अंक–4, जुलाई–सितंबर–2004 : 07
8. सिंह, डॉ. पुष्पपाल, देवरानी जेठानी की कहानी, रेमाधव पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006 : 28
9. वही : 29–30
10. वही : 31
11. वही : 31–32
12. यादव, रामजी संकलन/संपादन, भारतेन्दु संचयन, भारतीय पुस्तक परिषद्, नई दिल्ली, प्र. सं., 2011 : 342
13. सिंह, डॉ. पुष्पपाल, देवरानी जेठानी की कहानी, रेमाधव पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, प्र. सं., 2006 : 33
14. वही : 30
15. वही : 28
16. वही : 37
17. वही : 43
18. वही : 29
19. वही : 30
20. वही : 47
21. वही : 37–38
22. वही : 44
23. वही : 50
24. वही : 51
25. वही : 52
26. वही : 48
27. वही : 29
28. वही : 31
29. वही : 47
30. वही : 47
31. वही : 52–53
32. वही : 52
33. वही : 54
34. वही : 54–55
35. वही : 36
36. वही : 36
37. वही : 37
38. वही : 36–37
39. वही : 41
40. वही : 45–46

❑❑❑

ISSN 2393-980X
शोध संविद
SHODH SAMVID
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ पूजा शर्मा (शोधार्थी)
❑ अमिष वर्मा (सहायक प्राध्यापक)
हिंदी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल

आलोचना

'भारत छोड़ो आंदोलन' की औपन्यासिक अभिव्यक्ति

[संदर्भ : 'मेरी तेरी उसकी बात' (हिंदी) और 'मृत्युंजय' (असमिया)]

'भारत छोड़ो आंदोलन' भारत की आजादी के इतिहास का एक महत्वपूर्ण आंदोलन था। यह आंदोलन देशव्यापी था, जिसमें बड़े पैमाने पर भारत की जनता ने हिस्सेदारी की और अभूतपूर्व साहस और सहनशीलता का परिचय दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ ने भारतीय जनता को इस क्रांति की ओर अग्रसर होने के लिए मार्ग प्रशस्त किया। सन् 1939 ई. में आरम्भ हुए विश्वयुद्ध ने सन् 1942 ई. तक आते-आते एशिया महादेश में एक नया मोड़ लिया। इटली एवं जर्मनी की सहायता से जापानी सैनिक एक के बाद एक देशों पर कब्जा करने में सफल होते गये। जापानी सेना द्वारा सिंगापुर, रंगून, अंडमान द्वीपसमूह आदि पर कब्जा कर लेने से भारत के सीमांत क्षेत्र में खतरा पैदा हो गया। अंततः अंग्रेजों को इस बात का एहसास हुआ कि सद्भावनापूर्ण कदम उठाकर भारतीय जनमत को अपने पक्ष में करना आवश्यक हो गया है।[1] इसी कारण उन्होंने युद्ध में भारत का सक्रिय सहयोग पाने के लिए कैबिनेट मंत्री स्टैफोर्ड क्रिप्स को समझौते के एक मसविदे के साथ भारत भेजा। 23 मार्च,1942 ई. को क्रिप्स भारत आये। दिल्ली पँहुचकर उन्होंने नेताओं के समक्ष ब्रिटिश सरकार की योजना प्रस्तुत की, जिसमें यह उल्लेख था कि युद्ध समाप्ति के पश्चात् ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को डोमिनियन राज्य का दर्जा प्रदान किया जाएगा। साथ ही उसमें ऐसे संविधान निर्माण करनेवाले परिषद का गठन करने का वादा किया गया जिसमें कुछ सदस्य प्रांतीय विधायकों द्वारा निर्वाचित होंगे और कुछ (रियासतों का प्रतिनिधित्व करने के लिए) शासकों द्वारा नामंकित किए जाएँगे। पाकिस्तान की माँग के लिए यह गुंजाइश बनाई गयी कि यदि किसी प्रांत को नया संविधान स्वीकार्य नहीं होगा तो वह अपने भविष्य के लिए ब्रिटेन से अलग समझौता कर सकते हैं। क्रिप्स मिशन हालाँकि राजनैतिक दलों को संतुष्ट करने के लिए भेजा गया था, परंतु इसके प्रस्ताव को राजनैतिक दलों द्वारा खारिज कर दिया गया। इसका कारण यह था कि नेहरू,गाँधी आदि अखण्ड और सम्प्रभु भारत चाहते थे, महज डोमिनियन अधिकार नहीं। इसके अलावा वे भारत के संभावित विभाजन की व्यवस्थाओं से भी असहमत थे।[2] इस मिशन के व्यर्थ होने का एक बड़ा कारण यह भी था कि इसमें सत्ता के हस्तांतरण की कोई भी शर्त स्पष्ट नहीं थी। इसीलिए भारत के तमाम राजनैतिक संगठनों ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

क्रिप्स मिशन की व्यर्थता ने भारतवासियों के मन में निहित निराशा एवं क्षोभ की भावना को और प्रबल किया। क्रिप्स मिशन की विफलता के बाद गाँधी जी ने अपना तीसरा बड़ा आंदोलन छेड़ने का फैसला लिया।

उनका मानना था कि जापान के शत्रु भारतवासी नहीं, बल्कि ब्रिटिश हैं। अत: यदि ब्रिटिश भारत त्याग देंगे, तो भारतवर्ष जापानियों के आक्रमण से बच जाएगा। जापानी सेना के आक्रमण से भारत की रक्षा करने हेतु एवं भारतीय जनता को अंग्रेजों के चुंगल से बचाने के लिए अंग्रेजों को भारत से खदेड़ना अत्यंत आवश्यक है। द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ होते ही सुभाष चंद्र बोस, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आन्दोलन छेड़ने के लिए गाँधी जी पर दबाब डाल रहे थे। लेकिन ऐसी विषम परिस्थिति में आंदोलन छेड़ कर अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर करना गाँधी जी की नीति के खिलाफ था। अत: उस समय उन्होंने आंदोलन छेड़ने से इनकार कर दिया था। गाँधी जी को विश्वास था कि इस परिस्थिति में ब्रिटिश सरकार से बातचीत करके इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। परंतु क्रिप्स मिशन की विफलता ने उनकी सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया, जिससे गाँधी जी का मन बदल गया। मौलाना अबुल कलाम आजाद गाँधी जी के इस विचार-परिवर्तन को रेखांकित करते हुए लिखते हैं- "After Cripps departed, I also found a marked change in Gandhiji's attitude,...Gandhiji's mind was now moving from one extreme of complete inactivity to the other extreme of organized mass effort"[3].

गाँधी यह भी महसूस कर रहे थे कि अंग्रेजों के चुंगल से निकलने की चाह रखने वाली कसमसाती भारतीय जनता को ज्यादा समय तक रोके रहना संभव नहीं होगा। इसीलिए 8 अगस्त, 1942 ई. को अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के मुम्बई अधिवेशन में एक लम्बे विचार विमर्श के पश्चात् 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पारित किया गया और कहा गया कि भारत में ब्रिटिश शासन की तत्काल समाप्ति भारत में स्वतंत्रता तथा लोकतंत्र की स्थापना के लिए अत्यंत आवश्यक हो गई है। गाँधी जी को इस आंदोलन का नेतृत्व सौंपा गया। आंदोलन का भार स्वीकार करते ही गाँधी ने संघर्ष के लिए जनता का आह्वान करते हुए उन्हें 'करो या मरो' का मंत्र सौंपा। 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पारित होने के बाद 9 अगस्त, 1942 को कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं- महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, डॉ राजेंद्र प्रसाद, सरदार बल्लभ भाई पटेल आदि को हिरासत में ले लिया गया। यहाँ तक कि कांग्रेस अधिवेशन से लौटते हुए असम के कांग्रेसी नेता गोपीनाथ बरदलोई और सिद्धनाथ को भी धुबुरी में गिरफ्तार कर लिया गया।[4] दरअसल आंदोलन आरम्भ होने से पहले ब्रिटिश सरकार द्वारा देश के बड़े-बड़े नेताओं को हिरासत में लेने के पीछे प्रमुख उद्देश्य यह था कि यह आंदोलन स्थगित हो जाए। परंतु उनकी यह धारणा गलत साबित हुई। ब्रिटिश सरकार के इस कदम ने आग में घी डालने का काम किया, जिसके परिणामस्वरूप यह आंदोलन स्थगित होने के बजाए और ज्यादा भड़क उठा। सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैल कर इसने एक विराट जनआंदोलन का रूप धारण कर लिया। इसी तरह आरम्भ हुआ इतिहास प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो आंदोलन'।

सन् 1942 ई. में हुए इसी जनांदोलन के आधार पर बंगला में समरेश बसु कृत 'जुग जुग जियो', सतीनाथ भादुड़ी कृत 'जागरी', असमिया में बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य कृत 'मृत्युंजय', हिन्दी में यशपाल कृत 'मेरी तेरी उसकी बात', अमरकांत कृत 'इन्हीं हथियारों से' आदि महत्वपूर्ण उपन्यासों के अलावा कई भारतीय एवं अंग्रेजी भाषा के उपन्यास लिखे गये। इन उपन्यासों में भारत छोड़ो आंदोलन की गतिविधियों और भारतीय जनता पर पड़े प्रभाव एवं विस्तार को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत लेख में उत्तर भारत और असम में भारत छोड़ो आंदोलन के प्रभाव एवं विस्तार की औपन्यासिक अभिव्यक्ति के स्वरूप को हिन्दी के 'मेरी तेरी उसकी बात' एवं असमिया के 'मृत्युंजय' उपन्यास के माध्यम से तुलनात्मक रूप से समझने और विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

'मेरी तेरी उसकी बात' यशपाल द्वारा रचित 568 पृष्ठों का एक वृहद् उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 1974 में हुआ। इस उपन्यास में प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर 1945 ई. में पृथक पाकिस्तान के लिए लगाए गए नारे तक की घटनाओं का सूक्ष्म ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य द्वारा रचित 'मृत्युंजय' उपन्यास मूल असमिया में 1970 में प्रकाशित हुआ और इसके हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन 1980 में हुआ। इस उपन्यास में 'भारत छोड़ो आंदोलन' में असमिया जनता की भूमिका एवं उनके अविस्मरणीय योगदान

को दर्शाया गया है। 'मेरी तेरी उसकी बात' में उत्तर भारत के शहरों, मुख्य रूप से इलाहाबाद, लखनऊ, बनारस, बलिया आदि में आंदोलन के प्रभाव को दर्शाने का प्रयास किया गया है। 'मृत्युंजय' उपन्यास में तत्कालीन असम, खासकर नगाँव के पश्चिमी ग्रामीण अंचलों-दैपारा, मायाङ, बारपुजिया, रोहा आदि में आंदोलन के विराट रूप को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

भारत के इतिहास में भारत की स्वतंत्रता के लिए किए गए आंदोलनों में 'भारत छोड़ो आंदोलन', जिसे अगस्त क्रांति के नाम से भी जानते हैं, अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस आंदोलन की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें गाँधी के अहिंसात्मक आंदोलन और समाजवादियों के भूमिगत क्रांतिकारी आंदोलन का संगम दिखाई देता है। भारत छोड़ो का प्रस्ताव पारित होने के तुरंत बाद ही एक ओर जहाँ गाँधी जी सहित देश के बड़े-बड़े नेताओं को हिरासत में ले लिया गया, वहीं दूसरी ओर सामाजवादी पार्टी के युवा नेता जयप्रकाश नारायण, आसफ अली, अच्युत पटवर्धन आदि आंदोलन को गुप्त रूप से सक्रिय बनाने में लगे थे। इनका उद्देश्य था हिंसात्मक रुख अपनाकर अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर करना। 'मेरी तेरी उसकी बात' और 'मृत्युंजय'- इन दोनों ही उपन्यासों में समाजवादियों द्वारा गुप्त रूप से अंजाम दी गयी क्रांतिकारी गतिविधियों को दर्शाया गया है। 'मेरी तेरी उसकी बात' में उषा, रूद्रदत्त पाठक, बिरजू तथा उनके अन्य साथी सोशलिस्ट पार्टी के प्रभाव में हैं। यशपाल ने इस उपन्यास में उत्तर भारत के इलाकों- इलाहबाद, बनारस, बिहार, यू.पी., लखनऊ आदि में जनता द्वारा, खासकर छात्रों द्वारा भूमिगत रहकर की गई क्रांतिकारी गतिविधियों जैसे- रेल दुर्घटना, बम विस्फोट, पुलिस थाने पर हमला कर कब्जा करना, सरकारी कर्मचारियों के बंगले को ध्वस्त करना आदि का वर्णन किया है। सोशलिस्ट उषा आंदोलन के दौरान भूमिगत रहकर भी अपने भाषणों के जरिए देश की जनता में ब्रिटिश विरोधी भावना पैदा करने की कोशिश करती है। उपन्यास में आंदोलन के दौरान बलिया जिले में बिरजू और अन्य गुप्त आंदोलनकारियों द्वारा समानंतर सरकार गठित किये जाने का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

'मृत्युंजय' उपन्यास में बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य गोसाईं, अहिना कोंवर, सेवक मधु केवट, जयराम, भिभिराम आदि पात्रों के जरिए आंदोलन में हिंसा-अहिंसा को लेकर तत्कालीन असम की जनता के अंतर्द्वंद्व को अभिव्यक्त करने का प्रयास करते हैं। नगाँव के पश्चिमी अंचलों- मायाङ, बारपुजिया, बढ़मपुर, कामपुर आदि में एक ओर जनता गाँधी के अहिंसात्मक आंदोलन से प्रभावित थी तो दूसरी ओर अत्याचार से पीड़ित जनता सुभाष चंद्र बोस की हिंसात्मक नीति को अपनाते हुए मृत्युवाहिनी सेना गठित कर रेल दुर्घटना आदि को अंजाम दे रही थी। 'मृत्युंजय' उपन्यास में 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दौरान अंग्रेजों के विरुद्ध असमिया जनता की ऐसी ही हिंसात्मक-अहिंसात्मक प्रतिक्रिया और आंदोलन को सफल बनाने में उनके महत्वपूर्ण योगदान को रेखांकित करने की कोशिश की गई है।

'मृत्युंजय' और 'मेरी तेरी उसकी बात' इन दोनों उपन्यासों में 'भारत छोड़ो आंदोलन' में जनता की भागीदारी का विस्तृत चित्रण किया गया है। 'मृत्युंजय' उपन्यास में बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य ने आंदोलन में भाग लेने वाली असम की भोली-भाली ग्रामीण जनता का चित्रण किया है। उपन्यास की बिल्कुल पहली पंक्ति में ही उपन्यास के एक पात्र भिभिराम का कथन द्रष्टव्य है-"बर्रों के छत्ते को छेड़ दें तो उनसे अपने को बचा पाना कठिन हो जाता है।"[5] इस कथन के जरिए उपन्यासकार ने तत्कालीन असम की पराधीन जनता के मन में अंतर्निहित स्वाधीनता प्राप्ति की लालसा एवं उनकी विद्रोही मानसिकता को दर्शाया है। उपन्यास में चित्रित आंदोलन में भाग लेने वाले पात्रों में रूप नारायण और धनपुर को छोड़कर गोसाईं, सेवक मधु केवट, शिष्य जयराम, अहिना कोंवर, भिभिराम, मणिक बरॉ आदि अधेड़ उम्र के सहज, सरल और गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति हैं। रूपनारायण को छोड़ उपन्यास में चित्रित सभी पात्र राजनीति के दाव-पेंच से अपरिचित थे। वे अहिंसा में विश्वास रखते थे, परन्तु अंग्रेज सरकार के अत्याचार और शोषण से ऊब कर उन्हें अपने देश से खदेड़ने के लिए उन्होंने हिंसात्मक रुख अपनाकर इस आंदोलन में भाग लिया। उपन्यास का पात्र धनपुर कहता है- "हम अंग्रेजों को यहाँ से खदेड़ना चाहते हैं। अभी तक अहिंसा के मार्ग

पर चलते रहे, किंतु वहाँ हमें सफलता नहीं मिली। अब हिंसा का मार्ग स्वीकार कर कोशिश कर रहे हैं। अभी तो हमने चरखे में पौनी ही लगायी है।"[6]

यशपाल ने 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास में उषा, बिरजू, माया आदि पात्रों के जरिए उत्तर भारत के इलाकों में वामपंथ और समाजवाद से प्रभावित युवा छात्रों द्वारा विश्वविद्यालय, कॉलेज-स्कूल आदि त्यागने और आंदोलन में उनकी सक्रीय भागीदारी को दर्शाया है। उपन्यास में स्वतंत्रता सेनानी उषा विश्वविद्यालय में दिए गए अपने भाषण में कहती है- "साथियो, यह संग्राम है, आंदोलन नहीं। हमें अपनी गुलामी की पूरी मशीन, अपने दमन की व्यवस्था कचहरियों, तहसीलों, थानों, यातायत और संपर्क के सभी साधनों को समाप्त कर देना है। फासिज्म से लड़ने के लिए ब्रिटेन जो कुछ कर रहा है, ब्रिटिश फासिज्म से लड़ने के लिए हमें उससे अधिक करना होगा। हमारा लक्ष्य और नारा है, अंग्रेजों को भारत से निकालो! करो या मरो!"[7] इस वक्तव्य के जरिए उपन्यासकार ने समाजवादियों से प्रभावित छात्रों की विद्रोही मानसिकता को चित्रित किया है।

'मृत्युंजय' उपन्यास में दिखाई पड़ने वाले ग्रामीण अधेड़ आंदोलनकारियों की तुलना में 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास के ज्यादातर आंदोलनकारी शहरी युवा हैं। मतलब इन दोनों उपन्यासों में आंदोलन में भाग लेने वाली दो अलग-अलग पीढ़ियों का चित्रिण किया गया है, परंतु उनका उद्देश्य एक ही है- अंग्रेजों को अपने देश से खदेड़ना। साथ ही इन दोनों उपन्यासों में तत्कालीन समाज में घर के सारे बंधनों को तोड़कर आंदोलन में भाग लेने वाली स्त्रियों के क्रांतिकारी रूप को भी दर्शाया गया है। 'मेरी तेरी उसकी बात' की उषा और 'मृत्युंजय' की कली दीदी तथा डिमी ऐसी ही स्त्री पात्र हैं।

'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास में उपन्यासकार ने 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दौरान सोशलिस्टों एवं कम्युनिस्टों के बीच की बहस एवं टकराव का भी चित्रण किया है। उपन्यास में दोनों पक्षों के बीच आजादी, क्रांति और राष्ट्रवाद के मुद्दे पर हुई बहस एवं टकराव को बहुत ही बारीकी से दिखाया गया है। ऊपर उल्लेख किया गया है कि भारत की आजादी में 'भारत छोड़ो आंदोलन' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास में यशपाल द्वारा प्रतिपादित दृष्टिकोण अलग है। वामपंथी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण उन्होंने उपन्यास में कम्युनिस्ट मान्यता को प्रतिपादित किया है। वे देश की आजादी को अंतरराष्ट्रीय घटनाओं और परिस्थितियों की देन मानते हैं। उपन्यास में सोशलिस्टों एवं कम्युनिस्टों के बीच की बहस एवं टकराव को सोशलिस्ट उषा सेठ और कम्युनिस्ट नरेंद्र कोहली की आपसी बहस से समझा जा सकता है। सोशलिस्ट उषा सेठ कहती है- "...हम लोगों का छोटा-मोटा प्रयत्न भी सर्वथा बेकार नहीं गया। ब्रिटेन भारत को स्वशासन दे रहा है।"[8] इसकी प्रतिक्रिया में कम्युनिस्ट नरेंद्र कोहली व्यंग्य करता है- "आप लोगों का प्रयत्न! गाँधी और कांग्रेस ने तो उस प्रयत्न के उत्तरदायित्व से पूर्णतः इंकार कर दिया था। देख लीजिए, उस आंदोलन में जेल जाने वाले लौट कर सौ में से साठ कम्युनिस्ट बन गए।"[9]

यशपाल भारत की आजादी में 'भारत छोड़ो आंदोलन' के महत्व को स्वीकार नहीं करते। अपने वामपंथी विचारधारात्मक रुझान के कारण यशपाल 'भारत छोड़ो आंदोलन' और उसमें गाँधी की भूमिका के प्रति नकारात्मक रूप से काफी 'क्रिटिकल' हैं। 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास में एक जगह वे कहते हैं कि "क्विट इंडिया की हुंकार गाँधी और कांग्रेस जाने किस नशे में दे बैठे, फिर उससे मुकर भी गये।"[10] यशपाल यह स्पष्ट रूप से दिखाने का प्रयास करते हैं कि गाँधी जी के नेतृत्व में चलाया गया भारत छोड़ो आंदोलन विफल रहा। यशपाल का मानना है कि गाँधी जी का इस आंदोलन के दायित्व से मुकरना इसका प्रमाण है। अगर मुकरना ही था तो इस आंदोलन का ऐलान गाँधी जी एवं कांग्रेस ने क्या सोच कर कियाथा? यशपाल उपन्यास में दिखाते हैं कि बलिया में आंदोलनकारियों द्वारा सामांतर सरकार गठित होने के बाद लोग भांग और जलेबियों के नशे में डूब जाते हैं और तब आरम्भ होता है सरकार का दमन चक्र। इस घटना का उल्लेख उन्होंने यह दर्शाने के लिए किया है कि भारत की स्वतंत्रता का यह आंदोलन नशे से आरम्भ होकर नशे में ही विलीन हो जाता है। अतः यशपाल के अनुसार 'भारत छोड़ो आंदोलन' भारत की

आजादी में कोई महत्व नहीं रखता। यशपाल की इस मान्यता से निश्चय ही पूरी तरह सहमत नहीं हुआ जा सकता। देश की जनता द्वारा प्राणों की आहुति देकर चलाया गया यह आंदोलन भले ही विफल रहा, परंतु इस विफलता का भी भारत की आजादी की प्रक्रिया में अपना महत्व तो है ही। साथ ही इस सत्य को भी नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि भारत की आजादी में गाँधी के अलावा चंद्रशेखर, भगत सिंह, सुखदेव सरीखे तमाम क्रांतिकारियों का भी योगदान रहा है। आजादी की लड़ाई में किसी भी एक पक्ष की भूमिका को आत्यंतिक रूप से महत्वपूर्ण बनाकर दूसरे पक्ष की भूमिका को पूरी तरह नजरअंदाज कर देना एक पक्षपातपूर्ण 'अप्रोच' होगा। कहना पड़ेगा कि गाँधी और उनके आंदोलनों के प्रति यशपाल इसी पक्षपातपूर्ण 'अप्रोच' के शिकार दिखाई पड़ते हैं।

यशपाल के विपरीत बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने 'मृत्युंजय' उपन्यास में असम की जनता पर गाँधी और उनके आंदोलनों के प्रभाव को बहुत ही स्पष्ट रूप से दर्शाया है। 'मृत्युंजय' उपन्यास में उपन्यासकार ने 'भारत छोड़ो आंदोलन' में भाग लेने वालों के मन में हिंसा-अहिंसा को लेकर चल रहे अंतर्द्वंद्व का चित्रण बहुत बारीकी से किया है। 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दौरान एक ओर असम की पराधीन जनता जहाँ गाँधी की अहिंसात्मक नीतियों से प्रभावित थी, वहीं दूसरी ओर अंग्रेजों के अत्याचार से पीड़ित जनता सुभाष चंद्र बोस की हिंसात्मक नीति को भी अपना रही थी। परिस्थियाँ कुछ ऐसी बन गईं कि गाँधी की अहिंसा नीति से प्रभावित जनता भी हिंसात्मक रुख अपनाने को मजबूर हो गई। उपन्यास में चित्रित पात्र धनपुर लस्कर और रूपनारायण को छोड़कर अन्य ज्यादातर पात्र, जैसे दैपारा सत्र के गोसाईं जी, सेवक मधु केवट, शिष्य जयराम, मणिक बरॉ, भिभिराम आदि सहज-सरल गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले लोग हैं, जिनके मन में हिंसा-अहिंसा, धर्म-अधर्म आदि को लेकर अदम्य अंतर्द्वंद्व निहित है। जीव हत्या को महापाप समझने वाले ये लोग अंग्रेज पुलिस अधिकारियों द्वारा असमिया जनता पर हो रहे अत्याचार को देख और स्वतंत्र राष्ट्र में सुखमय जीवन की कल्पना कर अहिंसा की नीति में विश्वास रखने के वावजूद भी हिंसा एवं रक्तपात की नीति को अपनाते हैं। उन्हें यह बात समझ में आने लगी थी कि जानवर को मारने के लिए जानवर बनना आवश्यक है। फलस्वरूप सेनापति गोसाईं जी अपने साथियों के साथ मिलकर बर्मा की सीमा की ओर रसद-पानी ले जा रही एवं गोरे फौजियों से भरी रेलगाड़ी को पलटने की योजना बनाते हैं। जैसे-जैसे वे लोग अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते गये, वैसे-वैसे ही उनके मन में हिंसा-अहिंसा का वह द्वंद्व और भी बढ़ता गया। यह द्वंद्व गोसाईं जी के इस कथन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है- "मैं ऐसा स्वीकार नहीं करता कि अहिंसापूर्वक युद्ध नहीं किया जा सकता। किया तो जा ही सकता है, पर हम नहीं कर पा रहे हैं। हाथ में खून सानकर हमने अपने को कुलषित कर लिया है। इस विषय में अब चुप रहना ही बेहतर है।"[11] समय की माँग को देखते हुए अपने मन में चल रहे अंतर्द्वंद्व को दरकिनार कर उन्होंने रेलगाड़ी पलटने के कार्य को सफलतापूर्वक पूरा किया। गोसाइऊ जी गाँधीवादी होने के बावजूद परिस्थिति के दबाव में हिंसात्मक नीति को जरूरी मानकर अपनाते हैं, परंतु कहीं-न-कहीं उनके मन में हिंसा-अहिंसा का अंतर्द्वंद्व अंत तक चलता रहता है। सम्भवतः इसी अंतर्द्वंद्व से मुक्ति पाने हेतु वे रेलगाड़ी पलटने के कार्य में सफल होने के बाद भी अपने साथियों को तो भागने को कहते हैं, पर खुद नहीं भागते। वे अपने मन में चल रहे अंतर्द्वंद्व से विकल होकर अपने मनोभावों को साथियों से साझा करते हुए कहते हैं- "एक बात और कहूँ, मेरे प्राण बुझ-से गये हैं। मेरा यह हाथ आदमी के खून से सना है। कितना असहनीय हो गया है यह मेरे लिए, कह नहीं सकता हूँ। मेरा विवेक साथ नहीं दे रहा है। दरअसल, मैं नैतिक द्वंद्व से ग्रस्त हो गया हूँ। झूठ बोलने से कोई लाभ तो है नहीं। मैं अहिंसा की लड़ाई को ही उत्तम मानता हूँ। सच्ची लड़ाई तो बस वही है।"[12] उपन्यास के पात्रों के मन में चल रहा यह अंतर्द्वंद्व असल में स्वयं उपन्यासकार के मन में चल रहा अंतर्द्वंद्व भी है। 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास में हिंसा-अहिंसा को लेकर कोई अंतर्द्वंद्व दिखाई नहीं देता, क्योंकि स्वयं यशपाल के मन में ऐसा कोई अंतर्द्वंद्व नहीं है।

जैसा कि इस लेख में पहले भी जिक्र किया गया है कि यशपाल की धारणा गाँधी के प्रति अत्यंत

नकारात्मक है। 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास में भी यशपाल ने गाँधी के बारे में अपनी मान्यता को स्पष्ट किया है। उपन्यास में उन्होंने गाँधी को राजनीतिज्ञ के रूप में नहीं, बल्कि जनता से दूर आत्मशुद्धि के लिए बार-बार अनशन करते दिखाया है। आंदोलन के दौरान गाँधी जिस आध्यात्मिकता और अहिंसा की बात करते हैं, उसकी कटु आलोचना करते हुए यशपाल अपने निबंध 'गाँधीवाद की शव परीक्षा' में लिखते हैं- "गाँधीवाद ने आध्यात्मिकता और अहिंसा का नाम देकर जिन घरेलू धंधों को पुनः चालू करने का प्रयत्न किया है उनकी विफलता इस कार्यक्रम की निस्सारता का अच्छा खासा प्रमाण है। गाँधी जी ने खद्दर को स्वराज्य मिलने की शर्त, और दरिद्र नारायण का उपकार करने वाला कार्यक्रम बताकर, जनता से करोड़ों रुपये लेकर इस काम में लगा दिए। तीस-चालीस वर्ष के प्रयत्न के बाद भी 'खद्दर' को आज भी जनहित का सफल कार्यक्रम नहीं कहा जा सकता। वह अमीरों के लिए देशभक्ति का जुर्माना बनकर ही रह गया है।"[13]

'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास में आंदोलन में भाग लेने वाले कई वामपंथी और समाजवादी युवक-युवतियाँ दिखाई देते हैं, परन्तु एक भी गाँधीवादी युवक या युवती उपन्यास में मौजूद नहीं है। यशपाल ने संभवतः यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि देश के युवावर्ग की गाँधी की अहिंसात्मक नीति में कोई आस्था नहीं है। उपन्यास में कम्युनिस्ट पात्रों ने गाँधी को 'साबरमती का कन्हैया'[14] , 'अहिंसक मेमने की खाल में एक फासिस्ट बाघ'[15] ,'हिंदुओ का पोप'[16] आदि नामों से संबोधित किया है। गाँधी के प्रति यशपाल की इस दृष्टि की आलोचना करते हुए प्रेम सिंह ने अपने एक लेख में लिखा है- "यशपाल ने गाँधी को गाँधी युग का सबसे बड़ा खलनायक सिद्ध करके 'इतिहास के पुनर्निर्माण' का अपना उद्यम पूरा किया है।"[17]

उपर्युक्त दोनों उपन्यासों के अध्ययन-विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि यशपाल और बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने क्रमशः उत्तर भारत और असम के कुछ खास हिस्सों में 'भारत छोड़ो आंदोलन' के प्रभाव और प्रसार का चित्रण बहुत ही बारीकी से किया है। निश्चय ही चित्रण की इस प्रक्रिया में दोनों रचनाकारों की अपनी-अपनी विचारधाराओं ने भी अपना काम किया है। विचारधारा की भिन्नता के कारण 'भारत छोड़ो आंदोलन' के प्रति और उसके प्रभाव के प्रति दोनों उपन्यासकारों के नजरिए में पर्याप्त अंतर दिखाई पड़ता है। निश्चित तौर पर इन दोनों उपन्यासों को एक साथ पढ़ने से 'भारत छोड़ो आंदोलन' के महत्व, उसमें गाँधी की भूमिका, अलग-अलग प्रान्तों में भारतीय जनता का उस आंदोलन से जुड़ाव आदि सवालों को और बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलती है।

संदर्भ :

1. सुमित सरकार, 'आधुनिक भारत', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018. : 405
2. प्रो. बिपिन चंद्र, 'भारत का स्वतंत्रता सग्राम', हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2011. : 437- 438
3. उद्धृत, डॉ. सागर बरूवा, 'भारतर स्वाधीनता संग्रामत असमर अवदान', जागरण साहित्य प्रकाशन, नगाँव, 2013, : 256
4. वही : 257
5. बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य, 'मृत्युंजय', डॉ. कृष्ण प्रसाद सिंह मागध (अनुवाद), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2013. : 9
6. वही : 115
7. यशपाल, 'मेरी तेरी उसकी बात', लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2018. :.418
8. वही : 548
9. वही : 549
10. वही : 549
11. बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य, 'मृत्युंजय' : 190
12. वही : 192-193
13. यशपाल, 'गाँधी की शव परीक्षा', लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2018 : 74
14. यशपाल, 'मेरी तेरी उसकी बात' : 292
15. वही : 290
16. वही : 294
17. प्रेम सिंह, क्रान्ति बनाम क्रान्ति (लेख), इंद्रप्रस्थ भारती पत्रिका (यशपाल विशेषांक), वर्ष-15, अंक-4, अक्टूबर-दिसंबर, 2003 : 273

❑❑❑

ISSN 2393-980X
शोध संविद
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ कुमारी कोमल
सहायक प्राध्यापक, हिंदी
एस.एम. कॉलेज, भागलपुर

आलोचना

विजयदेव नारायण साही का आलोचना-कर्म

साहित्य की अक्षय ऊर्जा का स्रोत अंतर्विरोधों की द्वंद्वात्मकता है। यह अंतर्विरोध हमारे समाज में अनादि काल से विद्यमान है, इसलिए साहित्य से सीधा जुड़ा हुआ है। साहित्यकार इसी नियति का सामना करता रहता है और साहित्य व्यक्तिगत सीमा का अतिक्रमण कर विशाल जनसमूह के हृदय का विस्तार बन जाता है। आलोचना साहित्य के इसी विस्तार के विविध पक्षों का मूल्यांकन करती है। आलोचना एक द्वंद्वात्मक एकता है जिसमें परस्पर न तो प्रशंसा होती है और न ही पूर्वग्रह निहित निंदा, अपितु एक सम्यक विवेचना होती है।

विजयदेव नारायण साही ने जब अपना सृजन कर्म आरंभ किया, वह साहित्य एवं समाज दोनों के लिए संक्रमण का काल था। साही जी ने अपनी रचना 1950 में प्रारंभ की थी। यह समय विदेशी भग्नावशेषों पर नए स्वाधीन भारत के निर्माण का काल था। यह स्वाधीन भारत के नवनिर्माण के लिए देखे गए सपने को आकार देने का समय था। नवनिर्माण से पूर्व एक युवा प्रतिभावान निर्माता अनिश्चितता की स्थिति एवं एक चिंतक की मुद्रा में रहता है और उस समय यह अनिश्चितता और बढ़ जाती है जब उसपर पहले से बेहतर कर डालने का अप्रत्यक्ष दबाव भी हो। भारत की सामाजिक राजनीतिक स्थिति 1950 के आसपास कुछ ऐसी ही थी।

साहित्य भी तथाकथित वैयक्तिकता से समाज और सामाजिक से वैयक्तिक हो रहा था। महत् की महिमा के पश्चात् लघु की गरिमा की स्थापना का प्रयत्न किया जा रहा था। मार्क्स और कम्युनिस्ट का नाम अपनी बुलंदी पर पहुँच कर प्रयोग में घुल-मिल गया। नए प्रयोग भी अपनी अन्विति के पश्चात् नयी कविता में पर्यवसित हो चुके थे। रचनात्मक आदान-प्रदान के साथ घात-प्रतिघात भी चल रहे थे। इसी परिस्थिति एवं साहित्यिक परिवेश में विजयदेव नारायण साही का रचनात्मक व्यक्तित्व निर्मित होता है।

'1943' में 'तारसप्तक' के प्रकाशन से साहित्य में प्रयोगवादी काव्यांदोलन का आरंभ माना जाता है। 'युगांत' या 'छायावाद का पतन' की तरह प्रगतिवाद के अंत की घोषणा तो नहीं की गई लेकिन 1943 से प्रयोगवाद और फिर नयी कविता का स्वर मजबूत होता चला गया। साहित्य में मार्क्सवादी चिंतन का जोर कम अवश्य हुआ पर साहित्य से इसकी गूंज समाप्त नहीं हुई। यद्यपि साही जी ने अपना लेखन कार्य बाद में आरंभ किया

था लेकिन एक सजग और संवेदनशील आलोचक उन अनुगूंजों का भी विश्लेषण करता है जिसमें रचना को प्रभावित करने की क्षमता होती है। 'मार्क्सवाद' ने रचना को और रचना के पश्चात् आलोचना को प्रभावित किया। इसके विस्तार से विवेचन साही जी ने अपने निबंध 'मार्क्सवादी समीक्षा और उसकी कम्युनिस्ट परिणति' में किया। "प्रवृत्तिवाद का विरोध न करना एक बात है और प्रवृत्तिवाद को ही साहित्यिक आलोचना का आधार और निर्णायक मानदंड मानना बिलकुल दूसरी बात है।"[1]

साहित्य और समाज का व्यापक संबंध है। साहित्य और समाज का पारस्परिक संबंध भी साही जी की आलोचना के क्षेत्र में आता है। पाँचवाँ दशक आते-आते साहित्य और राजनीति का संबंध काफी जटिल हो गया था। संबंधों की इस जटिलता के साथ आरंभिक काल में साहित्य और राजनीति के बीच की कड़ी का दिलचस्प वर्णन साही जी ने अपने निबंध 'राजनीति और साहित्य' में किया है। ग्रीक से आरंभ करते हुए वर्तमान तक की यात्रा की गई है। साहित्य का परिवेश, साहित्यकार का दायित्व, साहित्य में गतिरोध- इन प्रश्नों पर भी साही जी ने चिंतन किया है। "साहित्य सृजन का एक ऐसा दौर हो, जब प्रचुर मात्रा में साहित्य का प्रकाशन हो रहा हो, जनता उसे पढ़ रही हो, किंतु उस प्रचार और प्रसार के बीच भी साहित्य का स्तर सतही तथा उसकी दृष्टि एकांगी हो गई हो, उसमें मानवीय स्थितियों के गहन आध्यात्मिक संकट और मर्मस्पर्शी पीड़ाओं को छूने की शक्ति न रह गई हो, या साहित्य के सृजन पर व्यावसायिकता का भयानक प्रभाव पड़ रहा हो और फलस्वरूप उच्च स्तर की कृतियों के सृजन की अपेक्षा सस्ती और विकृत जनरुचि को संतुष्ट करने वाला साहित्य आकर्षक ढ़ंग से इस तरह सजा दिया गया हो कि उच्च स्तर के साहित्य की मूल सरस्वती धारा विलुप्त हो रही हो या शिल्प की सूक्ष्मताओं और पच्चीकारियों से समन्वित किंतु एक सुस्पष्ट भावपथ से विचलित विक्षुब्ध, चौंकाने वाला, शिल्प और चिंतन के अस्थायी फैशनों को अधिक महत्व देने वाला प्रभावयुक्त किंतु लक्ष्यभ्रष्ट साहित्य - ये सभी साहित्य में गतिरोध या गति विभ्रम के स्पष्ट उदाहरण हैं।"[2]

साहित्यकार द्वारा दायित्व के निर्वहन के मूल्यांकन से पूर्व उसके परिवेश का आकलन साही महत्वपूर्ण मानते हैं। "आज के लेखक ने अपने गहन उत्तरदायित्व को किस हद तक निभाया है और कहाँ तक उसने हिम्मत हार दी है इस पर निर्णय देने से पूर्व हमें उस परिवेश को देखना होगा जिसका पाश उसके चारों ओर रखना होगा जिनके ऊपर आज के युग के नेतृत्व का भार है। युग के अभिशाप अथवा वरदान को लेखक सबके साथ मिलकर झेलता है।"[3]

पूर्व स्थापित पीढ़ी और अपने अस्तित्व की स्थापना के लिए प्रयासरत युवा पीढ़ी में टकराहट कोई नयी नहीं है। शिरीष के फूल को देखकर हजारीप्रसाद द्विवेदी को भी ऐसा ही लगता है। "मुझे इनको देखकर उन नेताओं की बात याद आती है जो किसी प्रकार जमाने का रूख नहीं पहचानते और जब तक नयी पौध के लोग उन्हें धक्का मार कर निकाल नहीं देते हैं तब तक जमे रहते हैं। इसी समस्या को युग परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में साही भी विश्लेषित करते हैं। "यदि प्रिय सत्य कहना पिष्टपेषण और एकांगी हो जाए तो अप्रिय सत्य कहना धर्म हो जाता है। तुम्हारा सबसे बड़ा दोष यह है कि तुम आरंभ कर रहे हो और हमारी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हम समाप्त कर चुके हैं।"[4]

फाकामस्ती या आजीविका के लिए आश्रय साहित्यकार को यह प्रश्न सदा उद्वेलित करता है। ज्यादातर आलोचकों ने आश्रय को रचना की स्तरीयता का अवरोध माना है और रचनाकार से त्याग की आशा करते हैं। इस विषय पर साही ने स्पष्ट कहा है- "लेखक से यह आशा करना कि वह ऋषियों और ब्राह्मणों की भाँति अजीविका से निर्लिप्त होकर या केवल त्याग की जाज्वल्यमान कांति से पेट भर कर साहित्य रचना करेगा नितांत मूढ़ता है। जिस हद तक अजीविका की अनिवार्यता से साहित्येतर धंधों की नौकरी के लिए विवश होता है, वह दुख और सहानुभूति का विषय हो सकता है- व्यंग्य क्षोभ और ग्लानि का विषय तो कदापि नहीं हो सकता।"[5]

विजयदेव नारायण साही समकालीनता एवं आधुनिकता अर्थात् अपने समय के संदर्भ में साहित्य के मूल्यांकन के आकांक्षी थे। जिस आधुनिकता को सशंकित निगाहों से देखा जाता है उसे साही ने सहृदय

एवं तार्किक समीक्षक की निगाहों से देखा और विश्लेषित किया। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में चलने वाले विवादों पर भी उनकी दृष्टि थी। उनकी आलोचना के क्षेत्र में पत्रों में किए जाने वाले बहसों को भी स्थान मिला था। अर्थात् समसामयिक पत्रों पर भी उनकी सजग दृष्टि थी।

'कविता क्या है?' निबंध में शुक्ल जी ने कहा है "ज्यों-ज्यों' हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नए-नए आवरण चढ़ते जाएँगे, त्यों-त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, दूसरी ओर कवि-कर्म कठिन होता जाएगा।" कवि कर्म की कठिनाई और कुछ नहीं अभिव्यंजना में उत्पन्न होने वाली समस्याएँ है। छायावाद के पश्चात् साहित्यिक विधाओं में अभिव्यंजना के क्षेत्र में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग होने लगा था। समय के साथ यह प्रवृत्ति क्रमशः बढ़ने लगी। अभिव्यंजना के लिए स्वतंत्र शब्दों के प्रयोग पर साही जी ने स्वतंत्र निबंधों में अपना चिंतन स्पष्ट किया है। इसी विवेचन के क्रम में उन्होंने आँचलिकता का प्रश्न भी उठाया है। साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव की विवेचना तो मिश्रबंधुओं ने भी की और आलोचक रामचंद्र शुक्ल ने भी। पर इन सबसे अलग हटकर साही जी ने पाश्चात्य प्रभाव के संदर्भ में वर्तमान काव्य-भाषा की समस्या को उठाया। पाश्चात्य प्रभाव को साही दूसरी शब्दावली में 'अंग्रेजी का बोझ और हिंदी कविता की भाषा' भी कहते हैं। इन्होंने पाश्चात्य प्रभावों के संदर्भ में समकालीन काव्य-भाषा की विविध दिशाओं, संभावनाओं एवं सीमाओं को अपने विवेचन का विषय बनाया है।

साहित्यिक श्लीलता एवं अश्लीलता का प्रश्न भी साहित्य जगत के लिए अनुत्तरित रहा है। अनेक रचनाकार ने अपने परिवेश के अनुसार इनके मानक भी तय किए हैं। कुछ समय के पश्चात् ही वह मानक अमान्य भी हुआ। साही जी ने साहित्यिक अश्लीलता के प्रश्न की व्याख्या अमूर्त सिद्धांतों के मूर्त एवं व्यावहारिक परिणति के संदर्भ में किया है। सामान्य रूप से साहित्य का उद्देश्य भावनाओं का परिष्कार माना गया है। ये भावनाएँ अंततः हमारी भौतिक और जैविक क्रियाएँ हैं अर्थात् इन्द्रियजन्य व्यावहारिक क्रियाएँ। साहित्य इन्हीं क्रियाओं का परिष्कार करता है। यदि अमूर्त भावनाएँ अश्लीलता की परिचायक नहीं है तो इन्द्रियजन्य अभिव्यक्ति जो उन भावनाओं का मूर्त विधान है उसे एक सीमा तक तो अश्लील नहीं ही कहा जा सकता है। अब आवश्यकता है उस सीमा के निर्धारण की।

बीसवीं सदी के आरंभ में हिंदी और उर्दू को लेकर एक भाषायी विवाद आरंभ हुआ था। इस विवाद पर साही पुनः विचार करते हैं लेकिन विवाद के रूप में नहीं अपितु दोनों भाषा को परस्पर समीप लाने की कोशिश के रूप में। इस क्रम में उर्दू को बदलने की जो कोशिश हुई उसका भी अवलोकन करते चलते हैं। "पूरी साहित्यिक परंपरा के और शब्दचयन के सौंदर्यबोधी तर्क को सही परिप्रेक्ष्य में देखने पर हिंदी उर्दू का एकीकरण केवल वांछनीय ही नहीं अवश्यंभावी हो जाता है। जब मैं यह कहता हूँ कि हिंदी और उर्दू को निकट लाना चाहिए तो मेरा मतलब है कि इस द्विभाजन का अंत होना चाहिए।"[6]

साही ने काव्यपरंपरा में दलितों के योगदान को स्पष्ट करने के क्रम में भक्तिकालीन साहित्य को एक नवीन दृष्टि से देखा है। आगे चलकर आधुनिक काल के परिवेशगत बदलाव की प्रक्रिया का भी अध्ययन किया। बीसवीं सदी के मध्य में साहित्य अजनबीपन के अनावश्यक बोझ से दबा हुआ महसूस कर रहा था। यह अजनबीपन न तो गौतम बुद्ध के मन में उत्पन्न हुआ वैराग्य था और न ही अपने को दूर तक प्रेषित न कर पाने से उत्पन्न हुआ अकेलापन। यह अजनबीपन तो यूरोपीय ढंग के एलियनेशन का प्रेमपात्र बन चुका था। साही इसे यूरोपीय एलियनेशन के पर्याय के रूप में नहीं बल्कि अजनबीपन के भारतीय स्वरूप में स्वीकार करते हैं। बदलाव एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है। मानवीय चिंतन अपने परिवेशगत बदलाव से ही उत्पन्न होता है। साहित्य इसी परिवेशगत बदलाव अर्थात् मानवीय बदलाव की अभिव्यक्ति एवं व्याख्या दोनों है। "आदमी जैसा है, वैसा ही न रहे, वह बदले यह चिंता केवल आधुनिक साहित्य की ही नहीं है। प्राचीन साहित्य में भी वह रही, मध्यकालीन साहित्य में भी मिलती है- पुराने यूनान-रोम में भी और भारतीय साहित्य में भी।"[7]

यद्यपि आलोचक विजयदेव नारायण साही ने

अपनी आलोचना के क्षेत्र में मानवीय सरोकारों से जुड़े लगभग सभी साहित्य एवं साहित्येत्तर मूल्यों को समाहित किया है तथापि उनका मन सर्वाधिक रचना एवं रचनाकारों के अध्ययन, विश्लेषण और तत्पश्चात् उसका मूल्यांकन कर पूर्व निर्धारित तथ्यों का तार्किक खंडन एवं नवीन तत्वों को स्थापित करने में रमा है। और इसी खंडन मंडन में साही की आलोचना क्षमता अपनी पूर्णता पाती है। इसमें कवि भी हैं, उपन्यासकार भी हैं आलोचक भी।

कवि में एक ओर साही मध्यकाल से मलिक मुहम्मद जायसी को उठाते है तो दूसरी ओर आधुनिक काल में शमशेर बहादुर सिंह और रघुवीर सहाय तक पहुँचते हैं। इस क्रम में जयशंकर प्रसाद से लेकर अज्ञेय तक टकराते हैं। अगर वे जायसी को छूते हैं तो अन्य भक्तिकालीन कवि जैसे सूर, तुलसी, कबीर आदि को भी अछूता नहीं छोड़ते। वे सभी उनके अध्ययन के अंग बन जाते हैं। जायसी के अध्ययन के पश्चात् उसकी व्याख्या के क्रम में साही जी की पहली मुठभेड़ जायसी को गुमनामी के अँधेरे से निकालकर कवियों की त्रिवेणी में स्थापित करने वाले आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा जायसी के संबंध में स्थापित मान्यताओं से होती है। इन मान्यताओं की सूक्ष्म एवं सतर्क व्याख्या स्वत: ही साही द्वारा आचार्य शुक्ल की एक सम्यक् समीक्षा के रूप में प्रकट होती है।

आधुनिक काल के दुरूह समझे जाने वाले कवियों के कवि शमशेर हैं जिनकी नामवर सिंह ने भी सिर्फ बाहर ही बाहर परिक्रमा की है। "शमशेर की आत्मा ने अपनी अभिव्यक्ति का जो एक प्रभावशाली भवन अपने हाथों तैयार किया है। उसमें जाने में मुक्तिबोध को भी डर लगता था- उसकी गंभीर प्रयत्नसाध्य पवित्रता के कारण। इस पवित्रता का अहसास मुझे भी है और डर भी कम नहीं। अंदर जाने से उस पवित्रता में शायद खलल पड़े। इसलिए बाहर-बाहर की ही परिक्रमा। बाहर से अंदर की जो झलक मिल जाए उसी से संतोष करना पड़ेगा।"[8] पर साही बाहर से अंदर की झलक मात्र से संतुष्ट न होकर अंदर गए और शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट का कोना-कोना घूम आए और वह भी उनकी गंभीर प्रयत्नसाध्य पवित्रता को भंग किए बिना।

आधुनिक काल में मुख्यत: छायावाद के बाद साहित्य में लघुमानव की आयातित अवधारणा अस्तित्व में आई। आयातित कहना इसलिए युक्तिसंगत प्रतीत होता है क्योंकि हमारे यहाँ आरंभ से ही साहित्य में जब कोई नया तत्व था पूर्व प्रचलित विचार से अलग कोई भी विचार आता है तो उसकी प्रथम व्याख्या पाश्चात्य प्रभाव के रूप में ही की जाती है और फिर उसे भारतीय चिंतन पद्धति का स्वत: विकास साबित करने के लिए उसका उत्स संस्कृत काव्यशास्त्र में खोजने की परंपरा रही है। इस लघुमानव पर साही का चिंतन काफी महत्वपूर्ण है। "लघुमानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस (छायावाद से अज्ञेय तक)" साही के चिंतन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। विजयदेव नारायण साही अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' के कवि भी हैं और एक कवि हृदय जब आलोचना की ओर प्रवृत्त होता है तो उसकी आलोचना में जहाँ भावनात्मक गहराई होती है वहीं दूसरी ओर सैद्धांतिक और व्यावहारिक व्याख्या भी।

कविता के साथ-साथ साही ने कुछ उपन्यासों को भी अपनी आलोचना के केन्द्र में रखा है। इनमें 'गोदान' एवं 'अलग-अलग वैतरणी' का नाम आता है। इन उपन्यासों के अध्ययन के क्रम में साही की दृष्टि उनके रचनाकारों पर भी बनी रहती है। साथ ही आलोच्य दृष्टि अवश्य चली जाती है। अर्थात् कृति विशेष की आलोचना तथा अन्य कृतियों के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन एवं मूल्यांकन साथ-साथ चलता रहता था। कुछ ऐसी ही बात कृतिकारों के संबंध में भी सत्य है।

आलोचना के क्षेत्र में साही ने अपने मौलिक चिंतन के साथ प्रवेश किया। मार्क्सीय विचारधारा का संपूर्ण अध्ययन तत्पश्चात् उसका मौलिक चिंतन आलोचना के क्षेत्र में उनका प्रवेश मात्र था। साही जी का मौलिक चिंतन जितना मौलिक है उतना ही भावात्मक एवं तार्किक भी। इनमें एक आलोचक की तटस्थ तार्किकता है जिसके कारण वे शुक्ल जी की स्थापनाओं का खंडन करते हुए अपने तथ्यों की स्थापना करते हैं। विजयदेव नारायण साही की पुस्तक 'जायसी' हिंदी आलोचना में मील का पत्थर है। साही जी ऐसे आलोचक हैं जिन्होंने सुनियोजित तरीके से किसी पुस्तक की रचना नहीं की। उनकी आलोचकीय प्रतिष्ठा

का आधार निबंधों के रूप में बिखरे वे मोती है, जिन्हें उनके जीवन काल में एक सूत्र में पिरोया नहीं जा सका।

संदर्भ :

1. छठवाँ दशक, विजयदेव नारायण साही, हिंदुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1987 : 37
2. वही : 20
3. वही : 66
4. वही : 98
5. कल्पलता, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 9वाँ संस्करण–1983 : 24
6. छठवाँ दशक, विजयदेव नारायण साही : 104
7. वही : 134
8. प्रतिनिधि कविताएँ, शमशेर बहादुर सिंह, संपादक : नामवर सिंह, शमशेर की शमशेरियत (भूमिका) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

❑❑❑

ISSN 2393-980X
शोध संविद
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

व्यक्तित्व

❑ कुमारी अरुणा
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मगध महिला कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना

पद्मभूषण फादर कामिल बुल्के का हिंदी-प्रेम

हिन्दी की सेवा करने वाले साहित्यकारों की एक लम्बी शृंखला रही है। इसमें विदेशी साहित्यकारों ने भी अपनी विशिष्ट भूमिका निभाई है। पद्मभूषण डॉ. फादर कामिल बुल्के एक ऐसा ही नाम है जिन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के बल पर एक सच्चे और समर्पित हिन्दी सेवी के रूप में प्रसिद्धि पायी। बेल्जियम से ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करने भारत पहुँचे कामिल बुल्के को यहाँ की मिट्टी-पानी, भाषा, साहित्य और संस्कृति से इतना गहरा लगाव हो गया कि वे यहीं के होकर रह गए।

फादर कामिल बुल्के का जन्म 1 सितम्बर, 1909 ई. को बेल्जियम के वेस्ट फ्लैंडर्स के नॉकके हेइस्ट नगरपालिका के राम शैपेल में हुआ था। उनकी माता का नाम मारिया बुल्के था तथा पिता का नाम अडोल्फ था। उनका बचपन संघर्ष के बीच बीता। उन्होंने सिविल इंजिनियरिंग की पढ़ाई ल्यूवेन विश्वविद्यालय से की। 1930 ई. में बुल्के जेसुइट बन गए। 1932-34 में उन्होंने नीदरलैंड (हॉलैंड) के वल्कन बर्ग में धार्मिक-दार्शनिक प्रशिक्षण प्राप्त किया। जेसुइट सेमिनरी से लैटिन भाषा सीखने-पढ़ने के बाद वे ब्रदर बने। इसके उपरांत उन्होंने संन्यासी बनने का निश्चय किया। वे कई संस्थानों में अध्ययन करने के उपरांत भारत पहुँचे 1935 ई. में। वे संट जोसेफ कॉलेज, दार्जिलिंग में विज्ञान के अध्यापक बने। उन्होंने गुमला (झारखंड) में कुछ साल तक गणित भी पढ़ाया। 1940 ई. में वे पुरोहित बन गये। फादर कामिल बुल्के ने 1940 ई. में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से साहित्य विशारद की परीक्षा में सफलता प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने 1944 ई. में कलकत्ता विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में एम.ए. किया। भारत के स्वतंत्र होने के वर्ष 1947 ई. में फादर कामिल बुल्के ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. किया। फिर वहीं से 1950 ई. में डी.फिल् की उपाधि प्राप्त की। 1951 ई. में उन्होंने भारत की नागरिकता ले ली। 1950 ई. में वे संत जेवियर्स कॉलेज, राँची में प्राध्यापक नियुक्त किये गये। वे हिन्दी और संस्कृत विभाग के विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे। इस महाविद्यालय में वे 1977 ई. तक कार्य कर सेवानिवृत हुए।

फादर कामिल बुल्के का हिन्दी-प्रेम हमेशा उल्लेखनीय रहेगा। इस संबंध में उनकी भाषागत पृष्ठभूमि की चर्चा आवश्यक है। बेल्जियम में स्थानीय भाषा फ्लेमिश थी। इसके बावजूद वहाँ फ्रेंच भाषा का आधिपत्य था। फ्रेंच भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने का प्रचलन था। इसके विरोध में फ्लेमिश भाषा का आन्दोलन प्रारंभ

हुआ। कामिल बुल्के ने अपनी मातृभाषा के समर्थन में इस आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया। भारत आने पर उनको यहाँ भी उसी परिस्थिति का अनुभव हुआ। भारत में अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ता जा रहा था। मातृभाषा हिन्दी को स्थापित करने के लिए आम लोग और नेतागण प्रयास कर रहे थे। अंग्रेजों से प्रभावित लोग अपनी मातृभाषा के बदले अंग्रेजी को अत्यधिक महत्व दे रहे थे। फादर कामिल बुल्के ने लिखा है कि "प्रतिक्रिया स्वरूप मैंने हिन्दी पंडित बनने का निश्चय किया। यह निश्चय एक प्रकार से मेरे शोध कार्य की ओर प्रथम सोपान है।" (हिन्दी चेतना, पृष्ठ 31, जुलाई, 2009)

1938 ई. में कामिल बुल्के ने हिन्दी और संस्कृत का गहराई से अध्ययन किया। उन्होंने पंडित बदरीदत्त शास्त्री जी के मार्गदर्शन में पढ़ाई की। इस क्रम में उन्होंने रामचरितमानस और विनय पत्रिका का भी गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया। इसके बाद ही वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम और संत तुलसीदास के भक्त बन गये। बुल्के जी ने स्वयं स्पष्ट किया है कि "जब मैं अपने जीवन पर विचार करता हूँ तो मुझे लगता है कि ईसा, हिन्दी और तुलसीदास- ये वास्तव में मेरी साधना के तीन प्रमुख घटक हैं और मेरे लिए इन तीन तत्वों में कोई विरोध नहीं, बल्कि गहरा संबंध है।" (वही, पृष्ठ 33)

बुल्के जी ने ईसाई होने के बाद भी राम, तुलसी और हिन्दी को आत्मसात कर लिया। यह कार्य अद्‌भुत और अपने आप में एक उदाहरण है। उनके हिन्दी-प्रेम का एक मजबूत उदाहरण है कि उन्होंने लार्ड थॉमस मैकाले के हिन्दी और अन्य भाषाओं को कमजोर मानने की धारणा को भी ध्वस्त करने का प्रयास किया। मैकाले का मानना था कि विश्व का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान अंग्रेजी भाषा और यूरोपीय सभ्यता में ही केन्द्रित है। वह भारत के ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता तथा संस्कृति को अच्छी दृष्टि से नहीं देखता था। उसने हिन्दी तथा अन्य देशी भाषाओं के बदले शिक्षा का माध्यम, अंग्रेजी करने की योजना का कार्यान्वयन कराने में सफलता प्राप्त की। मैकाले की शिक्षा नीति के कारण परतंत्र भारत के लोगों का भारी नुकसान हुआ। उसका उद्देश्य था कि ऐसा होने से आनेवाली पीढ़ी पूरी तरह उनके प्रभाव में आ जायेगी। इसके सौ साल बाद 26 वर्षीय युवक कामिल बुल्के ने भारत आकर ईसाई धर्म के प्रचार के क्रम में भारत की विशिष्टताओं को जाना। उन्होंने अपना पूरा जीवन अपनी कर्मभूमि के लिए समर्पित कर दिया। उन्होंने भारत और भारतीयता को समझने के लिए ज्ञान विस्तार कर कई भाषाओं का अध्ययन किया। फादर कामिल बुल्के ने हिन्दी और संस्कृत का गहन ज्ञान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अवधी, ब्रज, प्राकृत, पालि, अप्रभंश आदि भाषाओं को मनोयोगपूर्वक सीखा। उनको फ्लेमिश, फ्रेंच, अंग्रेजी, जर्मन, लैटिन सहित अन्य भाषाओं का भी ज्ञान था।

फादर कामिल बुल्के ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपने गुरु डा. धीरेन्द्र वर्मा की प्रेरणा से डा. माता प्रसाद गुप्त के निर्देशन में *'रामकथा : उत्पति और विकास'* विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि भारत के विश्वविद्यालयों में पी-एच.डी. की उपाधि के लिए शोध प्रबंध अंग्रेजी में लिखे जाते थे। कामिल बुल्के ने अपना शोध प्रबंध हिन्दी में लिखकर जमा किया। उनके हिन्दी प्रेम के प्रति समर्पण के कारण तत्कालीन कुलपति डा. अमरनाथ झा ने नियम परिवर्तन कर ऐसा करने की सुविधा दी। तबसे हिन्दी भाषा में शोध प्रबंध जमा करने की अनुमति दे दी गयी। शोधकर्त्ता फादर कामिल बुल्के और शोध निर्देशक डा. माता प्रसाद गुप्त का जन्म वर्ष 1909 ई. होना भी संयोग है।

राँची में फादर कामिल बुल्के अध्ययन-अध्यापन, लेखन और शोध कार्य में सक्रिय रहे। उनके निर्देशन में शोध कार्य करनेवाली डा. सुधा अरोड़ा लिखती हैं कि "शादी के बाद जब मैं पति के साथ उनसे मिलने गयी तो उनका अपनत्व और स्नेह पाकर हम दोनों ही द्रवित हो गये। उनकी आंखों में आँसू आ गये और पति से बोले, 'मैं तुम्हारा ससुर नहीं हूँ पर ये मेरी बेटी जरूर है, इसे शोध पूरा करना है।" (फादर बुल्के कुछ खट्टी-मीठी यादें- डा. सुधा अरोड़ा, दैनिक जागरण, सप्तरंग, पृष्ठ 12, सोमवार 27 अगस्त, 2018)

कामिल बुल्के हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आशावान ही नहीं, सजग और सक्रिय भी थे। उन्होंने अपनी सृजनशीलता का परिचय देते हुए दो दर्जन से अधिक पुस्तक-पुस्तिकाओं का लेखन किया। उनकी

कृतियों की कुल संख्या 29 है। उनकी पुस्तकों में रामकथा के बाद 'अंग्रेजी हिन्दी कोश', 'हिन्दी अंग्रेजी कोश', 'रामकथा और तुलसीदास', 'मानस कौमुदी', 'मुक्तिदाता', 'नीलपंछी' प्रमुख हैं। उन्होंने बाइबिल का हिन्दी में अनुवाद भी किया। ईसा मसीह के जीवन पर भी लिखा। उनकी रचनाओं की संख्या संतोषजनक है। उनके राँची स्थित निवास 'मानरेसा हाउस' में ही उनका निजी पुस्तकालय था। फादर कामिल बुल्के हिन्दी के प्रति समर्पित थे। वे चाहते थे कि हिन्दी का विश्वव्यापी प्रचार हो तथा हिन्दी को विश्व स्तर पर समुचित स्थान मिले। उनका मानना था कि दुनिया भर में शायद ही कोई ऐसी विकसित साहित्य की भाषा हो जो हिन्दी की सरलता की बराबरी कर सके। उनका यह भी विश्वास था कि ज्ञान-विज्ञान के किसी विषय की संपूर्ण अभिव्यक्ति हिन्दी में संभव है। हिन्दी भाषा की क्षमता पर उन्हें पूर्ण विश्वास था। बुल्के जी यह भी मानते थे कि अंग्रेजी पर आश्रित रहने की धारणा निरर्थक है। वे हिन्दी को सर्वप्रमुख भाषा बनाने के समर्थक थे। उनका विश्वास था कि हिन्दी दुनिया में अपना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने में निश्चित रूप से सफल होगी। फादर बुल्के ने भारत और पाश्चात्य जगत को भावनात्मक रूप से जोड़ने का महत्वपूर्ण प्रयास किया।

फादर कामिल बुल्के हिन्दी को अपनी माँ (माता), मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को अपना आदर्श और स्वयं को वाल्मीकि एवं तुलसी का भक्त मानते थे। वे सरल, सहृदय और सहयोग करनेवाले व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व में दया, करुणा और प्रेम का विशाल भाव था। उनके संत व्यक्तित्व का प्रभाव लोगों के हृदय पर पड़ता था। उनकी मानवता दृष्टि जबर्दस्त थी। जब कोई उनसे अंग्रेजी में बात करना चाहता तो वे उससे हिन्दी में ही बात करते। हिन्दी भाषा से प्रेम करना उनके व्यक्तित्व की अनोखी विशेषता रही है। वे हिन्दी की सेवा में आजीवन सक्रिय रहे। वे मूल्यपरक साहित्य सृजन के समर्थक थे।

फादर कामिल बुल्के को कई संस्थाओं ने सम्मानित किया। वे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद की कार्यकारिणी सभा के सदस्य बनाये गये थे। वे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी और बेल्जियन रॉयल अकादमी के सदस्य भी रहे। बुल्के जी ने भारत में 47 साल तक समय व्यतीत किया। उन्होंने 1950 से 1977 तक कॉलेज में अध्यापन कार्य किया। साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान करने के लिए फादर कामिल बुल्के को 1974 ई. में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। जिस प्रकार वे डा. धीरेन्द्र वर्मा, डा. माता प्रसाद गुप्त, महादेवी वर्मा जैसे व्यक्तित्व से प्रभावित हुए थे, उसी प्रकार उनके व्यक्तित्व से भी कई लोग प्रभावित होकर साहित्य सृजन में लग गये। स्वयं हिन्दी सेवा कर अन्य लोगों को हिन्दी की सेवा करने के लिए प्रोत्साहित करना उनके हिन्दी प्रेम का ही उदाहरण है। जीवन-मूल्यों का विकास ही सद् साहित्य का उद्देश्य होता है। इस कारण फादर कामिल बुल्के जैसे व्यक्ति साहित्य को सार्वकालिक और सार्वभौमिक बनाने के लिए, मानवता को जीवित रखने के लिए और नैतिकता को मजबूती प्रदान करने के लिए सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की भावना पर बल देते हैं।

"हिन्दी के सच्चे पुजारी, रामकथा के मर्मज्ञ, एक सहज व्यक्तित्व के धनी फादर कामिल बुल्के हिन्दी विश्व मंच पर सम्मान के साथ हमेशा याद किये जाते रहेंगे। विश्व के कई हिस्सों में बाबा कामिल बुल्के का जीवन हिन्दी प्रेमियों के लिए प्रेरणास्त्रोत है।" (डा. सुधा अरोड़ा, दैनिक जागरण, पृष्ठ 12, 27 अगस्त 2018)

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि विदेशी होने के बाद भी फादर कामिल बुल्के का जीवन हिन्दी प्रेम से लबालब रहा। उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से हिन्दी को समृद्ध करने का अमूल्य योगदान किया। 1 सितंबर, 1909 से 17 अगस्त, 1982 तक के अपने जीवन में उन्होंने मानव धर्म के साथ हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारत में उनकी हिन्दी सेवा के लिए यहां के हिन्दी प्रेमी पद्मभूषण फादर कामिल बुल्के को हमेशा याद करेंगे।

संदर्भ :

1. हिन्दी चेतना, जुलाई, 2009

2. दैनिक जागरण, 27 अगस्त 2018

❑❑❑

ISSN 2393-980X

SHODH SAMVID

शोध संविद

Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.

An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal

https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ महेन्द्र नेह

80, प्रताप नगर, दादाबाड़ी

कोटा, राजस्थान - 9

मो. 9414176444

पुस्तक समीक्षा

दलित समुदाय की प्रगति की राह बनाता नाटक 'मंदिर से अस्पताल'

प्रो. सुरेश चंद्र जी अलीगढ़ के धर्मसमाज महाविद्यालय में अपना अध्यापन कार्य करते हुए मणिपुर विश्वविद्यालय, इम्फाल में प्राध्याक हुए। वहाँ हिन्दी विभाग के अध्यक्ष बने। हिन्दी की सेवा करते-करते यहीं से असम विश्वविद्यालय, सिलचर के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर के रूप में पहुँचे। वर्तमान में दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार में हिन्दी विभागाध्यक्ष के साथ-साथ भाषा एवं साहित्य पीठ के डीन भी हैं। आप देश के विभिन्न संस्थानों से ये कई बार सम्मानित भी हो चुके हैं। हाल में ही इनका "मन्दिर से अस्पताल" नामक नाटक प्रकाशित हुआ है।

केवल दलित-साहित्य में ही नहीं, साहित्य की अन्य विधाओं में जिन रचनाकारों ने विपुल काम किया है, उनमें प्रो. सुरेश चन्द्र का नाम सम्मान के साथ लिया जा सकता है। यद्यपि उनकी प्रतिभा का निखार उनके विभिन्न शोध कार्यों में ही उभर कर आया है, किन्तु उन्होंने काव्य एवं नाटक लेखन में भी कई उल्लेखनीय पुस्तकों द्वारा यह सिद्ध किया है कि उनका लेखन एकांगी नहीं है। प्रोफेसर सुरेश चन्द्र जी का 'मन्दिर से अस्पताल' नवीनतम नाटक है। हालाँकि इससे पहले भी प्रो. सुरेश चन्द्र के चार नाटक प्रकाशित हो चुके हैं।

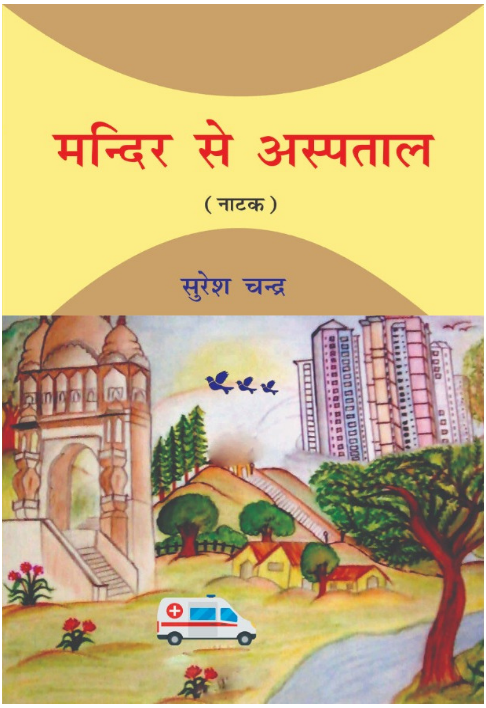

मंदिर से अस्पताल

लेखक : प्रो. सुरेश चंद्र

'मन्दिर से अस्पताल' नामक नाटक प्रो. सुरेश चन्द्र का साहित्य संस्थान, गाजियाबाद से वर्ष 2021 ई. में प्रकाशित हुआ। यह स्पष्ट है कि इस दौर में लिखी गई कोई भी रचना हो वह कोरोना काल की विभीषिका से मुक्त नहीं हो सकती। अपने प्राक्कथन की शुरुआत में ही लेखक अपने मंतव्य को स्पष्ट कर देते हैं-जीवन बचाने के लिए हमें अस्पताल बनाने हैं। विज्ञान हीन आडम्बर जीवन से विलगाने हैं। जाहिर है कि रहस्यवादी कलावादी लेखकों की तरह लेखक का उद्देश्य अपने पाठकों को उलझाना नहीं, अपितु जीवन के वर्तमान विज्ञान सम्मत यथार्थ को जनता की सीधी-सादी भाषा में व्यक्त करना है। 'मन्दिर से अस्पताल' एक फुल लेंथ प्ले है। इसका प्रत्येक अंक विभिन्न दृश्यों से परिपूर्ण है, जिनमें रूढ़िवादिता पर चोट करते 19 पुरुष व 6 स्त्री पात्र आगे बढ़ते हैं। 102 पृष्ठ के इस नाटक में पठनीयता अन्त तक बनी रहती है।

नाटक का आरम्भ सूरजपाल सिंह की बुद्ध नगर स्थित सिविल लाइन की कोठी से होता है। सूरजपाल चौहान पी.सी.एस. अधिकारी हैं। तबादले की खबर सुनकर कॉलोनी के सफाईकर्मी महावीरी और उनका पति कामनाथ, चौहान साहब से मिलने आते हैं। चौहान साहब उन्हें घर के अन्दर ड्राइंग रूम में सोफे पर सम्मानपूर्वक बैठाते हैं। कामनाथ के संकोच को तोड़ते हुए चौहान साहब कहते हैं कि मैं भी दलित जाति से हूँ। बातचीत के दौरान कामनाथ उन्हें बताता है कि मेरे पिताजी की सीवर लाइन की सफाई करते समय मृत्यु हो गई, इसलिए मैं आठवीं कक्षा से आगे नहीं पढ़ पाया।

कामनाथ भी सफाई का काम करता है। एक दिन वह भी सीवर लाइन में सफाई का काम करते हुए अन्दर गिर जाता है। उसके सहकर्मी उसे निकालते हैं। बेहोशी की हालत में एक निजी चिकित्सक से उसका उपचार कराने का प्रयास करते हैं। डॉक्टर की पत्नी उन्हें झिड़कते हुए कहती हैं कि डॉक्टर साहब अभी पूजा कर रहे हैं। सहकर्मी कामनाथ को सरकारी अस्पताल ले जाते हैं, जहाँ उसकी मृत्यु हो जाती है। दूसरे दिन अखबार में खबर पढ़कर सूरजपाल चौहान कामनाथ के घर आते हैं। मना करने पर भी उनकी पत्नी को आर्थिक सहायता करते हैं। वे महावीरी से कहते हैं कि कामनाथ की मृत्यु पर जो सरकारी सहायता मिले, उससे अपना पक्का मकान बनाना। शेष धनराशि से बेटी करुणा के पढ़ने पर खर्च करना।

महावीरी की बेटी करुणा पढ़-लिख कर अपने जीवन का ध्येय दलित समाज की सेवा के साथ-साथ उन्हें अशिक्षा की दलदल से निकालने का बनाती है। कालान्तर में वह बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर समाज के पढ़े-लिखे लोगों से मिलकर एक ऐसा समाज बनाने में जुट जाती है जिससे महात्मा फुले, साहूजी महाराज और बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों के आधार पर एक समतावादी समाज की कल्पना को साकार रूप दिया जा सके। डॉ. सूर्य प्रकाश भास्कर, प्रो. दीपक, ज्ञानेश, प्रसन्न वाल्मीकि, सुषमा जाटव, आनन्द गाडगे, पूनम पासी, सत्यभान आदि के साथ करुणा बौद्ध अनेक संगठनों और संस्थाओं के माध्यम से दलित समाज की प्रगति के काम करती है।

करुणा बौद्ध महात्मा बुद्ध और फुले-आम्बेडकरी विचारों के प्रसार में दिन-रात एक करके वे मनुवादी संस्कृति के स्थान पर बहुजन समाज की संस्कृति पर शोध करते हुए एक नई संस्कृति के निर्माण में लग जाती है। वह अपसंस्कृति, कुरीतियों और पिछड़े हुए विचारों के मुकाबले वैज्ञानिक और तर्कसंगत विचारों को दलित समाज के उत्थान और प्रगति का माध्यम बनाती है। दलित समाज को प्रगति की सही दिशा में ले जाने के प्रयत्नों में करुणा बौद्ध अपनी टीम के साथ शिद्दत से जुट जाती है।

प्रो. हरि प्रताप सिंह अन्त्योदय विश्वविद्यालय के कुलपति हैं। सुविद्या कुरील गाँव की प्रधान होने के नाते कुलपति महोदय से विश्वविद्यालय परिसर में अस्पताल सहित मेडिकल कॉलेज बनाने का अनुरोध करती हैं। पर कुलपति महोदय अस्पताल की जगह मन्दिर को अधिक महत्व देते हैं। कुलपति की दिलचस्पी न होने पर सुविद्या कुरील स्वयं ही करुणा बौद्ध और अन्य समर्थ दलित जनों के सहयोग से अस्पताल बनवाने का सपना पूरा करती है। समाज चेतस दलित जनों की टीम बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर जी के जन्म दिवस के अवसर पर समाज को एक ऐसा दलित सुपर फेसिलिटी अस्पताल संग्रामपुर में निर्माण करके समाज को समर्पित करती है जिसकी सेवाएँ मात्र दलित समाज तक ही

सीमित न होकर सम्पूर्ण मानव जाति के लिए खोल दी जाती हैं। उद्घाटन के अवसर पर जय भीम के नारे भी लगते हैं। अस्पताल बनवाने में करुणा बौद्ध व उसकी टीम का विशेष सहयोग रहा। अस्पताल विश्वविद्यालय से सटा हुआ है। उधर विश्वविद्यालय परिसर में कुलपति महोदय एक छोटे से कमरे में हेल्थ सेन्टर शुरू कर देते हैं। धर्म के चक्कर में जो हेल्थ सेन्टर में सुविधाएँ होनी चाहिए थी वे भी कुलपति महोदय इसमें उपलब्ध नहीं करा पाते। वहीं मन्दिर बनवाने में अधिक रुचि लेते हैं।

कोरोना की लहर शुरू होने पर कुलपति महोदय हेल्थ सेन्टर के डॉ. शेखर सिंह से पूछते हैं, मुझे कोरोना तो नहीं है। डॉक्टर पूछता है क्या आपको खाँसी, जुकाम, सिरदर्द के अतिरिक्त बुखार है? उत्तर में कुलपति महोदय न में उत्तर देते हैं। तो क्या आप बाहर गये थे? नहीं, हाँ मन्दिर में पूजा करने मैं रोज जाता हूँ। यह वार्तालाप कुलपति के बँगले पर होता है। फिर डॉक्टर मन्दिर के पुजारी से फोन पर कोरोना के बारे में पूछते हैं। डॉक्टर के पूछने पर सिर दर्द, बुखार, खाँसी के साथ जुकाम बताते हुए पुजारी के हाथ से फोन गिर जाता है। कुलपति महोदय डॉक्टर से कहते हैं इसकी तुरन्त जाँच कराओ। पुजारी के कोरोना पॉजिटिव हो जाने पर डॉक्टर कहते हैं इलाज के लिए तो बराबर में बने दलित सुपर फेसिलिटी अस्पताल में ही जाना होगा। इसी बीच कुलपति से डॉक्टर कहते हैं सर आपने मन्दिर की जगह एक अच्छा अस्पताल बनवाया होता तो यह नौबत न आती। इसी कशमकश में नाटक का अन्त हो जाता है।

नाटक कोरोना के संकट काल में मन्दिर निर्माण करने की प्रभु वर्ग की नीति पर प्रहार करते हुए अस्पताल बनाये जाने की जन पक्षधर सोच को तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत करने में प्रो. सुरेश चन्द्र सफल होते नजर आते हैं। आज मन्दिर की जगह अस्पताल बनाये गये होते तो आज अस्पतालों का टोटा न होता। देश में विज्ञान को कम अंधविश्वास को अधिक महत्व दिया गया है। नाटक की भाषा सरल है पर इसके संवाद लम्बे हैं। पात्रों द्वारा संवादों को थोड़ा छोटा कर दिया जाये तो यह अधिक प्रभावकारी सिद्ध हो सकता था। इस नाटक की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इसके पात्र दलित साहित्य के अन्य पात्रों की तरह गाली-गलौच न करते हुए शालीन भाषा में संवाद करते हुए नाटक की कार्यशैली को आगे बढ़ाते हैं। आशा है कि प्रोफेसर सुरेश चन्द्र का यह नाटक दलित समुदाय को पिछड़ेपन से निकालकर शिक्षा और प्रगति की राह की ओर ले जाने में अपनी भूमिका का निर्वाह करेगा।

❑❑❑

ISSN 2393-980X
SHODH SAMVID
शोध संविद
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ विजेता मीनाक्षी तिड़ू
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग
राँची महिला महाविद्यालय, राँची विश्वविद्यालय, राँची

आलेख

सामाजिक न्याय का दर्शन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही रहता है। अतः उसे सामाजिक न्याय प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। सामाजिक न्याय एक ऐसा बंधन है जो मानव समाज को एकता के सूत्र में बांधता है। यह व्यक्तियों के पारंपरिक तालमेल का हिस्सा है जिससे प्रत्येक में अपनी शिक्षा-दीक्षा एवं प्रशिक्षण के अनुसार व्यक्तिगत सदगुण का विकास होता है और सामाजिकता का भी। इसके द्वारा राज्य तथा उसके सदस्यों का समान रूप से हित साधन होता है।

व्यवहारवादी विचार के अनुसार न्याय का जन्म शक्तिशाली व्यक्तियों की स्वार्थी आकांक्षाओं से दुर्बलों की रक्षा करने के लिए हुआ। अतः न्याय एक कृत्रिम वस्तु है। कानून और न्याय दोनों ही अप्राकृतिक हैं। यह शक्तिशाली व्यक्तियों के स्वाभाविक हितों के विरोध में होते हैं और दुर्बल व्यक्तियों के हितों का समर्थन करते हैं।

सुकरात ने कानून को अत्यधिक पवित्र एवं महत्वपूर्ण मान वह कानून को एक प्रकार का समझौता मानता था। उसका विचार था कि कानूनों में मानव समाज की बौद्धिक अनुभूतियों की मात्रा संचित रहती है और उन्हें पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्तव्य होना चााहिए। सुकरात के पहले युनान में जो सोफिस्ट विचारक थे उनका कानून में विश्वास नहीं था। वे कानून की काल्पनिक और अभौतिक मानते थे जो मानवीय आचरण के पथ-प्रदर्शन के लिए कानूनों को प्रमुखता देता है। वे कानून को ईश्वर का आदेश समझते थे। उनकी दृष्टि में कानून सर्वोच्च और सबके लिए मान्य था। वे शासन और शासित प्रजा दोनों का कानून के अधीन मानते थे। उनका कहना था कि कानून नागरिकों के कार्य की सुविधा के लिए स्वीकृत समझौता है जिसके बाहर न तो वे कार्य कर सकते है और न ही उसके विपरीत जा सकते हैं। सुकरात सत्य की रक्षा के सभी कानूनों का प्रबल समर्थक था। कानून के अतिरिक्त अन्य किसी नियम को सुकरात ने प्राकृतिक नियम नहीं माना।

प्लेटो का मत है कि न्याय मानव-आत्मा का एक आन्तरिक गुण है। जिसका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने समाज का अधिकतम हित साधन कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्य को खोजने और उसका

अनुपालन में अपना सर्वस्व लगा देना चाहिए, साथ ही दूसरों के कार्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप भी नहीं करना चाहिए। प्लेटो की न्याय भावना व्यक्ति की आन्तरिक इच्छा की अभिव्यक्ति मात्र है। प्लेटो ने प्रत्येक व्यक्ति को आत्मा में तीन नैसर्गिक प्रवृतियों को निवास माना है - 1. ज्ञान (Knowledge), 2. आत्मा (Spirit) और 3. भूख (Appetite)। मनुष्य की आत्मा के ये तीन तत्व अपने-अपने कार्यक्षेत्रों की सीमाओं में रहते हुए अपने-अपने कार्य सम्पादित करते रहते हैं जो मानव व्यक्तित्व में एकता की स्थापना करते हैं। यदि इन तीनों तत्वों को किसी एक व्यक्ति की आत्मा में समन्वित किया जा सके तो वह व्यक्ति न्यायी बन जाएगा। जिस व्यक्ति में ज्ञान की प्रधानता होती है वह शासन कार्य का संचालन कुशलतापूर्वक कर सकता है। इसी प्रकार जिन व्यतियों में भूख या क्षुधा की प्रधानता रही है वे उत्पादन कार्य अच्छे ढंग और सरलता से कर सकते हैं। यदि दार्शनिक शासक अपना कार्य निष्पक्ष ढंग से सम्पादित कर सके तो सैनिक लोग भी युद्ध क्षेत्र में उत्साहित होकर आत्म त्याग के लिए तैयार रह सकेंगे। इसी प्रकार उत्पादक वर्ग द्वारा कठोर श्रम करने पर यदि उपभोग की वस्तु का उत्पादन अधि क हो तो समाज में संतुलन और समन्वय का जन्म होगा। प्लेटो की मान्यता के अनुसार उत्पादकों, सैनिकों एवं शासकों के तीनों वर्ग सुचारू रूप से अपना अपना कार्य करें तो एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं होंगे और सम्पूर्ण समाज में न्याय की स्थापना हो सकेगी। सामाजिक न्याय की चर्चा करते हुए प्लेटो ने लिखा है कि राज्य के अंतर्गत शासन रक्षक और कृषक तीनों ही वर्गों को अपना अपना कार्य एक दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप किए बिना करते रहना चाहिए।

क्योंकि, एक व्यक्ति एक समय पर एक ही कार्य अच्छे से और अधिक मात्रा में कर सकता है। आदर्श राज्य में प्रत्येक वर्ग के कार्य निर्धारित हैं और सामाजिक न्याय प्रत्येक सदस्य से अपेक्षा करता है कि वह दूसरे सदस्यों के कार्य में हस्तक्षेप न करे। प्लेटो का सामाजिक न्याय सामाजिक एकता का सिद्धांत है। कार्यों और गुणों के आधार पर विभाजित समाज के तीनों वर्ग भिन्न होते हुए भी उनमें सामंजस्य स्थापित करना ही सामाजिक न्याय की स्थिति है। अरस्तू के अनुसार न्याय समस्त गुणों का समूह है। उसके अनुसार न्याय दो तरह का है। एक सामान्य न्याय जिसका संबंध पड़ोसी के प्रति किए जाने वाले भलाई के सभी कार्यों से है। सामान्य न्याय में नैतिक गुण अच्छाई के काम आता है। अच्छाई के सभी कार्य को ही अरस्तू सामान्य न्याय समझता है। दूसरा विशेष रूप में है। इसका अर्थ यह है कि जिस व्यक्ति को जो मिलना चाहिए उसकी प्राप्ति इस कोटि में आती है। अरस्तू के अनुसार जो योग्य है उनको ही उसकी योग्यता के अनुसार पद, स्थान या सम्मान मिलना चाहिए। सम्मानीय पदों पर किसी वर्ग विशेष को दिया जाना ही राज्य में गंभीर दोष उत्पन्न करने कि भूमिका तैयार करना है। उनका कहना है कि न्याय के अनुसार धन, स्वतंत्रता एवं समानता आदि को आधार न मानकर सदगुण को आधार मानना चाहिए। उनका मानना है कि हम एक गुणशाली व्यक्ति में हर प्रकार के गुण प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह देखना चाहिए कि व्यक्ति नें सामाज के लिए क्या किया है। इस आधार पर सदगुणी व्यक्ति को आसानी से खोजा जा सकता है जिसमें नैतिक, बौद्धिक एवं सैनिक आदि सभी तत्व मिल जाएंगे। इस तरह राज्य के पदों को गुणों के आधार पर विभक्त करना चाहिए।

अरस्तू की तरह सिसरो भी मनुष्य को सामाजिक प्रवृतियों से पूर्ण मानता है। जहाँ पर अरस्तू मानव स्वभाव को असमान मानता है; वहीं सिसरो को उसमें समानता का दर्शन होता है। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा कोई समाज नहीं होता जो सर्वथा गुणहीन हो या गुणों की प्राप्त करने की क्षमता नहीं रखता हो। उसी के आधार पर वह दासता को अवास्तविक और कृत्रिम बतलाता है। इसी मानव की समानता के आधार पर उसने विश्व एकता और विश्व-बन्धुत्व के संबंध में विचार प्रकट किया। सिसरो के शब्दों में कोई भी वस्तु किसी अन्य वस्तु के साथ मनुष्य को पशुओं से ऊँचा उठाने वाली बुद्धि सबमें समान रूप से पायी जाती है। यह इसका पर्यात प्रमाण है कि मनुष्य में कोई अंतर नहीं होता।

सेनेका के अनुसार नागरिक राज्य का आधार कानून और राजनीति है; जबकि समाज का आधार ध र्म और नैतिकता है। यूनानियों का कानून धर्म नैनिकता

के आदर्शों पर आधारित था। इसके विपरीत रोमन विधिवेत्ताओं ने उसे धर्म और नैतिकता के प्रभाव से अलग करके मानवीय और वैधानिक रूप प्रदान किया और विश्व को यह बतलाया कि कानून सर्वोच्च शासक को आदेश है जो राजनीतिक दृष्टि से संगठित समाज के सदस्यों की इच्छा को प्रकट करना और इसलिए समाज को प्रत्येक सदस्य उसको मानने के लिए बाध्य है।

संत ऑगस्टाइन के अनुसार धर्म या न्याय समाज की विभिन्न इकाईयों– परिवार, राज्य सम्प्रदाय आदि – के बीच व्यवस्था बनाए रखने के उदेश्य से प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपना कर्तव्य पालन करने की धारणा में धर्मवान और न्यायशील है। अतः इसके लिए धर्म अथवा न्याय सामाजिक व्यवस्था की प्रतीक हैं। इस व्यवस्था की स्थापना राज्य द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार ही करना चाहिए। संत ऑगस्टाइन का कहना है कि राज्य में एक अन्य संस्था सर्वोच्च है और वह सर्वभौम समाज जिसका प्रत्येक मनुष्य सदस्य होता है। धार्मिक उदेश्य की पूर्ति राज्य द्वारा एक अंश तक ही होती है तथा उसकी सम्पूर्ण पूर्ति सार्वभौम सभा के माध्यम से ही सम्भव है जिसका आधार शाश्वत एवं चिंतन कानून हैं। अतः राज्य की व्यवस्था एवं उसके द्वारा प्रदत्त न्याय निम्न श्रेणी और अधूरा होता है। पूर्ण तथा निरपेक्ष न्याय सार्वभौम समाज में ही प्राप्त होता है। इस प्रकार उसके अनुसार न्याय का क्षेत्र देश और काल की सीमाओं में आबद्ध नहीं है वरन सर्वव्यापाक एवं सार्वकालिक है। इसके अन्तर्गत राज्य और समाज दोनों ही सम्मिलित हैं। ऑगस्टाईन के अनुसार समाज के प्रत्येक भाग में सद्भावनापूर्ण सामंजस्य का भाव विद्यमान होता है तथा जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का जीवन पूर्णतः सुखमय और संतोषप्रद होता है। विधि के क्षेत्र में ट्यूटन लोगों का विचार था कि इसका निर्माण और संशोधन सम्पूर्ण जनता की इच्छा से होता है। अतः जनता की सहमति और स्वीकृति से ही इसे लागू किया जाना चाहिए। फलतः कानून शासक की इच्छा के प्रतीक नहीं वरन जन इच्छा के प्रतीक हैं। कानून निर्माण का आधार वैयक्तिक था और प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार था कि वह कानून के अनुसार न्याय प्राप्त करे। कानून निर्मान का स्त्रोत जनता थी।

एक्वीनास ने कानून को बुद्धि का परिणाम घोषित किया है और व्यक्ति विशेष की इच्छा की अभिव्यक्ति के रूप में भी स्वीकार किया। इसके अनुसार कानून की व्याख्या करते हुए उसका कहना है कि कानून विवेक का वह अध्यादेश है जिसे लोकहित की दृष्टि से उस व्यक्ति द्वारा उद्घोषित किया जाता है जो समाज की देखभाल करने का अधिकारी होता है।

मैकियावेली समाज में कानून निर्माण के महत्व को स्वीकार करता है और उसे सर्वशक्तिमान मानाता है। वहीं अपने विवेक से कानून का निर्माण कर नागरिकों में सदगुणों का संचार करता है और उन्हें भ्रष्ट होने से बचाता है। अतः वह केवल राज्य का निर्माता ही नहीं अपितु सारे समाज का निर्माता है। वही कानून के माध्यम से समाज की सम्पूर्ण नैतिक, धार्मिक और आर्थिक मान्यताओं का नियमन करता है।

ग्रेशियस अरस्तू की तरह मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानता है तथा उसके द्वारा निर्मित समाज के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए और उसका संचालन करने के लिए कानून का होना आवश्यक समझता है क्योंकि कानून और समाज का अविच्छेदनीय संबंध है। दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं। मनुष्य सिर्फ सामाजिक प्राणी ही नहीं परंतु विवेकशील प्राणी भी है और उसकी समाज व्यवस्था उसके विवेक का परिणाम होती है। अतः समाज व्यवस्था के संचालन के लिए निर्मित कानून भी विवेक से उत्पन्न होते है।

भारतीय समाज में कुछ महापुरुषों ने देश को आजादी दिलाने का लक्ष्य रखा था। ऐसे महापुरुषों हम आजादी के बाद भी याद करते हैं। इसे सामाजिक न्याय का राजनैतिक लक्ष्य कह सकते हैं। कुछ क्रांतिकारी पुरुषों ने सामाजिक जीवन में आर्थिक क्रांति का बिगुल बजाया था। आज मेहनती लोगों में आर्थिक अधिकार की चेतना उसी का प्रतिफल है। इसे हम सामाजिक न्याय का आर्थिक लक्ष्य कह सकते हैं। कुछ महापुरुषों ने सामाजिक जीवन में व्याप्त भेदभाव पर कुठाराघात कर सामाजिक न्याय को लक्ष्य बनाया। परंतु बहुत ही थोड़े मनस्वियों ने समाज का सर्वांगीण अवलोकन किया और सामाजिक न्याय के लक्ष्य में उक्त तीनों पहलुओं अर्थात सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक लक्ष्यों को लेकर चले। उनके प्रयासों का ही फल है कि आज

हम सामाजिकता समानता और बंधुत्व के साथ सम्मानजनक जीवन का सपना देख पा रहे हैं।

संदर्भ :

1. राजनीतिक विचारों का इतिहास : डॉ. प्रभुदत्त शर्मा
2. राजनीतिक चिन्तन का इतिहास : जीवन मेहता
3. भारतीय राजनीतिक चिन्तक : जीवन मेहता
4. Great Political Thankers East & West : R.C. Gupta
5. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधाराएँ : के. एन. वर्मा
6. प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक : डॉ. इकबाल नारायण
7. बुद्धत्व के अग्रदुत डॉ. अम्बेडकर : सी. डी. नाईक

❑❑❑

ISSN 2393-980X

शोध संविद

SHODH SAMVID

Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.

An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal

https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ अर्चना कुमारी

शोधप्रज्ञ, राजनीति विज्ञान विभाग

पटना विश्वविद्यालय, पटना

आलेख

महिला सशक्तीकरण : दशा और दिशा

महिला सशक्तिकरण का मुद्दा न केवल भारत में अपितु सारे विश्व में बना हुआ है। आज भारतीय महिला की स्थिति दो राहे पर खड़ी है। एक पैर घर से बाहर तो दूसरा रसोई के अन्दर है। शिक्षा से जहाँ उसके क्षितीज का विकास हुआ है, वही पर आज भी पारिवारिक लक्ष्मण रेखा घेरे हुए है। अभी भी वह दान और भोग की वस्तु समझी जाती है। आज चारो ओर नारी स्वतंत्रता का नारा दिया जा रहा है। वह नारी स्वच्छंदता पर ज्यादा जोर दे रहा है। इससे नारी की गरिमा कम हो रही है। मानव समाज जिस गाड़ी के बल पर अपनी जीवन यात्रा करता है उस गाड़ी के दो पहिए पुरुष और महिला है, दोनों एक दूसरे के पूरक तो हैं ही, बल्कि दोनों के बिना एक दूसरे का आस्तित्व सभंव नही है। दोनों के आपसी सम्बंधों के बीच समानता के संतुलन की कमी दिखाई देती है। पुरुष सदैव महिला को अपने अधीन रखता है। स्त्री जाति को स्नेह दया करुणा की देवी कहा जाता है। ईश्वर के बाद माता जननी का स्थान आता है। किसी भी पुरुष का अस्तित्व स्त्री के बिना संभव नही है। किसी भी राष्ट्र का उत्थान तभी संभव है जब नारी का उत्थान हो। पूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शब्दों में "अच्छे राष्ट्र को बचाने के लिए महिला सशक्तीकरण एक आवश्यक पूर्ण दशा है।" स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि "महिलाओं की दशा मे सुधार न होने तक विश्व का कल्याण उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार पक्षी का एक पंख से उड़ना।"

भारतीय महिला की एतिहासिक पृष्ठभूमि :

भारत में महिलाओं को वेद उसे पुरुष के बराबर रखता है। उसे देवी, मातृशक्ति, गृहलक्ष्मी कहा गया है। मैत्रेयी, गार्गी, भारती कई विदुषी नारियाँ थीं जो ऋषियों से कम नहीं थीं। मध्यकाल में कुप्रथा के कारण महिलाएँ कम शिक्षा ग्रहण कर पाती थीं लेकिन शाही घराने की औरतें पढ़ी लिखी होती थी। भारतीय इतिहास का कुछ समय के लिए छोड़ दिया जाए तो महिलाएँ हर क्षेत्र में पुरुष से कम नहीं थी। स्वतंत्रता आंदोलन मे कई महिलाओं का योगदान रहा है। इसमें रानी लक्ष्मीबाई, सरोजनी नायडू, सुचेता कृपलानी, कस्तुरबा गाँधी, कमला नेहरू, ललिता शास्त्री आदी के नाम उल्लेखनीय है।[1]

लेकिन कालान्तर में भारतीय समाज धार्मिक कट्टरता अन्धविश्वास और समाजिक कुरीतियों की शिकार होती है। उन्हें डायन बताकर पीटा जाता है। उनसे अभद्र भाषा का प्रयोग किया जाता है इससे वो मानसिक और शारीरिक रूप से कमजोर हो जाती है।

महिलाओं के स्वास्थ में गिरावट आती है।[2]

मनुस्मृति के अनुसार भारतीय समाज में यह मान्यता रही है जहाँ नारी को सम्मान मिलता है वहाँ देवताओं का निवास होता है। जहाँ उनका अपमान होता है तो सारे कार्य निष्फल होते है। आज भारतीय नारी की स्थिति वैसी नही है जैसी होनी चाहिए।

भारतीय स्त्रियों की दशा : भारतीय नारी की इतिहास आध्यात्मिक रही है। नारी को बहुत महत्व दिया जाता था, लेकिन धीरे-धीरे गिरावट आ गई पुरुष की अपेक्षा परिवार में नारी को कम महत्व दिया जाने लगा। समाजिक दृष्टि से नारी पर पुरुष के संरक्षण में रहने कभी पिता कभी भाई तो कभी पति और पुत्र के संरक्षण में रहने से आत्मविश्वास में कमी देखने को मिलती है। आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर स्त्री निर्भर रहती है। आजादी के बाद स्थिति में कुछ बदलाव आया। अनेक क्षेत्रों में स्त्रियाँ कमाने लगीं। कमाने वाली नारी का प्रतिशत नारी की पूरी जनसंख्या पर नगण्य है। घर की चहारदीवारी में रहने के कारण उनका दृष्टिकोण संकुचित हो जाता है। प्रसूति समस्याएँ गर्भ में पल रही संतान अगर कन्या है तो गर्भपात कराया जाता है। कन्याओं की हत्या बीमारी में बालिकाओं की उपेक्षा कम उम्र में शादी, बलात्कार, अनैतिक व्यापार शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों की उपेक्षा नारी उत्पीड़न निरोधक बिल (1945) काम करने वाली महिलाओं और उसके प्रति अशोभनीय व्यवहार विरोध आदि के द्वारा नारी उत्पीड़न को रोकने के लिए प्रयास किये गए।[3]

तीसरी दुनिया की नारी को विशेष रूप से सुन्दर घोषित किया गया। महिलाओं पर सुन्दर दिखने का भार आ गया है। युवतियों की प्राथमिकताएँ बदलने लगी। उनके आदर्श में बदलाव दिखने लगा। उनकी दिनचर्या का महत्वपूर्ण समय ब्यूटीपार्लर में बरबाद होने लगा। जीवन आवश्यक प्राथमिकताओं से दूर जाने लगा। पढ़ना, कैरियर को छोड़ कर सुन्दर दिखना अधिक कारगर लगने लगा।[4] अगर मीडिया में स्त्री के छवि का प्रस्तुतीकरण की बात करें तो चैनल उन छवि को दिखाने में उत्साहित रहते हैं जो लोकप्रिय होने के साथ महानगरीय है। गाँव की स्त्रियों की दशा उनका शोषण और आदिवासी महिलाओं का दुष्कर जीवन पर कभी-कभी ही साक्षात्कार या वृतचित्र नजर आते हैं। मीडिया उन चीजों पर कवरेज कम देता है। जो समाज की अन्य स्त्रियों के लिए एक मिसाल हो सकती है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में मीडिया की भूमिका भी बेहद संदिग्ध है। माध्यम जो भी हो वह टी.वी., सिनेमा या फिर विज्ञापन, वह जिस स्त्री चरित्र का निर्माण करता है वह बनावटी और सत्य से दूर है। नारी का यह भ्रामक चित्रण बेहद आपतिजनक है।[5] इन सब के बावजूद आज की नारी अपने कैरियर को एक नया मुकाम पर पहुँचा रही है। समाज के हरेक तबके की युवा महिलाएँ जीविकोपार्जन और नए कैरियर के लिए बढ़-चढकर काम कर रही है अब तो समाज में बेटी को पिता की चिता को अग्नि देते देखा गया है अब महिलाएँ पुरोहित का काम भी करती हैं। यह बदलाव एक गहन प्रतिकात्मक बदलाव है।[6] महिला सशक्तीकरण का मुद्दा केवल भारत ही नहीं बल्कि सारे दुनिया में बना हुआ है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मार्च 1975 को "अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस "मनाने की शुरुआत की यह पहल जो संयुक्तराष्ट्र संघ के द्वारा की गई सराहनीय मानी गई। संयुक्तराष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं के अधिकार से सबंधित विभिन्न दस्तावेजों को मान्यता दी गई। 1979 की कन्वेशन् ऑन दी एलिमेनेशन ऑफ ऑल फार्म्स ऑफ डिसक्रिमिनेशन अगेन्स्ट वीमेन काफी महत्वपूर्ण है। वियेना के मानवधिकारों को विश्व सम्मेलन 1993 में महिलाओं के अधिकारों को मानवधिकारों के रूप में स्वीकृति मिली। यह एक महत्वपूर्ण कदम है। महिला सशक्तीकरण की दिशा में भारत में भी महिला सशक्तीकरण को गति प्रदान करने के उद्देश्य से सन् 1985 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अन्दर में महिला एवं बाल विकास विभाग को स्थापित किया गया। उसके बाद 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया और 2001 में राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति की घोषणा की गई और इसी वर्ष 2001 में महिलाओं के लिए महिला सशक्तीकरण दिवस मनाने से महिला सशक्तीकरण को एक नई दिशा प्राप्त हुई। सरकार द्वारा किए गए प्रयासों से अच्छे परिणाम भी सामने आ रहे है किन्तु अभी इस दिशा में निरंतर प्रयास करने की आवश्यकता है। भारत जैसे पुरुष प्रधान समाज में महिला सशक्तीकरण को अपने अधिकारों में कटौती के रूप में ले रहा है।

महिलाओं की दशा में सुधार के लिए उठाए गए प्रक्रिया में अपेक्षित सहयोग प्रदान नहीं कर रहा है। 2005 में बाल विवाह निरोधक अधिनियम, 2006 में कार्य स्थल पर यौन शोषण बचाव और निषेध और निवारण अधिनियम 2013 आदि प्रमुख है। महिला सशक्तीकरण को सशक्त बनाने हेतु यदि महिलाओं की शैक्षणिक, समाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखते हुए उनकी कठिनाईयाँ उनकी समस्याओं एवं अपेक्षाओं का वास्तविक धरातल पर मूल्याकंन एवं निरीक्षण किया जाय और उनका न्यायोचित समाधान ढूंढा जाए।[7]

महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए बनाए गए विभिन्न अनुच्छेद हैं-

अनुच्छेद-15 में जाति, लिंग, धर्म मूलवंश के आधार पर भेद न करने का निर्देश दिया गया है। अनुच्छेद-16 के अनुसार लोक नियोजन में भेद न करने का निर्देश है। महिला और पुरूष को समान अवसर प्रदान करने का निर्देश है। अनुच्छेद-23-24 के अनुसार नारी के शोषण और क्रय-विक्रय इत्यादि पर रोक लगाने का निर्देश है। ये सब कुछ अनुच्छेद, संविध ान के भाग 3 के अंग है जो मौलिक अधिकार में आता है। इस खण्ड के सभी अनुच्छेद समान रूप से चाहे वह पुरुष हो या महिला सभी पर लागू है। संविधान के भाग 4, जो नीति-निर्देशक से संबंध रखता है। इसमें भी महिलाओं के अधिकार संरक्षण हेतु राज्य को निर्देश दिया गया है।

अनुच्छेद-39 द्वारा भी स्त्री और पुरुष दोनों के जीवन निर्वाह की स्थित समान बने और दोनों को समान कार्य का समान वेतन मिल सके। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को सम्यक् रूप से लागू करने के लिए केंद्र सरकार द्वारा समय-समय पर कानून का निर्माण किया गया है। मादा भ्रूण को समय से पहले नष्ट करने के सबंध में 1994 को कानून लागू किया गया जो मादा भ्रूण का पता लगाने की अत्याधुनिक तकनीक के उपयोग पर प्रतिबंध हो, वेश्यावृत्ति से मुक्ति दिलाने हेतु वेश्यावृति निवारण अधिनियम 1956 अनैतिक व्यापार अधिनियम 1959 दहेज कुप्रथा समाप्त करने हेतु दहेज निषेध अधिनियम 1961 लागू किया गया। सती प्रथा उन्मूलन के लिए 1976 तथा स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध अश्लीलता रोकने हेतु एक अधिनियम 1986 को लागू किया गया इसके अलावा स्त्री की मर्यादा के विरुद्ध कार्य करने पर धारा 354 के अंतर्गत दंड का प्रवधान किया गया ही 509 में स्त्री को लज्जा का अनादर करने वाले संकेतो पर भी दंड की व्यवस्था किया गया है और धारा 377 के अंतर्गत बलात्कार को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। वर्ष 2001 में भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तीकरण वर्ष घोषित किया गया और देश में पहली दफा राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति की घोषणा की गई। इसके तहत देश में महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ और रोजगार तथा ढाँचा तैयार कर सभी प्रकार की समाजिक गतिविधियों को शामिल करना है। महिलाओं के प्रति यौन उत्पीड़न तथा घरेलू हिंसा को रोकने के लिए कानून बनाए गए। सामाजिक-आर्थिक अधिकार को सुरक्षित रखने हेतु कानून बनाया गया। स्वतंत्रता के बाद महिला सशक्तीकरण की दिशा में अनेक प्रयास सरकार द्वारा कानून बना कर किए गए।[8]

महिला सशक्तीकरण के लिए भारत सरकार द्वारा चलाए गए अनेक कार्यक्रम :

भारत सरकार महिलाओं के अधिकारों और उसके सभी तरह के विकास के लिए समय-समय पर विभिन्न योजनाओं को क्रियान्वित करती है।

1. ***स्वाधार*** : इसका उदेश्य महिलाओं को समुचित समन्वित सहायता प्रदान करना यह राज्य और केंन्द्र सरकार के सम्मिलित संसाध न से पंचायतों को स्वयं सहायता समूह गैर सरकारी संगठन द्वारा चलाई जा रही है। इसकी शुरुआत 2 जुलाई 2003 में गई थी।
2. ***कामकाजी महिलाओं के लिए होस्टल :*** कामकाजी महिलाओं सहित बच्चों की देख-रेख के लिए यह योजना 1992-1993 से चल रही है।
3. ***रोजगार और प्रशिक्षण के लिए सहायता देने का कार्यक्रम*** : 1986-87 मे केन्द्रीय क्षेत्र की योजना के रूप मे इसकी शुरुआत की गई थी। इसका उदेश्य परंपरागत क्षेत्र में महिलाओं के कार्य कौशल में सुधार और परियोजना के आधार पर रोजगार उपलब्ध

कराकर महिलाओं की स्थिति में महत्वपूर्ण सुधार लाना इस योजना के अंतर्गत 10 परंपरागत क्षेत्र को सम्मिलत किए गए है; जैसे- पशुपालन, कृषि, डेयरी, व्यवसाय, मछली पालन, हस्तकरघा, हस्तशिल्प रेशम कीट पालन, खादी और ग्राम उद्योग परती भूमि विकास और सामाजिक वानिकी।

4. ***स्वालम्बन* :** इस कार्यक्रम का मुख्य उदेश्य महिलाओं को प्रशिक्षण के माध्यम से उन्हें स्वरोजगार उपलब्ध करवाना कंप्यूटर प्रोग्रामिंग, मेडिकल ट्रंसक्रिप्सन, टेलीविजन मरम्मत, हथकरघा और लिपिकीय क्षेत्र में प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इसमें समाज के कमजोर वर्ग की महिलाएँ शामिल की जाती हैं। इसकी शुरुआत 1982-83 में समूचे देश में की गई थी।

5. ***स्वयंसिद्धा* :** 12 जूलाई 2001 को केन्द्र सरकार द्वारा शुरू की गई स्वयंसिद्धा योजना पूर्व में यह योजना इंदिरा महिला योजना तथा महिला समृद्धि योजना के नाम से संचालित थी। इसके अंतर्गत ग्रामीण महिलाओं को स्वास्थ्य शिक्षा, कानूनी अधिकार, आर्थिक गतिविधि एवं घरेलू बचत के प्रति जागरूक किया जाता है। इसे 650 प्रखंण्डों में संचालित किया गया है।

6. ***राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति- 2001* :** भविष्य के लिए महिलाओं की जरूरतों का समाधान करने और उनकी उन्नति विकास तथा सशक्तीकरण के विषय में अभिव्यक्ति के लक्षण सहित एक कार्य योजना के तौर पर बनाई गई है।

7. ***स्वर्णिम योजना* :** इसके अंन्तर्गत पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए 50 हजार रुपये ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इसमें महिला उद्यमियों को ऋण वापसी के लिए 12 वर्ष की लम्बी अवधि दी जाती है।

8. ***महिला सामाख्या योजना* :** महिला सामाख्या योजना के तहत महिलाओं को अपने अधि कार एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक करने हेतु योजना तैयार की जाती है। महिलाओं को शिक्षित किया जाता है जिससे महिलाएँ परंपरागत और रूढ़िवादी भूमिका से ऊपर उठकर एक समर्थ और निर्णय लेने वाली नारी के रूप में उभर सकें। यह कार्यक्रम कई देशों में निदरलैंड सरकार द्वारा चलाई जा रही है।

9. ***आशा योजना* :** 11 फरवरी, 2005 को केन्द्र सरकार द्वारा ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए प्रत्येक गाँव में स्थानीय स्तर पर आशा कार्यकर्ता के तैनाती का प्रावधान किया गया। राष्ट्रीय ग्रामीण विकास मिशन के अन्तर्गत 5 राज्यों में 2005 से लागू किया गया।

10. ***स्वयंशक्ति* :** इस योजना को 1998 में शुरू किया गया था। केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित विश्व बैंक एवं अंतराष्ट्रीय कृषि विकास कोष के सहयोग से यह योजना हरियाणा, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, उतराखण्ड और छत्तीसगढ़ में महिला विकास निगमों तथा स्वयं सहायता समूहों के द्वारा संचालित की जा रही है।

11. ***बालिका समृद्धि* :** इसकी शुरुआत 2 अक्टूबर, 1997 में की गई थी। इस योजना में 15 अगस्त, 1997 के बाद जन्मी बालिका के परिवार को ग्रामीण या शहरी क्षेत्र मे जन्मी बच्ची के समय 500 रुपये की राशि देने का प्रवधान है। इस योजना के तहत बालिका को एक छात्रवृत्ति दी जाती है। यह छात्रवृत्ति पहली कक्षा के लिए 300 रुपए तथा दसवीं कक्षा के लिए 1000 रुपए है।

12. ***अल्पावधि प्रवास गृह* :** इस परियोजना की शुरुआत 1960 में हुई थी अब इस परियोजना को समाज कल्याण बोड को सौंप दिया गया है। इसका उदेश्य महिलाओं और बालिकाओं को संरक्षण देना है, जो पारिवारिक विवादों, सामाजिक बहिष्कार, नैतिक पतन के कारण समजिक आर्थिक और भावनात्मक परेशानियों से जूझ रही थीं।

13. ***नि:शुल्क बालिका शिक्षा (इंदिरा गाँधी इकलौती बालिका छात्रवृत्ति योजना) :*** भारत सरकार द्वारा 22 सितम्बर, 2005 को लिए गए निर्णय के अनुसार बालिकाओं में शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए माँ-बाप की अकेली बेटी को छठी से ग्यारहवीं कक्षा तक नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई है।

14. ***बालिका प्रोत्साहन योजना :*** इस योजना में 8वीं पास बालिकाओं द्वारा 9वीं कक्षा में प्रवेश पर एक मुस्त 3000 रुपये की राशि दी जाती है।

इसके अलावे कई और योजनाएँ महिलाओं और बालिकाओं के लिए केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा चलाई जा रही हैं; जैसे- किशोरी शक्ति योजना, जीवन भारती महिला सुरक्षा योजना, कस्तुरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना, महिला डेयरी विकास परियोजना, बंदेमातरम् योजना, मौलाना अजाद राष्ट्रीय छात्रवृत्ति, जेंडर बजटिंग, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, चलो गाँव की ओर कार्यक्रम, उज्ज्वला योजना, धनलक्ष्मी योजना, राजीव गाँधी किशोरी सशक्तीकरण स्कीम, इंदिरा गाँधी मातृत्व सहयोग योजना, महिला किसान सशक्तीकरण योजना, महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए राष्ट्रीय मिशन, प्रियदर्शिनी, जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम स्त्री शक्ति पुरस्कार।

महिला अधिकार की कसौटी पर खरा उतरने वाली पंचायतों में 50% आरक्षण और सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश का अवसर भी अधिक क्षेत्र केन्द्रीय सरकार ने 27 अगस्त 2009 को संविधान की धारा 243ध. में संशोधन करने के लिए एक प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया ताकि पंचायत के तीनों स्तर की सीटों और अध्यक्ष पद पर 50% महिलाओं को आरक्षित किया जा सके। 110वाँ संविधान संशोधन विधेयक को लोक सभा में पेश किया। ग्रामीण शहरी विकास ने महिलाओं की सहभागिता को उभारा ही नहीं बल्कि उनके लिए नेतृत्व के नए अवसर भी मिल रहें है। बेटी बचाओ, बेटी पढाओं- केन्द्र सरकार ने हर बेटी को पढ़ाने के लिए मुकम्मल योजना बनाई है। इसका नाम 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' है। इस योजना के लिए 2020-21 वित्तीय वर्ष में 220 करोड़ अवंटित किए गए हैं।[9]

अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जितना योजना और परियोजना का, जितना कागजी रूप से सशक्त सहारा प्रतीत होता है, उतना व्यवहारिक रूप में नहीं है आज कानूनों को व्यावहारिक बनाने के साथ ही अपने सामाजिक ढाँचे में भी परिर्वतन करना होगा महिला सशक्तीकरण हेतु आवश्यक है कि वह स्वयं उन नीति और योजनाओं के लिए निर्माण में सहभागी हो जो महिलाओं के लिए बनाई गई हो या बनाई जा रही हो यह तभी संभव है, जब वह स्वयं उस राजनीतिक व्यवस्था का अंग हो इस ओर समाज और राजनीतिक व्यवस्थाओं में और भी परिर्वतन की आवश्यकता है।

मैं इस लेख को स्वामी विवेकानन्दजी के कहे अनुसार शब्दों के साथ समाप्त करती हूँ

"यदि आप मुझे पाँच सौ पुरुष दे दो तो मैं राष्ट्र को एक वर्ष में बदल दूँगा परंतु यदि मुझे पचास महिलाएँ दे दो तो मैं कुछ ही महीनों में देश को बदल दूँगा"।

संदर्भ :

1. प्रतियोगिता दर्पण 8 जून 2018,पृष्ठ संख्या- 92
2. प्रतियोगिता दर्पण जून 2012, पृष्ठ संख्या- 2129
3. प्रतियोगिता दर्पण नवम्बर 2018,पृष्ठ संख्या- 95
4. सत्राची, अप्रैल-जून-सितम्बर, 2015, ISBN 2348-8425 : 32-33
5. वही : 33
6. प्रतियोगिता दर्पण, जून 2018 : 93
7. प्रतियोगिता दर्पण, जून 2015 : 91
8. Incredible Discovery Research Journal vol. 07 Dec, Feb. 2012 ISSN 2229-7855 : 221, 222
9. योजना, मार्च- 2020

❑❑❑

ISSN 2393-980X
शोध संविद
SHODH SAMVID
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ **Amiya K. Paricha**
Emeritus Fellow

Article

Relevance of Gandhism

There are leaders who carry the masses with them and there are leaders who carry forward the nation with them. Mahatma Gandhi was tallest among those who could mesmerize the masses belonging to any class or group spontaneously and effortlessly. Only few have made the masses to march to their tune and Gandhi did in India, under adverse circumstances. He was blessed with the rare ability to observe and use other man's emotions to his noble goals.

Generally as we delve into the freedom struggle of India we often come to know that Gandhi gave India its very first lessons of tolerance, non-violence, *Satyagraha*, the Quit India Movement, the Dandi March, and of belief in one's own faith. He not only played a crucial part in India's independence, but also brought it up as a mature nation on the international platform.

But evaluating Gandhi is not an easy task owing to the widespread misrepresentation of Gandhi and his political opinions. These misrepresentations are not usually deliberate, but often are made by people who have just not made a detailed study of Gandhi's views on the point in question. It is, for example, widely claimed that Gandhi approved of Indian military action in Kashmir or even that he would have supported the present nuclear weapons program. Such misrepresentations are not only made by Westerners, but commonly by educated Indians who often assume, because they are Indians they have repeatedly discussed Gandhi and they know what they are talking about. Gandhi's own scepticism about the degree of understanding of his non-violence and views among Western-educated Indians continues to be verified.

In fact, since independence, the country has witnessed many violent communal riots in this multi communal country. Gandhi's message of '*swabalambi*', self-sufficiency with home spun '*khadi*' cloth is not used now-a-days even as a social slogan. It is also a known fact that the country is definitely not following '*sarvodaya*', a broad Gandhian term meaning 'universal upliftment' or 'progress of all' reaching each and every downtrodden. On the contrary, India today has

the unique distinction of being the only country in the world which has the richest man in the world while at the same time more than 30 per cent of its population lives in dire poverty. Hence the known and existing Gandhian values are not in use, as of now. Non-violence is certainly not the term to be associated with the present day India, which is suffering from various forms of violence on a daily basis. A country that suffers from cross-border terrorism and the highest forms of crime on a regular basis, cannot put the security of its citizens at stake by following the doctrine of "non-violence" or "patient dealings" in the long run. What Gandhi would have done in situations like this would have been a big questions mark which no scholar of Gandhi would not dared to answer.

The above shows that today, *Gandhism* is a very confused 'ism' in India. Today many politicians in India use the term merely as a slogan and the common man make Gandhi almost out of reach of the younger groups by making Gandhi an unwilling '*avatara*'. That may be one reason why the only photo we see of Gandhi in India is always that of an old man which brings the image of a very simple and pious man who was meek and mild like Jesus Christ. The right image of Gandhi is not portrayed and also it does not bring any inspiration to the younger group, the group most relevant for Gandhi.

In real world, Gandhi was a politician, a shrewd politician, who was trying to bring peace and harmony to India on one hand while trying to bring her independence at the same time. For Gandhi, the process of change was very important which must be ethical, nonviolent and democratic giving rights to all minorities. In this respect, he resembles the Buddha for whom the noble eightfold path (*of right wisdom, right conduct and right effort*), itself is the goal and essence of life.

Relevance of Gandhi can be traced in politics without any dispute from the elite of toady in his socialistic ideas. Although Gandhian view of socialism is not radical in its approach but it aspires for a classless society with no poverty, no hunger, no unemployment and education and health for all. These Gandhian ideologies have become the lighthouse for Indian policy makers over the years. Starting from poverty alleviation to Sarva Shiksha Abhiyan and universal health care(Ayushman Bharat) to skill India programs everywhere the core inspiration comes from Gandhianism. National food security act of India to Obamacare policy of the United States of America Gandhian concept of socialism holds the key as a guiding principle.

Gandhiji and Gandhianism are always more than what we know. Gandhiji's political contributions offered us Independence but his ideologies enlighten India as well as the world even today after so many years. Perhaps this was known to Nobel prize winner Rabindranath Tagore in those days and he had rightly called Gandhiji as Mahatma. Every individual, thus, should follow the key Gandhian ideologies in their day to day life for a happy, prosperous, healthy, harmonious and sustainable future.

One very important aspect of his life adds measure significantly to what he thought and did. He lived day in and day out to public view and scrutiny and took people and even his opponents into confidence in regard to actions and motivations. The result is that none in history is left behind so much of documentation and direct evidence concerning everything he thought and did.

His views on family, children, women, oppressed classes, language, communal harmony and democratic values have nurtured our families to become more humane and happier units. He believed the above would help our society to become more just and equitable to become a strong and vibrant democracy. Most of his themes are of

universal application and will keep on guiding man and his surroundings.

Gandhi must be evaluated on the basis of his own outlook and his own policies, not those of others. And it is also important that we re-examine some of the views about Gandhi and the non-violent struggle which he led which are widespread even in the West. This would make the task easy to evaluate Gandhi and to find his relevance in the present political and social scenario.

❑❑❑

SHODH SAMVID
ISSN 2393-980X
शोध संविद
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ ***Pushpalata Kumari***
Associate Professor & Associate NCC Officer
Head, Dept. of Political Science, P.U., Patna

Article

New Education Policy, 2020: Role and Challenges of NCC

Abstract:

This article explores the New Education Policy 2020 and its implications on role and functioning of NCC and its future challenges. The New Education policy 2020 outlines the vision of India's new education system. It replaces the previous National Policy on Education, 1986. It is interesting to observe its inter relationship with NCC, being a major youth organization. This article seeks to delve into the very prominent issue on how this interaction will influence the youth of today, for better human resource.

Introduction:

The New Education Policy is a comprehensive framework for elementary, secondary & higher education. It aims to facilitate an inclusive, Participatory and holistic approach towards education. It is a roadmap to guide the development of education in the country. It is pertinent to highlight some basic issues of New Education Policy, which are most vital and will transform the role and functioning of NCC.

Basic Issues of New Education Policy Related to NCC:

I will deal with five basic issues regarding this policy, which has forbearance on NCC. Moreover, would also advocate some modifications, which will lead to a great impact in the functioning of NCC and its relevance in today's world.

I. Identity of NCC as an independent discipline:

In para 4.9 (Page no.13) of NEP it has been elaborated that, there will be no hard separation among "Curricular", "Extra Curricular" or "Co-Curricular", among 'arts' 'humanities' and 'sciences', or between 'vocational', or 'academic streams'.

In this para or in other place there is no mention of NCC as an independent discipline, or its role. There should be an explicit mention of NCC for overall development of youth.

II. Enrolment Pattern of NCC at College Level:

In para 11.9 (Page no.37) of NEP, it has been stated that "the undergraduate degree

will be of either 3 or 4 –year duration, with multiple exit options within this period…An Academic Bank of Credit(ABC) shall be established which would digitally store the academic credits earned from various recognized HEIs”

In this perspective, it is a challenge for NCC to restructure enrollment process. The problem can be examine at two levels-

1. Either the enrolment pattern should make flexible accordingly or give proper credit to three/ four year duration course.
2. A devised mechanism should be framed to accommodate multiple exit options. (To deal with questions regarding: What will be the time or year limit for readmission if somebody drops a year or join another institution.)

III. Restructuring Curriculum Pattern of NCC at School & College Level:

In para 4.23(Page no.15) of NEP it has been stated that, while students must have a large amount of flexibility in choosing their individual curricula certain subjects, skills and capacities should be learned by all students to become good ,successful, innovative, adaptable and productive human beings in today’s rapidly changing world.

There are different themes mentioned in NEP to be adopted by the educational institutions. Some of the important themes, which can include in NCC curriculum are- digital literacy, coding & computational thinking, artificial intelligence, ethical & moral reasoning, gender sensitivity, fundamental duties, environmental awareness including water & resource conservation & critical issues faced by local communities, states, the country & the world at large . It will add landscape to field experiences, empirical research as well as lessons learned from best practices. It will also cater the ability of cognitive development as well as social & physical awareness of cadets.

IV. Restructuring of Evaluation system:

The results are set out to be given in accordance with the credit system, and the credits are given on the basis of semesters, so that if a student leaves the college, then the credits can be transferred too. The NCC recognises Grade system, and with no hard separation between academic and extracurricular activities, it would be difficult to ascertain the credit of the particular student when he/she transfers. Therefore, it would be more practical to switch over to credit based system for more uniformity.

V. Revised role of the ANOs:

In para 12.2(Page no.38) of NEP it has been emphasized that, The choice Based Credit System will be revised for instilling innovation and flexibility…to a Criterion based grading system…HEIs shall also move away from high stakes examinations towards more continuous and comprehensive evaluations.

In this case, it is essential to revise the role of ANOs, for better functioning so that they could maintain equilibrium while dealing with both Academic workload as well as NCC. This would facilitate them to adapt to the changing situations. It is also necessary to increase the number of ANOs in an institution. The promotion of online classes should also be given greater impetus for better efficiency and time management.

Recommendations:

Envisioning a policy and implementing it are two very different things. There are different challenges to implementation, which have been, or can be, foreseen for the NEP. The NEP requires an in depth study regarding revised role of NCC at secondary and higher education level, before recommendations made within NCC. It is also imperative to reframe certain modifications at the enrolment, curriculum, evaluation and role of ANOs at the interim level of NCC, so that it can make pace with changing scenario.

Conclusion:

NCC as a prime organization of youth has to devise a parallel strategy to equip with future challenges .On the one hand it should adapt the policies in a way that is future forward and on the other hand it should make qualitative changes at the interim level for future learners to make it more relevant in today's world.

References:

- Red Book of NCC, NCC: Standing Instructions, Vol I & II, D.G.NCC, Ministry of Defence, Government of India, New Delhi, 2017.
- Draft on New Education Policy, Committee for the development of National Education Policy presided by Prof.K Kasturirangan, Government of India, New Delhi,2019.
- National Education Policy 2020, Ministry of HRD, Government of India, New Delhi, 2020.
- Banerjee Subhashis, Explained: Here are the key takeaways of India's National Education Policy, Indian Express, New Delhi, November 12, 2020.
- Chopra Ritika, New Education Policy 2020: A look at the proposals on curriculum, courses and medium of instruction, and the takeaways for students, schools and universities, Indian Express, New Delhi, November 19,2020.

❑❑❑

ISSN 2393-980X
शोध संविद
SHODH SAMVID
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ *Husna Ara*
Assistant Professor, Political Science
Dr. L.K.V.D. College, Tajpur, Samastipur
L.N.M.U. Darbhanga.

Article

Triple Talaq Act: A New Journey of Muslim Women Empowerment

As we know that women have played a vital role in the development of society, culture and humanity. Like other women, Muslim women also contribute the society in many different ways- to give birth to child, child rearing, to perform all the responsibilities of the family. Women work as nurtures and caretakers both at home and in the workplace, are most important duties perform by them. But they have to face difficulties and so many cruel customs in the society by the half population whom they give birth, love affection and care. They have to face the norms of male dominated society. Muslim women cope gender discrimination, discrimination in education, property, freedom of expression, choice, marriage related issues,divorce(instant triple talaq) etc. In India instant triple talaq or talaq-e-biddatis the most disastrous for the Muslim women.

The Holy Quran as well as the sayings and practices of the prophet Muhammad have addressed that both males and females are the same unless a specific qualification exempts women from inclusion. For example when God addresses the believers on the issue of managing the affairs of the community, it means human beings and not necessarily a masculine subject. The first 'Ayet' of the 'Holy Quran' is "Iqrabismirabbikalladheekhalaq….." it means "Read, in the name of your lord who created…..". In this 'Ayet',God says, to seek knowledge is a sacred duty; it is obligatory on every Muslim, male and female.

Islam establishes complete and genuine equality between man and woman. In the Islamic faith, both man and woman are equally responsible for the goodness and fault also. According to Islam both are equal in their marital status and retain their respective surnames as they were before marriage. A woman does not adopt her husband's surname after marriage if she doesn't like. Both have the same right to choose a spouse. No marriage is valid without the consent of the woman, in the same way no marriage may be valid without the man's consent. In Islam marriage is a legal contract, and it can be dissolved if man and woman don't want to live together. The dissolution of marriage is called divorce or talaq.

In Islam divorce has variety of forms, some initiated by husband and some initiated by wife. A husband may divorce in the following manner-

1. Talaq : that release the marriage tie immediately or eventually.Talaq allows Muslim man to legally divorce his wife by stating the word talaq.
2. Zihar: it is a form of divorce and if a husband compares his wife to his mother or any other woman within the prohibited degrees, then it is not lawful for him to live with his wife.

A wife may divorce in the following manner-

1. Khula : it is a procedure through which a woman can give divorce to her husband. In khula, a woman returns the 'Mahr'. Khula allows a woman to initiate divorce.
2. Talaq-i-Tafwid :tafwid refers to a divorce in which the power of talaq is delegated to the wife. This delegation can be made at the time of the marriage, with or without conditions.

Husband and wife mutually divorce each other-

1. Mubarat : when the husband and wife, with mutual consent and desire release from their marital status. The offer for separation in 'Mubarat' may proceed either from the wife or from the husband. As soon as it is accepted dissolution is complete.

Instant tripletalaq is also known as 'Talaq-e-biddat. It is a form of divorce which has been used by Muslims in India especially Hanafi Sunni Islamic School of jurisprudence. Triple talaq allows any Muslim man to legally divorce his wife by uttering the word talaq three times in oral, written or recently electronic form. But according to 'Holy Quran' when marital harmony cannot remain, the spouse can bring the marriageto end. Though this decision cannot be taken lightly, and the community is called upon to intervene by appointing arbiters from the two families to attempt reconciliation. Islam avoids hasty divorce and approves 'Talaq-ul-Sunnat' in which the consequences of talaq do not become final at once. Talaq-ul-Sunnat may be pronounced either in 'Ahsan' or in the 'Hasan' form. In talaq 'Ahsan', husband has to make a single pronouncementof talaq during the 'Tuhr' of the wife (A period between two menstruations). But if a woman is not subjected to menstruation, either because of old age or due to pregnancy, a talaq against her may be pronounced any time. After this single pronouncement, the wife is to observe an 'Iddat' of three monthly courses. During the 'Iddat' period there should be no revocation of talaq by the husband, it make the talaq final. In talaq 'Hasan', the husband has to make a single declaration of talaq in a period of 'Tuhar'. In the next 'Tuhr' there is another declaration. If no revocation is made after the first or second declaration then lastly the husband has to make third declaration in the period of third 'Tuhr'. After third declaration the marriage dissolves and the wife has to observe the required 'Iddat'.

Hence, talaq is a time bound process according to Holy Quran but in practice we see instant triple talaq in India. This practice has raised so many questions about justice, gender equality, human rights and women empowerment. Women have to face many problems due to instant triple talaq. Children also suffer by this act.

Mohd. Ahmad Khan V. Shah Bano Begum Case

Mohd. Ahmad Khan V. Shah Bano Begum case camein 1985. It was a controversial maintenance lawsuit in which Supreme Court delivered judgment favouring maintenance given to the divorced Muslim women. Shah Bano Begum was divorced by her husband and she filed a criminal suit in the supreme court of India. She won the case.

Supreme Court gave decision in favour of her maintenance demand after divorce.At that time,Muslim intellectuals and politicians mounted a campaign against the decision of Supreme Court. They said that the judgment was against the Islamic law and demanded to nullify the verdict. Therefore, the congress government passed the Muslim Women Protection of Rights on Divorce Act 1986 which nullified the judgment of the Supreme Court and restricted the right to 'Muslim Divorcees' to give maintenance from their former husbands for only ninety days after the divorce.

Many Muslim women have to suffer from this heinous misdeed in India. If the Muslim marriage is a legal contract and consent of male along with female is necessary, then in separation why instant triple talaq saying by only man, dissolved the marriage. In separation there should be a legal process also so that the life of the women and their children never affect. Women should have right to get maintenance by their husbands after divorce. Women are the feeble part of the society. They need love, care, affection and devotion. But the instant triple talaq debilitate them. Islam asserts the equality of man and woman in their creation, both charges equal human responsibilities. Whoever does righteous deeds, whether male or female will enter paradise and who has done bad deeds will go to hell. Man and woman are also equal in the reward receiving from God. Islam assigns equal political responsibility to both man and woman with regard to maintaining proper order in society. Both are equal in their financial and economic independence. They equal in their marital status. Man and woman have equal rights to do any profession. During the time of Prophet Muhammad, some women worked in agriculture, some tended animals, some worked in weaving and cloth making or in home industries or other trades, some were nurses, teachers etc. This constitutes a practical Islamic requirement that illiteracy must be erased completely for both sexes. Islam treats man and woman as equal in legal and criminal responsibility. The same punishment is given to both for the same offences. Islam gives man and woman the same treatment in worship, celebration and gatherings. Establishing the equality between the two sexes Islam takes further care of woman in a number of aspects, particularly in relation to their physical and psychical well-being. Every girl needs proper health care rights from childhood because her special biological functions of menstruation, pregnancy and childbirth. For a woman, work is a privilege not a duty. Hence, woman has equal position to man in Islam then how a man separate by saying instant triple talaq and leave her to demoralize mentally as well as physically.

Shayra Bano Case:

ShayraBano case emerged in 2016 demanding that talaq-e-biddat pronounced by her husband, be declared as void because such unilateral, abrupt and irrevocable form of divorce should be unconstitutional. The practice of triple talaq violated the fundamental rights as well as human rights of Muslim women. ShayraBano faced challenges from Muslim male dominated societywho didn't want to abolish such a heinous custom. But many women activists, her family and media supported her demand. Her struggle becamefruitful and in August 2017Supreme Court pronounced its decision in the 'Triple Talaq' case, declaring that instant triple talaq is unconstitutional.

The Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Act, 2019

The Government of India introduced a bill in parliament after so many cases on instant triple talaq in the country. In the bill,it is explained that instant triple talaq is invalid whether it is spoken, in writing or by electronic media. The bill followed the Supreme Court judgment in which the Supreme Court had

declared the practice of instant triple talaq unconstitutional and a divorce pronounced by uttering talaq three times in one sitting shall be void and illegal. In this act it is the provision that any Muslim husband who pronounces instant triple talaq shall be punished with imprisonment for a term which may extend to three years, and shall also be liable to fine. A married Muslim woman upon whom talaq is pronounced shall be entitled to receive the allowance from her husband, for herself and her dependent children.

Advantage of the Muslim Women (Protection of Rights on marriage) Act, 2019

The Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Act, 2019 has tried to empower Muslim women in India. A large number of the Muslim women are either uneducated or high drop-out rate. Fewer of them managing to complete high school and availing of higher education. They are economicallyin poor condition also. This act empowers them socially and gives the voice to the ordinary Muslim women who are poor and not so much educated also. By lifting the constant threat of instant triple talaq, this law empowers them and encourages them against the perpetual threats of the husbands. The position of Muslim women has been miserable and inferior before this act.

No doubt, instant triple talaq is a permissible practice in Islam but it is retrograde, immoral and unworthy because it violates the right to equality. It is not religion but patriarchy which has been described as the real culprit of the crime of subjugation of women in society. Humanity and justice say that the process of divorce should be lawful as well as woman must be entitled to receive maintenance for herself and her dependent children. This act gives the legal protection to Muslim women.The judgment is the evidence ofIndian judicial system's keen interest to protect the fundamental rights and equality of every Indian citizen. The bill passed to strengthen the enforcement of the judgment, making instant triple talaq void. There are many countries in the world where instant triple talaq is banned such as Turkey, Cyprus, Egypt, Iran, Iraq, Tunisia, Brunei, Indonesia, Pakistan, Bangladesh, Saudi Arabia etc.

Limitations of the Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Act, 2019

It is argued by some peoplethat there are some limitations of the Muslim Women Act, 2019. On the one hand this act has empowered the Muslim women by banning the instant triple talaq, on the other hand this law will make them vulnerable in other ways. The question is raised that if husband is sent to jail then it will prevent him from paying post-divorce maintenance. This act doesn't clear if a man is sent to jail,how he will fulfill the compensation. It is also said that this act will create family issues in the form of criminal case in which husband is arrested without warrant and given three years of imprisonment. The woman will have to face the serious anger issues from her husband's family. Children will suffer also.

It is also being said that the cases of false allegation could be arise on the male. Criminalization leaves little space for reconciliation of the couple. The act should provide counseling and mediation between the husband and wife also. It is to be noted that the law couldn't be used in malafide manner.

Conclusion:

Therefore, according to above analysis 'The Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Act 2019 is a milestone to empower the Muslim women. They have got rid of perpetual threat of instant triple talaq. Many countries of the world have banned the instant triple talaq. Islam also dislikes the hasty divorce. According to Islam and the Holy Quran,a man should divorce ones in a month and it should be finalized in three continuativemonthly periods. The Muslim intellectuals should try to prohibit the instant

triple talaq or talaq-e-biddat but they never initiated. In such circumstance, 'The Muslim Women (Protection of rights on Marriage) Act 2019 is a new journey of women empowerment. Though, there are several limitations in the section of this act. It is not clear that if husband is punished and sent to jail then how he will give the compensation. The family and children would suffer in the period of imprisonment. This will also create social, economical and mental problems for the family. There is need to review this act so that none could suffer. In spite of this, it can't be denied that this act has empowered Muslim women in India. It is a new and recent journey of Muslim women empowerment.

References:

1. Surah Al Alaq, Chapter 96, the Holy Quran.
2. Surah Al-Baqarah, the Holy Quran.
3. Surah An-Nisa, the Holy Quran.
4. The Indian Express April 02, 2021, Triple talaq: From Shah Bano to ShayaraBano.
5. Noorani Abdul Gafoor A. Majeed, The Muslims of India: a documentary record, Oxford University Press, 2004.
6. The Hindu, September 02, 2017, "Who is ShayaraBano, the triple talaq Crusader", Omar Rshid.
7. "History made, triple talaq bill passed by Parliament", India Today, July 30, 2019.
8. The Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Act, 2019.
9. Mohd. Ahmad Khan V. Shah Bano Begum and Ors.
10. ZoyaHasan and RituMenon, "Unequal Citizens: A Study of Muslim Women in India".
11. ShayaraBano V. Union of India.

❑❑❑

ISSN 2393-980X

शोध संविद

Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.

An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal

https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

Research Paper

❑ ***Namrata*** *(Assistant Professor)*
& Archana Katiyar *(Associate Professor)*
Dept. of Psychology
Magadh Mahila College, Patna

Occupational Stress among Male and Female Police Constables of Bihar: A Comparative Study

Abstract:

In Indian police forces, most of the personnel are suffering from physical or mental health issues due to occupational stress. The major impact of this stress is faced by constables as they are at the lowest rank. Occupational stress is a state of tension which occurs when a person senses a disagreement between the working environment challenges and their possibilities of coping. The purpose of the present study was to find out the level of Occupational Stress among the male and female Police Constables of Bihar. It was attempted to comparatively study the level of Occupational Stress among the male and female Constables of urban Patna. 400 Police constables were selected as the sample. Among them, 200 were male and 200 were female constables. Incidental cum purposive sampling technique was used. Occupational Stress Index by A.K. Srivastava and A.P. Singh was applied in the study. Results have revealed that the level of Occupational stress has been found higher in the female police constables in comparison with male constables. The main conclusion derived from the study that gender can be a determinant in occurrence of occupational stress among police constables.

Keywords: **Occupational Stress, Police Constables, Bihar, Male, Female.**

Introduction:

Police personnel are the guards of the criminal justice system. They are being expected to implement equilibrium in the society for the sake of nation. They are responsible for utilizing the resources or making the determination that the individual's illegal activity is the primary concern and that the criminal person should be arrested. Police officers interact with anti-social or the criminal elements of the society regularly. They always have a threat of being exposed to danger. This threat put them in a highly stressful situation which can be harmful in

doing their work. In the Indian scenario, different research studies on occupational stress among police personnel have been mainly focused on experiences of organizational stress, job satisfaction, effects of geographical boundary and also cultural differences on occupational stress among police personnel (**Joseph, Nagrajamurthy, 2014**). Police Personnel in their jobs, face many stressful situations. For instance, negative work environment, lengthy period of working hours, problems in securing leave, less or zero time to spend with family members, inadequate resources, imbalance eating routine, political pressure, to make strong decisions in a quick manner, sleepless nights, bad physical environment, problems with the higher authority, personal problems etc. Stress and its adverse effect on physical health and mental health of police personnel are not addressed prominently by the concerned authorities and health professionals in India.

They are the frontline guards between the criminals and the society. Many research studies have found that police personnel's burnout can be resulted in high levels of physical problems. The burnout can also cause psychological problems such as anxiety, depression and post-traumatic stress disorder (**McCarty, Aldirawi, Dewald, Palacios, 2019**), also depersonalization, emotional suppression and problems in expressing real emotions (**Lennie, Crozier Sarah, Sutton, 2020**).

Purpose of the study:

This research has been carried out with following broad objectives:

1. To examine the level of Occupational Stress among the male and female Police Constables of Bihar.
2. To investigate the differences on different sub-scales of Occupational stress among the male and female Constables.

Hypothesis:

The main hypotheses of the research were as follows:-

1. "There will be difference between Occupational stress of male and female Police constables."
2. "Female Police constables would experience more Occupational stress than male Police constables."
3. "Male and Female constables will differ on the different sub-scales of the Occupational stress."

Methodology:

(A) Sample: The sample was 400 Police constables from different areas of urban Patna in the age group of 25-50 years. Among them, 200 were male constables and 200 were female constables. Sample has been drawn by Incidental cum purposive sampling technique. Constables were from both Police stations and Police line. Following inclusion & exclusion criteria had been adopted:

Inclusive criteria:

- Police constables who are posted in Urban Patna
- Physically Healthy
- Age range between 25-50 years
- Education level at least up to Graduation.

Exclusive criteria:

- Psychiatric history
- Smoker
- Tobacco user
- Posting out of Patna

(B) Tool: Occupational stress index was used in the study. It is developed by A.K. Srivastava and A.P. Singh. It has 46 items, each to be rated on the five point scale. It has12 various sub scales denoting as occupational stressors. High score indicates high level of occupational stress.

(C) Design- The between group design has been used in the present study. Here, the gender (Male and Female) of the constables has been studied as independent variable while Occupational Stress has been considered as the dependent variable.

(D) Personal Data Sheet- A personal data sheet was used to collect the information about the subjects' gender. This sheet has been attached along with the scale.

(E) Data Collection Procedure- To collect the data, a strong rapport was established with the Constables to get their free and frank views/opinions on various items of the scale. Each subject has been approached individually. The printed instruction on the scale was read out to them. After that they were asked to respond on all the items of the scale. If the subject had any problem in understanding any of the items, it was duly clarified to her.

The obtained data was subjected to statistical analysis with the help of Mean, SD and t-ratio.

Results:

The results of the study have been presented in the tabular forms with the help of Table- A and Table- B.

Table-A

Mean scores of Male and female Police constables on the scale of Occupational Stress

Groups	Mean	SD	t-ratio
a.) Male Constables (N=200)	152.03	7.07	2.23 P>.05
b.) Female Constable (N=200)	160.82	1.79	
	156.42	39.43	

Table- A presents the Mean, SD and t-ratio among the male and female police constables on the scale of Occupational stress. As can be seen from the table that the mean of male police constables is **152.03** and the mean of female police constables is **160.82**. The standard deviations of these two groups are **37.07** and **41.79** respectively. The t-ratio between them is **2.23** which has found significant at **.05** level. It means that both groups are different from each other on the measure of occupational stress. This result fully confirms the first hypothesis of the present study. The male and female both groups have high level of occupational stress.

The Table also displays that the female Police Constables have higher Mean score in comparison with Male Police constables. It means that Female Police Constables are suffering more Occupational Stress than the male constables. This supports the second hypothesis of the study. In a cross-sectional survey conducted by **Ragesh, Tharayil, Raj, Philip, & Hamza, (2017)** among police personnel (both male and female) in Calicut urban police district, Kerala, India, It was also seen that Occupational Stress is more in female police personnel compared to males because of societal pressure to play multiple roles at home as well as at work. Many police personnel also face substance abuse, physical illness and mental illness due to stressors.

Table-B* illustrates the Mean scores of Male and Female Police constables on the different sub-scales of Occupational Stress Index. It can be observed from the Table that male and female Police Constables have found significantly different on the all 12 sub-scales. It can clearly be stated that the Occupational Stress is directly influenced or determined by the gender factor. **He, Zhao and Archbold (2002)** in their study identified five sources of stress among the police force and these factors are- environment, availability of support, police administration, social and family factors and ability to employ various coping

strategies. On the sub-scales of Role Overload, Role ambiguity, Responsibility for persons, Under Participation, Intrinsic Impoverishment and Strenuous working conditions, male Constables have scored high mean score than female Constables. On the other side, Female Constables have secured high mean score than the male counterparts on the sub-scales of Role Conflict, Unreasonable group & political pressure, Powerlessness, Poor Peer relations, Low status and Unprofitability. These findings fully confirm the third hypothesis of the research study.

Major findings of the study

- Police constables in Patna have high level of Occupational stress.
- Significant difference has been found between Occupational stress of male and female constables of Patna.
- Female Police Constables have demonstrated high level of Occupational Stress as compared to Male Constables.
- Male and Female Police Constables have found different on the all twelve sub-scales of Occupational Stress Index.

Conclusion: The gender factor is a cause factor in the development of Occupational stress among the Police constables, especially in the context of Bihar.

References:

- He, N., Zhao, J., & Archbold, C. A. (2002). Gender and police stress: The convergent and divergent impact of work environment, work-family conflict, and stress coping mechanisms of female and male police officers. Policing: *An International Journal of Police Strategies & Management*, 25(4), 687-708.
- Joseph JK, Nagrajamurthy B. Stress in police officers. IOSR *Journal of Humanities and Social Science*. 2014;19:39–40.
- Lennie, S.-J.; Crozier Sarah, E.; Sutton, A. Robocop—The depersonalisation of police officers and their emotions: *A diary study of emotional labor and burnout in front line British police officers*. Int. J. Law Crime Justice 2020, 61, 100365.
- McCarty, Aldirawi, Dewald, Palacios, (2019), Burnout in Blue: An Analysis of the Extent and Primary Predictors of Burnout Among Law Enforcement Officers in the United States, *Police Quarterly* Volume: 22 Issue: 3 Pages: 278-304
- Ragesh, G., Tharayil, H. M., Raj, M. T., Philip, M., & Hamza, A. (2017). Occupational stress among police personnel in India. *Open Journal of Psychiatry & AlliedSciences*, *8*(2), 148. https://doi.org/10.5958/2394-2061.2017.00012.X

❑❑❑

**. Table B*

Mean scores of Male and Female Police constables on the different sub-scales of Occupational Stress Index

		Male Constables (N= 200)		Female Constables (N= 200)		
S.no	Sub-scales	Mean	SD	Mean	SD	t-ratio
1.	Role overload	19.88	3.52	18.17	4.51	4.27 P<.01
2.	Role ambiguity	13.85	2.26	12.37	2.54	6.16 P<.01
3.	Role conflict	10.91	4.5	13.64	5.36	5.57 P<.01
4.	Unreasonable group & political pressure	10.65	3.5	16.76	3.16	18.5 P<.01
5.	Responsibility for persons	12.29	2.14	11.35	3.34	3.6 P<.01
6.	Under participation	12.86	3.64	11.95	3.55	2.6 P<.05
7.	Powerlessness	9.76	3.28	12.72	4.12	8.22 P<.01
8.	Poor Peer relations	10.78	2.01	13.78	3.69	10 P<.01
9.	Intrinsic Impoverishment	14.21	2.38	12.77	2.16	6.54 P<.01
10.	Low status	10.95	1.69	13.7	2.98	12.5 P<.01
11.	Strenuous working conditions	18.15	4.28	14.65	3.36	9.45 P<.01
12.	Unprofitability	7.74	3.87	8.96	3.02	3.69 P<.01
	Total	52.03	7.07	160.82	41.79	

❑❑❑

ISSN 2393-980X
शोध संविद
SHODH SAMVID
Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.
An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal
https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ *S.D. Mishra*
Assistant Professor, Psychology
B.N. College, P.U., Patna

Research Paper

Suicidal Ideation among Street Children: An Analytical Study

Abstract:

The main goal of the present research was to study the level of suicidal ideation among the street children of different areas of Patna. It was attempted to find out the social factors that are responsible for the suicidal ideation among the street children. The sample was 60 children in the age group of 12 to 16 years. Among them, 30 were boys (15 orphan and 15 non orphan) and 30 were girls (15 orphan and 15 non orphan). The 'Suicidal Ideation Scale' by Dr. Devendra Singh Sisodia and Dr. Vibhuti Bhatnagar was used in the study. They were selected randomly. Results have revealed that gender has a strong impact on the suicidal ideation among street children. Girls have shown high level of suicidal ideation as compared to boys. On the other side, orphan children have found high level of suicidal ideation in comparison with non-orphan children. The main conclusion of the research indicates that gender and orphanage status of the street children may be potential factors in their suicidal ideation.

Keywords : **Suicidal Ideation; Children; Street; Gender; Orphan**

Introduction:

Children living on street are considered as most marginal and socially excluded section of the society. They are vulnerable to face problems like substance dependence, abuse, neglect, sexual problems and violence. Children living on street figure prominently among the most marginalized sections of the society and are thus vulnerable to various forms of abuse and exploitation. The number of such children is in millions across the globe **(UNICEF,2012)**. Though India is the second most populous country in the world, it has a relatively large child population **(Nair & Das, 2012)**. Alongside India also boasts of a significant number of the vulnerable children. In fact, a handful of research and documents claim that India has about

20 million street children **(Agarwal, 1999)** which also happens to be the largest population of street children across all developed and developing countries of the world.

Save the Children, an NGO, in association with the Institute for Human Development, Delhi, has now tried to supplement the quantitative data with qualitative data on some 51,000 children, below 18, living and eking out a livelihood on the streets of Delhi. Most of the children are engaged in ragpicking (20.3 per cent) followed by vending (15.18 per cent), begging (15 per cent), working in roadside stalls or repair shops (12.19 per cent), dhabas (6.24 per cent) and manufacturing units (1.22 per cent). Their lifestyle and poor quality of life exposes them to the many severe risks that derive from their frequent involvement in drug trafficking, organ trade, prostitution and slavery especially in metropolitan cities in India.

The difficulty of surviving on the streets is highlighted by the large number of homeless youth who regularly lack shelter and go hungry **(Whitbeck, Hoyt, Bao, 2000)**.There is a high incidence of mental disorders among homeless youth, such as depression, post traumatic stress disorder, and suicidal behavior (**Kipke, Unger, O'Connor, 1997**). Mortality rates for homeless youth have been found to be 12 to 40 times those of the general population, and suicide is the leading cause of death (**Roy, Haley, Leclerc, 2004**).

Purpose of the study:

The main goal of the present research was to study the level of suicidal ideation among the street children of different areas of Patna. It was attempted to find out the social factors that are responsible for the suicidal ideation among the street children.

Hypotheses:

The main hypotheses of the present research were as follows:-

(a) There would be a significant difference between male and female street children with regards to their level of suicidal Ideation.

(b) Orphan Children will possess more suicidal ideation than the non-orphan children.

Methodology:

(A) Sample: According to the purpose of the study, 60 street children in the age group of 12 to 16 years were selected. Among them, 30 were boys (15 orphan and 15 non orphan) and 30 were girls (15 orphan and 15 non orphan). Of all the subjects, there were 30 orphans and 30 non-orphans. Sample was selected by Stratified proportionate purposive sampling method.

(B) Tools: The **'Suicidal Ideation Scale'** by Dr. Devendra Singh Sisodia and Dr. Vibhuti Bhatnagar was used in the study. This scale has 25 items, both positive and negative. Each item has five alternatives- strongly agree, agree, uncertain, disagree, and strongly disagree. 5 marks for strongly agree, 4 marks for agree , 3 for uncertain , 2 for disagree, 1 for strongly disagree in positive statement and in negative, 1 for strongly agree , 2 for agree, 3 for uncertain, 4 for disagree, 5 for strongly disagree. The reliability and validity of this scale is 0.78 and 0.74 respectively.

(C) Data collection Procedure: To collect the data, a strong rapport was established with the street children to get their free and frank views/opinions on various items pertaining to suicidal ideation. Each subject has been approached individually. The printed instruction on the scale was read out to them. After that they were asked to respond on all the items of the scale. If the subject had any problem in understanding any of the items, it

was duly clarified to his/her. The obtained data was subjected to statistical analysis with the help of Mean, SD and t-ratio.

Results: Result of the present study have been presented in tabular forms.

Table-1

Mean scores of girls and boys on the suicidal ideation scale

	Girls (N=30)	Boys (N=30)
Mean	50.23	41.11
SD	3.26	2.59
t-ratio	12.16	P<.01

Table -1 presents the mean scores of male and female street children on the measure of suicidal ideation. As can be seen from the table that the mean of girls is **50.23** and the mean score of boys is **41.11**. The t-ratio between them is **12.16** which has been found to be significant at 0.01 level. It clarifies that there is significant difference between girls and boys street children on the scale of suicidal ideation. Girls have secured high mean score than boys which means that girls have high level of suicidal ideation in comparison with that of boys. This confirms the first hypothesis of the present study.

Table-2

Mean scores of orphans and non-orphans on the suicidal ideation scale

	Orphan (N=30)	Non Orphan (N=30)
Mean	58.26	44.83
SD	4.98	5.67
t-ratio	9.81	P<.01

Table-2 presents the mean scores of street children belonging from orphan and non-orphan groups on the scale of suicidal ideation. It can be seen from the table that the mean of orphan children is higher than the mean of non-orphan children. It illustrates that the street children who are orphans have shown to have higher level of suicidal ideation than the non-orphan street children. This supports the second hypothesis of the study.

Earlier researches reported number of consequences of homelessness for children includes deficits in reading and language abilities, hyperactivity, aggression, depression and anxiety. **Fox, Barrnett & Davies (1990)** reported that almost two-thirds of the homeless children in their study had evidence of developmental delay and more than one-third exhibited emotional and behavioral problems.

Main Findings of the study:

- Street children in Patna have high level of Suicidal Ideation.
- Gender has an impact on suicidal ideation among street children. Girls have shown higher level of suicidal Ideation in comparison with boys.
- Having parents is also a great factor in affecting level of suicidal Ideation. Street children who were orphans have found to have more suicidal ideation as compared to non-orphan street children.

Recommendations from the study:

- Professional counselors, social workers, health care workers, trained volunteers, and family can play crucial roles in providing psychosocial support to the street children.
- Counseling and support can also help people consider how their own behaviors can promote health and well-being, such as seeking resources for adequate nutrition, shelter, proper medical follow-up, adequate sleep,

and management of stress and anxiety.

- Government should make plans for the educational and social upliftment of the street children.
- Street children should be provided with separate institution for their education, where they can continue their education with confidence.
- Street children should be trained for extracurricular activities.

References:

- Agarwal R (1999) Street children. Shipra Publications, New Delhi, India.
- Fox SJ, Barrnett RJ, Davies M, et al. Psychopathology and developmental delay in homeless children. J Am Acad Child Adolesc Psychiatry. 1990;29(5):732–735.
- India. In U. Nair, Child and Adolescent Mental Health, New Delhi: SAGEPublication Pvt Ltd, pp: 337-350.
- Kidd SA. The Walls Were Closing in, and We Were Trapped: A Qualitative Analysis of Street Youth Suicide. Youth & Society. 2004;36(1):30–55.
- Kipke MD, Unger JB, O'Connor S, et al. Street youth, their peer group affiliation and differences according to residential status, subsistence patterns, and use of services. Adolescence. 1997;32(127):655–669.
- Nair U, Das S (2012) Mental Health of Children and Adolescent in Contemporary
- Roy E, Haley N, Leclerc P, et al. Mortality in a cohort of street youth in Montreal. JAMA. 2004;292(5):569–574.
- Save the children, 'Surviving The Streets: A Study on Street Children in Delhi', 4 May,2011www.outlookindia.com
- UNICEF (2012) The State of the World's Children 2012. UNICEF, New York,USA.
- Whitbeck LB, Hoyt DR, Bao WN. Depressive symptoms and co– occurring depressive symptoms, substance abuse, and conduct problems among runaway and homeless adolescents. Child Dev. 2000;71(3):721– 732.

❑❑❑

SHODH SAMVID

ISSN 2393-980X

शोध संविद

Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.

An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal

https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ ***Suman Paswan & Sunil Sahu***

Dept. of Zoology

UR College, Resera, Samastipur

Research Paper

The Epidemiological Investigation on Novel Corona Virus-19

Abstract:

An epidemic of viral pneumonia, most probably caused by novel corona-virus has emerged in Wuhan, China 2019-2020. The causative agent was identified very swiftly during the course of epidemic, but epidemiological situation have dynamically changed over time: initially. Many cases were considered to have been linked to an exposure at a seafood marked in Wuhan, but a massive number of cause have started to merge not only in Wuhan city but across different cities in china and also in other well connected countries Italy, America, Thailand, Japan, Singapore, South Korea, Taiwan, Vietnam and also in India. Many unknown characteristics of this disease remain.

Keyword: Pneumonia, Corona-virus, Epidemiological, Wuhan, Cases.

Introduction:

Since the announcement of pneumonia of unknown case deleted in Wuhan, Hubei province, China was made on 31 October 2019, WHO declared the 2019-2020 Corona-virus out break a public health emergency of international concern (PHEIC) on 30 January 2020 and a pandemic on 11 March 2020. Many rapid virlogical, clinical and epidemiological research responses have taken place. on 11 February 2020, WHO announced a name for the new corona-virus disease: covid-19 As of April 2020 The cumulative incidence in china is 830 cases of which 549 cases were diagnosed in Hubei 26 in Beijing, 20 in shanghai and 53 in Guangdong additionally twenty six death have been linked to the outbreak. Corona-Virus, 2019 n cov acute respiratory disease, Novel Corona-Virus pneumonia. The origin is unknown but Dec 2019 the spread of infection was almost entirely driven by human to human transmission.

Mode of transmission of the disease and diagnosis:

The virus in mainly spread during close contract and small droplets and small droplets produced when people cough sneeze or talk. These small droplets may produce during breathing but the virus is not generally airborne. People may also catch Covid -19 by touching a contaminated surface and their face. The virus can survive on surface up to 72 hour. It is most contagious during the first three days after symptom onset, although spread may be possible before symptom appear and in later stage of the disease. Time from exposure to onset of symptoms is generally between two and fourteen days common symptoms include fever, cough, shortness of breath, muscle pain, sputum production, loss smell diarrhea, sore throat & abdominal pain.

The standard method of diagnosis is reverse transcription polymerase chain reaction (rRt-PCR) from a nasopharyngeal swap. The infection can also be diagnosed from a combination of symptoms, risk factors, and a chest CT scan showing features of pneumonia.

Recommended measures to prevent infection include frequent hand washing social distancing (maintaining physical distance from others quarantine especially from those with symptoms), covering cough and sneezes with a tissue or inner elbow and keeping unwashed hands away from the face the use of masks is recommended for those who suspect they have virus and their caregivers. Recommendation for masks use by the general public vary, with some authorities recommending against their use, some recommending their use and others is no vaccine or specific antiviral treatment for Covid 19 management involves treatment of symptoms supportive care, isolation and experimental measures. **Risk factor**: Travel, viral exposure.

Epidemiology incubation typically 5-6 days (may range between 2-14 days)

Complications: pneumonia, viral sepsis, acute respiratory distress syndrome, kidney failure.

Statically Status: Case and Death

Till May, 2020

State	Case	Death
Newyork	1,03,476	3,218
New jersey	29,895	646
Mashivigun	12,744	479
lusiyana	10,297	370
Total	-	7,403

In India till April, May 2020 : Case and Death Status

State	Case	Death
Maharashtra		24
Gujarat		10
Telangna		07
Delhi		06
MP		06
Punjab		05
Karnataka		04

Worldwide Data:

Location	Confirmed cases	Death	Recovered
Worldwide	12,75,856	69,514	2,62,999
Italy	1,28,948	15,867	21,815
United states	3,37,309	9,643	17,528
Spain	1,31,646	12,641	34,219
France	70,478	8,078	16,183
Iran	58,226	3,603	22,011
China	81,708	3,331	77,078
Germany	1,00,123	1,584	25,280
India	4,067	77 292	

According to Age Group:

Age group	Cases
10-20	18
21-30	22
31-40	21
41-50	05
51-60	04
61-70	02

Result and Conclusion:

India's case are now doubling in 4.1 day after suddan support following Tabligi Jamaat congregation. This is not due Markaz event and not a community transmission stage. India remains in imported kind of disease at this stage and people coming in their contract are getting infected. Two weeks are going to be very crucial & critical more than 1,700,760 declare cases have been registered in 193 countries & territories since the epidemic first emerge December. **Lockdown** is a pause button, not solution to corona-virus. India is currently under a nationwide lockdown which started March 25. Initially PM Sri Narendra Modi had announced that a 21 day lockdown till April 14, continue to surge across country. Hydroxychlorogine durge is most effective. In world 11.33 lakh people ill 60,396 people die on 5 April 2020.

Globally, the total corona-virus cases surged above 127 million while the death fall rose near 70,000, according to the cases was the worst affected country followed by Spain of death fall Italy reported over 15,000 death followed by Spain at over 12000 and us with hearly 10,000 crossed 12.7 lakh Maharashtra, T. N., Delhi, Telangana and Kerala are among the worst affected states in India. In the society we are awareness about corona-virus diseases as ancient culture need to follows and obey the rules.

References:

1. **WHO Clinical management of severer acute respiratory infection when novel**

coronavirus [nCov] infection is suspected, http://www.who.int/emergencies/diseases/nove-coronavirus-2019/technical-guidance/infection-prevention-and-control.
2. **Middle East respiratory Syndrome Coronavirus,** https:// www.who.int/ publication-details/ clinical-management-of-severe-acute-respiratory-infection-when-novelcoronavirus-[nocov]-infection-is-suspected.
3. **World health origination Situation reports.,** https://www.who.int/emergencies/ diseases/ novel-coronavirus-2019/situation-reports/.
4. **Royal College of Psychiatrists. Coronerve surveillance Survey,** https://www.rcpsych.ac.uk/ members/yours-faculities/neuropsychiarty/coronerve-surveillance-survey.
5. **Novel Coronavirus 2019 Wuhan, China,** www.cdc.gov (CDC). 2020-01-23 Archived from the original in 2020-01-20,. Retrieved 2020-01-23.
6. **International Committee on Taxonomy of Virus (ICTV) talk**., ictvonline.org. Retrieved 2020-09-14.

❑❑❑

ISSN 2393-980X

शोध संविद

Issue-10; Vol. 13; July-December, 2020.

An International Registered, Peer Reviewed & Refereed Journal

https://satraachee.org.in, shodh.samvid@gmail.com

❑ ***Uday Shankar***

Ad-Hoc Faculty
Dept. of Psychology
M.M. College,Patna University, Patna

&

Prachi Singh,

Student (B.A.-III), Dept. of Psychology
M.M. College,Patna University, Patna

An Exploratory Study about Psychological Factors Affecting Migration in Bihar

Abstract:

The present study was intended to study the level of aspiration and insecurity among the migrants of Bihar. Also, it was attempted to find out the role of aspiration and insecurity in the process of migration. The sample was 200 people in the age group of 25 to 40 years taken from rural area of Patna district such as- Fatuha, Masaudhi, Danapur etc. Purposive sampling method was used in the study. There have been two research tools used in the study. One is Maslow's security-insecurity inventory for measurement of security-insecurity level of subjects and the other was level of aspiration scale by Amar Kumar Singh. Results have revealed that migrants have possessed high level of insecurity and high level of aspiration. Also, level of aspiration and feeling of insecurity have been found positively correlated among migrants. Conclusively,it can be stated that level of aspiration and feeling of insecurity are the important determinants of migration.

Keywords: **Migration; Psychological factors; Bihar**

Introduction:

Migration is the movement of people from one place to another, it happens for a range of reasons. Migration involved the movement of a person or people from one country, locality, place of residence etc. It is a normal human activity. Human beings have always moved from

one country, locality and place of residence to settle in another. Migration is an intrinsic part of process of development. It illustrates a dynamic like between both area of origin and destination. Migration operates within the framework of social, cultural, economic and institutional conditions at both the sending and receiving ends and it plays an important role to alter the conditions of the entire space within which this process operates (deHaan,2000).

Migration is a major problem in India, especially in the context of Bihar. This is one of the deprived states in the country. Bihari's are working across the different areas of India for their livelihood. This picture emerges clearly in the period of lockdown in India. The scenario of development and poverty in Bihar make it as critical example of the peripheral region in the entire space of development. Entire state is considered as the pocket of chronic poverty. The backwardness of the state of Bihar's reflected in the lower agricultural output, skewed distribution of loud and higher incidence of landlessness, higher dependency on agriculture and lack of industrialization and several socio-economic and institutional barriers. The lack of infrastructure, institutional barriers and poor Governance in the state has developed a milieu of underdevelopment and the state is described as 'the state without hope'. This situation is considered as the leading factor of heavy out migration from the state of Bihar. (**Sharma 1995, Sharma2005**). The current phenomenon of labour migration from the state of Bihar can be traced back colonial period. This region started to experience labour out – migration at the earliest. This phenomenon is largely attributed to the pattern of regional inequality and underdevelopment fostered in colonial period. In the latter half of the nineteenth century, when the British Raj stabilized, law and order and civil administration improved. In this period, some development in irrigation facility and improved trade due to improved communication networks (roads and railways), led some agricultural development and specialization in cropping pattern in the western tract of India, while the eastern region, where the population pressure was highest, couldn't experience such kind of development. (**Derbyshire, 1987**).

Migration of labours is one of the renowned strategies pursued by majority of Indians for their better livelihood which is increased during the last decades due to rapid urbanization in the country. Bihar is the second largest source of migrant workers in India. Spreading of COVID- 19 and lack of its specific vaccine and control measures compelled India to follow countrywide lockdown strategy and that triggered migrants labour return back to their native place due to joblessness and hopelessness.

Aims of the Proposed Research:

This research will be carried out with following broad objectives-

- To access the level of aspiration as a factor in migration.
- To access the level of insecurity as a factor in migration.
- To explore intercorrelation between level of aspiration and level of insecurity
- To study of association of psychological-social in migration.
- To examine the role of social condition as a factor in migration.

Hypothesis:

The main hypotheses of the study were as follows:-

1. "Migrant people will have high level of aspiration."

2. "Migrants will possess high level of insecurity."

3. "Level of aspiration and feeling of insecurity will be the important determinant of migration."

4. "Level of aspiration and feeling of

insecurity will be positively correlated in migrants.

Methodology:

(a) Sample - The sample was 200 people in the age group of 25 to 40 years. They were from rural areas of Patna district. Purposive sampling method has been used for determining the sample.

(b) Research Tools - There has been two research tools used in the study for measuring psychological factors affecting migration in Bihar migrants. One is security-Insecurity Inventory and another one is level of aspiration scale.

- Security-Insecurity Inventory- The scale used in the study was Maslow's security-insecurity Inventory for measurement of security-insecurity level of subjects. It has 75 items (both positive and negative). Each item has 3 options. Scoring is done by the help of scoring key. And higher score indicates high insecurity level.
- Level of Aspiration- This scale is developed by Amar Kumar Singh. The variation of scores in this scale is from 9 to 22.

(c) Design - Level of aspiration and level of security-insecurity have been treated as independent variables while migration has been studied as the dependent variable.

(d) Personal Data Sheet – Personal data sheet was made to know the information about the subjects education, sex, district, income, and working area use. This personal data sheet has been used in the starting of the scale.

(e) Data Collection Procedure- To collect the data, a strong rapport was established with the migrants to get their free and frank views/opinions on various items pertaining to Level of aspiration and level of security-insecurity. Each subject has been approached individually. The printed instructions on the both scales were read out to them. After that they were asked to respond on all the items of the scales. If the subject had any problem in understanding any of the items, it was duly clarified to him/her.

(f) Data Analysis- The obtained data were subjected to statistical analysis with the help of Mean scores and pearson r.

Result:

The results of the present study are as follows and have presented in tabular forms.

Discussion:

Table 1- Results present the mean scores of subject of security-insecurity scale. As can be seen from the table, the mean score of the migrants are high. And high results pacified that migrants labourers faces much more feeling of insecurities that usually compelled them for migration to other state.

Table 2- Results present the mean scores of subjects of aspiration scale. As can be seen from the table, the mean score of the migrants are 18.1 and the description of the migrants are high. And high results shows that the effect of insecurities became a biggest cause of increasing level of aspirations in common folks. High level of aspiration is also a big cause for migration.

Table 3- In table 3 results present the positive correlation between level of aspiration and level of insecurity.

Table 4- Table 4 results shows the 67% of

people are said yes and 37% of people said no of the feeling safe in the law and order of Bihar.

Table 5- Table 5 results shows the 29% of people said yes and 71% of people said no about the employment opportunities are sufficient in Bihar.

Table 6- Table 6 results shows that 57% of the people said yes and no about the medical facilities being provided in Bihar.

Table 7- Table 7 results shows that 44% of people said yes and left 56% of people said no on the question children being successful after studying in government schools and colleges of Bihar.

Table 8- Table 8 results shows that 79% of people have yes opinion about making themselves successful after working outside Bihar.

Conclusion:

- Scores shows that level of aspiration and level of security-insecurity, even if they related to financial, economical, health and children education play a vital role in migration.
- On the other side, increasing level of aspiration is indicate the effect of globalization. It can't be decreased but can be controlled by providing facilitate the reason that led to the increment of migration.
- Smart villages along with smart cities are needed because 88.71% of population resides in villages of Bihar.
- Electricity, water, education and health like basic facilities, basic infrastructure should be provided in village regions.
- Scores shows that lack of industries is the main cause of migration in Bihar. Since large scale industries cannot be established in Bihar, so the migration problem can be solved only with the establishment of small scale industries and micro-industries.

Recommendation from the Study:

1. Government had to lead the enhancement of justice system in rural and semi-rural regions to enhance the feeling of security. Capturing and rapid jurisdiction of criminal should be held.
2. Along with government jobs, farming based food processing unit should be inaugurated with the help of NGOs to motivate the common people for start-ups. Government should organize start-ups chances or opportunities for women also, so that their basic necessities get fulfilled.
3. Government should provide proper medical facilities on block subdivision and panchayat level, so that common people stop migrating for this kind of reason. There should be availability of modern medical facilities in urban, rural as well as flood prone region also.
4. Along with skill development, the branding or promotion of local products should also be focused to increase the self- dependency of common people of that region.
5. According to migrant labourers, they used to think that, they can get more facilities in other states outside Bihar and can live more prosperously by working outside Bihar.

References:

- **Breman (1985),** conducted study of the westward wave of labour migration from Bihar started in the decade of sixties.
- **De Haan (2000),** an analytical study among migrants to the intrinsic part of process of development, PDF Report. •

Data of registered labour of Bihar during Covid-19, Central Information Commission (CIC), PDF Report. • Percentage of internal migrants in our country, by the Census of 2011 recorded, PDF Report.

- **Karan (2003),** analysed labour migration from Bihar to different states of country.
- **Rodgers & Rodgers (2011)**; **Sharma (2005),** studied the reasons behind the people about migrants in villages of Bihar and Uttar Pradesh.
- **Tsujita (2014)**, analysed the study on the reasons behind the migrants in different villages.
- **Yang (1979)**, a comparative study on migration stream was dominated by lower caste and landless labourers.

Table:

Table-1

Showing the mean score of subjects on security-insecurity scale

Subjects	**Mean Score**	**Description**
Migrants (N= 400)	**40.56**	**High**

Table-2

Showing the mean score of subjects on aspiration scale

Subjects	**Mean Score**	**Description**
Migrants (N= 400)	**18.1**	**High**

Table-3

Showing correlation between level of aspiration and insecurity among the Migrants

Variables	**N**	**r**	**df**	**Significance level**
Level of aspiration	**400**	**0.62**	**398**	**P<.01**
Level of insecurity				

Table-4

S. no	Question	Yes (in%)	No (in%)
1.	Do you feel safe in the law and order of Bihar ?	67%	33%

Table-5

S. no	Question	Yes (in%)	No (in%)
1	Do you think employment opportunities are sufficient in Bihar?	71%	29%

Table-6

S. no	Question	Yes (in%)	No (in%)
1	Are you satisfied with the medical facilities being provided in Bihar ?	57%	43%

Table-7

S. no	Question	Yes (in%)	No (in%)
1.	Will your children be successful after studying in government schools and colleges of Bihar ?	44%	56%

Table-8

S. no	Question	Yes (in%)	No (in%)
1.	Will you make yourselves successful after working outside Bihar ?	79%	21%

❑❑❑

Membership Form

Dear Editor,

I wish to be an Annual / Five year Member / Life Member of "Shodh Samvid".

Name (In Block letters): ....

Mailing Address: ....

....

....

....

Institutional Address: ....

....

Mob. No. : ....

Email : ....

Profession : ....

Rs./Remitted by DD No / Cheque No. : ....

....

Date / Banker's Name : ....

Place / Date : ....

Signature

‘माँ समान धरती और पिता समान आकाश
उनके लिए बेजान बाजारू चीजें हैं
जिसे वे भेड़ों या चमकते मोतियों की तरह खरीदते-लूटते और बेच देते हैं
एक दिन आएगा जब उनकी विशाल भूख सारी धरती को निगल लेगी
और रह जाएगी सिर्फ रेगिस्तान की बालू
...जब धरती पर अंतिम आदिवासी भी मिट जाएगा
तब ये समुद्र तट और बीहड़ वन
मेरे लोगों की आत्मा संजोकर रखेंगे
मेरे लोग इस धरती को उतना ही प्यार करते हैं
जितना माँ की धड़कन को एक नवजात शिशु...’

– *सिएथल*